ाये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो वलराज भी उठकर
ड़े हुये। वे रेवती से वोले—"चलो रेवती। हम सव लोग कोठी चलें।
ाव इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश
ःरेंगे। ले चलो राकेश को। वह वहुत दुखी है। हम सव भी उसके दुख
क साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ
फेर, स्नेह-भरे स्वर में वोली—"चलो, लाला। अव इस समय कह
भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सव चलेंगे। भगवान् प
भरोसा रखो, प्रभा जरूर मिलेगी।"

अव लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से
वोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता
है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सव
लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अव तुम अपने घर आ गये
हो।"

शीला वेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये
वह दूर खड़ी रही। तभी वलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर
निकला—'चल, वेटे चल।"

...और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर
वढ़े। वलराज और राकेश आगे की सीट पर वैठे थे। लीला के हाथ
स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे वैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक
दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुअ
ेश घर आ गया। अव प्रभा और मिल जाय, वस फिर समझ
। सव लोगों का वेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। वलराज की कोठी पर से जो सवेरे
का सूरज दिखलाई दे रहा था, वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

पंछी और परदेस

कमल शुक्ल

भाटे का। समुद्र उग्र हो चला था। तभी तो लग रहा था जैसे प्रलय फू
कर रही हो।

किसी तरह अपने को सँभालता, लहरों से टक्कर लेता, युवती
पीठ पर लादे राकेश ऊपर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। बलराज
बड़े-बड़े आँसुओं से रो रहे थे वे मत्थे पर बार-बार हाथ पटकते, र
देख रहे थे यह कि राकेश ने डूबने वाली को बचा लिया था; लेकिन
उसकी जान खतरे में। यदि गिरा तो गया।

जिस तरह सोया हुआ शिशु माँ को गरुआ लगता है, अपेक्षाकृत जा
हुए बालक के। वैसे ही बेहोश इन्सान भी एक जिन्दा लाश ही ब
जाती है। युवती की देह दूनी भारी लग रही थी, राकेश बोझ से दब र
था। वह काँखता; लेकिन मुँह नहीं खोलता। वह हिम्मत करता; उस
शक्ति जैसे उसे जवाब दे रही थी। वह चाहता तो यही था कि मैं किस
तरह ऊपर पहुँच जाऊँ। परन्तु साहस को थकते देख, उसने जैसे अपन
क्षमता के हथियार डाल दिये और यह सोच लिया कि समुद्र मुझे निगल
तो जायेगा न। मरने के बाद शव घर वालों को मिल जायगा। मैं मर
जाऊँ, इसकी मुझे चिन्ता नहीं, मगर इस औरत को बचाना है। ज्वार-
भाटा पूरे जोश पर है। लहरें तूफ़ान बन रही हैं। क्या करूँ? हिम्मत
दे भगवान् या फिर इस ज्वार को शान्त कर दे। अब थक गया हूँ, अब
गिरा तब गिरा। तनिक ताक़त और थोड़ी-सी फुरती पैरों में भर दे ईश्वर।
मुझे ऊपर पहुँच जाने दे। यहाँ की लहरें बहुत बलवान् हो रही हैं।

०

४८

उदधि ने खूब खुलकर जिन्दगी का फाग खेला। उस फाग में जो रंग
था, वह ज्वार बन गया और अबीर भाटा। वह खूब उबला, खूब हह-

और शीला, वह तो हो गई बेक़ाबू। वह दोनों आँखें मूंद ईश्वर से विनय करने लगी। तब राकेश को भी बोध हुआ कि वास्तव में यह प्रभा है।

प्रभा बेहोश थी। उसके पेट में पानी भर गया था। राकेश ने उसकी प्राथमिक चिकित्सा का आयोजन किया। उसकी बुद्धि कुशाग्र थी। वह स्वयं अपने में पूर्ण था। अध-कचरा और अधूरा इन्सान नहीं। उसने प्रभा को पेट के बल लिटाया। फिर स्वयं बैठा उसकी पीठ पर घुटनों के बल। उसने उसके पेट को धीरे-धीरे दबाया। पानी निकलना शुरू हुआ, मुँह से और नथुनों से। फिर उसने डालीं उसके दोनों कानों में उँगलियाँ, उन्हें खूब हिलाया। जो पानी था निकल गया, इसके बाद रुकी हुई हवा भी। अब थोड़ी देर बाद प्रभा ने साँस ली। वह उठकर बैठी। उसने अपने चारों तरफ़ सबको खड़े देखा, तो खूब जोर से चिल्लाई—"तुम लोगों ने मुझे मरने भी नहीं दिया, तुम लोग मेरे कोई नहीं, सबके-सब दुश्मन हो। तुम कठोर हो, पत्थर दिल बे-रहम। तुम लोगों से मेरा कोई रिश्ता नहीं, कोई नाता नहीं। मैं जान देकर ही रहूँगी। वह मेरे लिए नाचीज़ हो गई है।"

किसी से भी जवाब देते नहीं बन पड़ा। सबके सब सन्नाटे में आ गये। और प्रभा उठकर हो गई खड़ी, जैसे तरकस में से निकलता हुआ तीर। वह बोली खूब ज़ोर से—"खबरदार मुझे छूना नहीं। तुम सबको भगवान् की क़सम। जो प्यार नहीं कर सकता, उसे अधिकार ही क्या? जो सिर पर हाथ नहीं रख सकता, उसका स्नेह ही क्या? जो मौखिक सहानुभूति करता है उसका विश्वास ही क्या? जाने दो मुझे, मैं झूठे लोगों की क़ायल नहीं, झूठी दुनिया में रहने की आदी नहीं। मैं···।"

लोग सुनते ही रह गये और प्रभा उठकर भागी। वह दौड़ी, बिजली की तरह। राकेश उसके पीछे हो लिया, और रोने लगे बलराज। वे भी दौड़े जितना दौड़ सकते थे। वे पुकार रहे थे—"प्रभा! ओ बेटी प्रभा।"

लीला दौड़ी। स्थूला रेवती भी भद-भद करने लगी और शीला की पतली डमरू जैसी कमर खाने लगी हवा में बल। वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्ल

'प्रस्तुत कृति'

'पंछी और परदेस' एक यथार्थवादी उपन्यास है। यह उस वर्ग की कथा है जो सोने-चाँदी से ही नहीं, हीरे-मोतियों से खेलता है, और जिसे देखकर प्रत्येक के मुंह से निकल जाता है कि यह बड़ा आदमी है। मनुष्य में जितनी क्षमता होती है, जहाँ तक उसका विवेक काम करता है, वहीं तक सीमित होती हैं उसकी मान्यताएं, आस्थाएं। निम्न वर्ग की नारी जब अपना त्रिया-चरित्र दिखलाती है, तो उसे फूहड़ की संज्ञा सहज ही मिल जाती है। और निम्न-मध्य-वर्ग की तनिक सकुचाती है; किन्तु मध्य-वर्ग की नारी घुटती है। वह उफ़ तक नहीं करती, और उच्च-वर्ग की नारी समता का पाठ पढ़ती है। वह वर्णमाला के अक्षर दोहराती है कि नारी पुरुष से पीछे नहीं। इस अर्थ-प्रधान युग में नारी का प्राधान्य है। उसे ही प्राथमिकता मिली है। पुरुष दब जाता है ऐसी नारी से; क्योंकि उसके तर्कों को काटने के लिए पत्नी के तर्कश में अत्यधिक तीर भरे रहते हैं। तभी तो होता है मन-मुटाव और बात-बात में तलाक़। वैज्ञानिक संघर्ष की झाँकी सहज ही कोठी और बँगलों में देखने को मिल जाती है। क्रोध आने पर एक दूसरे को क्षमा नहीं करता; बल्कि गोली मार देता है और बड़े-से-बड़ा गुनाह होने पर भी उस पर पैसे का पर्दा पड़ जाता है। दुनिया झुकती है जब उसे चाँदी के जूते पहना दिये जाते हैं।

यह है पृष्ठ भूमि उपन्यास की। लीला, रेवती, शीला और प्रभा चारों जागृत नारियाँ हैं। वे शिक्षित ही नहीं, सुसंस्कृता होने के साथ-ही-साथ गौरव की भी पात्री हैं। सबकी मर्यादा है सबकी सीमाएँ। वे

रही थी और शीला ने सलवार पर कस लिया था अपना दुपट्टा। उसके भी पैर हवा से बातें करते थे। बलराज दोनों के साथ थे और राकेश सबसे आगे। पीछे थी बेचारी रेवती। वह अपनी देह को कोस रही थी। हवा शान्त हो गई थी। समुद्र सुख की साँस ले रहा था और लहरें खेल रही थीं आँख-मिचौनी। वे जैसे साजन के घर नई-नई ब्याह कर आई हों।

४९

नारी चाहे जितनी शक्तिशालिनी हो, लेकिन पुरुष के पराक्रम से वह पीछे है—यही सृष्टि का नियम है। आदि पुरुष है और अन्त नारी नारी सृष्टि है तो मनुष्य संज्ञा। वह जननी है तो पुरुष जीवन-दाता। वह उपमा है तो पुरुष उसका अलंकार। वह मेंहदी की बगिया है तो पुरुष महकता गुलाब। बिना पुरुष के नारी शून्य है, उसका कुछ भी अस्तित्व नहीं। वह एक माला है जो जब तक गले में पहनी नहीं जाती, शोभा नहीं पाती। वह फूली हुई सरसों का पीला खेत है, जिसका पिया बसन्त है और जिसके बिना बहार नहीं।

...तो इस तरह अर्द्धांगिनी है स्त्री पुरुष की। वह उसकी वामा है। वह उससे आगे नहीं उससे पीछे है। क्योंकि उसके सौभाग्य के रथ का सारथी उसका पति ही होता है। प्रभा में यद्यपि अदम्य शक्ति थी। वह सर्पिनी की तरह फुफकार रही थी और भाग रही थी हवा की गाड़ी पर। लेकिन फिर भी राकेश ने उसे पकड़ लिया।

राकेश ने प्रभा के दोनों कन्धे खूब मजबूती से पकड़े। वह उन्हें हिला-हिलाकर बोला—"भूल किससे नहीं होती प्रभा। मुझे क्षमा कर दो। तुम्हें समझाना क्या? तुम स्वयं समझदार हो। नारी पुरुष की बात कहते क्षमा कर देती है। आओ चलो। हम लोग कई दिन से

दल-दल में पड़कर भी सीधी राह पकड़ती हैं। वे उतार-चढ़ाव से जूझती हुई फिर उसी संयोग की छाया में आकर टिकती हैं, जो इमारत की होती है और इमारत होता है मनुष्य, नारी उसकी छाया।

पुरुष पात्रों में राकेश और बलराज दो धर्म-भाई हैं। बलराज सीधा-सादा, सरल एक गृहस्थ है। और राकेश नई रोशनी का परिन्दा। उसके पर बढ़ते हैं। वह पंछी बनकर उड़ता है। वह अपने घौंसले में ही छेद करता है। परिस्थितिआँ करवट लेतीं हैं और पंछी उड़कर परदेस जाता है। परदेस पंछी के लिए ही नहीं, प्रत्येक के लिए बनवास सदृश्य होता है। पर कटा पखेरू आकर जमीन सूंघने लगता है; लेकिन फिर परिवर्तन उसमें अपना रंग भरता है। विरक्ति का वरदान उसे विवेक से मिलता है। टूटे हुए डैने धीरे-धीरे पुष्ट होते हैं। ऐसे ही तो बदलता है मनुष्य, जब उसे अपनी भूल ज्ञात हो जाती है। जब पंछी परदेस जाता है तो लोग समझ लेते हैं कि वह मौत की मंजिल का राही बना; लेकिन जिसके साथ परदेस में ईमान की पोटली होती है या उसके ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, तो परदेसी घर लौट आता है। जिन्दगी ही नहीं मुस्कराती, बहारें शरमाती हैं और घौंसले का छेद अपने आप बन्द हो जाता है। पंछी नाचता है और वातावरण मुखरित हो उठता है।

यह कथा-कृति ऐसा ही चित्र है। मैंने जिस तथ्य को उठाया है और जिस उद्देश्य को लेकर चला हूँ। वह इसमें साकार है। यह नारी पुरुष की समता की परिचायक है, उनके प्रेम की एक कड़ी।

—कमल शुक्ल

पता :
ब्लाक : एम, ५७
किदवई नगर, कानपुर

प्रभा की माँग। तभी प्रभा नत-मस्तक हो गई और रेवती ने आकर दिया उसके सिर पर हाथ। वह बोली—"तुम अपनी जिन्दगी से नहीं करती प्रभा। यह तुम्हारी भूल है। देखो राकेश सामने खड़ा उसने तुम्हारी माँग भरी है। क्या वह तुम्हारी जिन्दगी का मालिक ? क्या वह तुम्हारा प्रियतम नहीं ?"

...और प्रभा हो गई थी काठ। किसी तरह वह संयत हुई। तब राकेश ला—"चल, तू औरत नहीं जिन्दगी है। तू ख्वाब नहीं एक कहानी। प्रभा नहीं मेरी विरासत है।"

अब रोने लगी प्रभा। तब बलराज ने उसके आँसू पोंछे। वह धीरे-धीरे बोले—"प्रभा तुम सबसे आगे हो। तुम्हीं सबकी निर्दिष्ट दिशा हो। तुम वह हो जो जिन्दगी का मीत नहीं। तुम सर्वस्व हो, जो प्रत्येक को प्राप्त नहीं।"

अब प्रभा झुक गई। उसकी वाणी जैसे मूक हो गई। वह चल दी लीला के साथ-साथ। लगभग दो फर्लांग की दूरी पर प्लाईमाउथ खड़ी थी। वह आकर उसमें बैठी। अब कार धीरे-धीरे नहीं चली। वह दौड़ी पूरी रफ़्तार में। वह मैरिनड्राइव पहुँची। जहाँ धरती पर स्वर्ग बस रहा था।

५१

दो दिन बाद मैरिन-ड्राइव की कोठी से बारात उठी। जो थी आलीशान जिसमें आठ-आठ बैण्ड बज रहे थे और क़दम-क़दम पर छूट रही थी आतिशबाज़ी। हंसा-रूढ़ मोटर पर सवार था दूल्हा राकेश। जिसके सिर पर मौर रखा था और मुँह पर फूलों का सेहरा पड़ रहा था। बैण्ड अलाप रहा था अपनी धुन, साजन आए हैं द्वार—लेके डोलिया

आज वैशाख की पू

सोलह कलाओं के साथ [illegible]

उसकी लगन लगी हो और बारात जा रही हो। तारागण में तुम्हारी अपनी रौनक़ में। वे जगमग करते, झिलमिलाते और हवा, [illegible] दूंगी। ली थी पैरों में मेंहदी; तभी धीरे-धीरे डोल रही थी। ऋतु कह [illegible] थी कि मौसम सलोना है, रात चाँदनी है। वायु में मादकता है, उसमें सुरभि भरी है और उसमें जैसे माया के प्राण बोल रहे हैं। दिशाएँ गुंजरित हैं और धरती मगन। राजधानी देहली हर रात को नया श्रृंगार करती है। उसका श्रृंगार अनोखा है, अद्वितीय है। जब पुरानी देहली गोटे का लहँगा पहन, लाल चूनर ओढ़ती है, तो नई देहली साड़ी ब्लाउज की चमक लेकर पाश्चात्य सभ्यता का प्रदर्शन करती; लेकिन यह था दरियागंज, पुरानी देहली का एक प्रसिद्ध मोहल्ला। इतनी चौड़ी सड़क कि जिसका नाम नहीं। ऊँची-ऊँची गगन-चुम्बी अट्टालिकाएं जिनके वैभव का ओर-छोर नहीं। चाँदनी में तारकोल की काली सड़क चमकती, बिजली के श्वेत रॉड उस चमक में चार-चाँद लगाते। कारें रपटतीं, बसें दौड़तीं। स्कूटर और मोटर-सायकिल-रिक्शे शोर मचाते। तांगे वाले खट-खट करते और रईसजादे फिटन पर बैठ पान कुचरते, पीक थूकते; पैदल फुटपाथ पर चलते। वे आपस में चुहल करते। नई और पुरानी दोनों सभ्यताएँ एक-दूसरे को चुनौती देतीं। कहीं पर ग्रामीण-वधुओं के मुँह पर घूँघट होता, तो कहीं सम्भ्रान्त महिलाएँ अपनी साड़ी का पल्लू बार-बार ठीक करतीं और कहीं ऐसे ही सलवार-ओढ़नी

दल-दल में ५ पंजाबी महिलाएं फ़ैशन की दाद देतीं और अप-टू-डेट
हुई फिर उसी निक सुसंस्कृता बालाएं सिर खोले मिलतीं, जिनके
होती है और हमार भी नहीं। साड़ी भी केवल कन्धे तक ही सीमित।
पुरुष पात्रों में ऐसा था वातावरण। जगह-जगह बस स्टॉप पर
सादा, सरल एक गृह प्रतीक्षा में रत थे। ऐसे में ही छत्तीस नम्बर से
पर चढ़ते हैं। वह पंछ नकली। वह थाने के पास तनिक रुकी। उसमें
करता है। परिस्थितिय न की हिरणी थी उसके कानों में पन्ने के टॉप्स
है। परदेस पंछी के लि। युवक उसने दाहिने हाथ में हीरा-जड़ी अँगूठी
र कटा पलेल आ

इसमें अपना
है। ... लीला, रुकना है? गोलचा चलोगी? चलो आज नाश्ता
... महल होटल में ही करेंगे।"

यह युवक का प्रस्ताव था जिस पर युवती हँस दी। वह बोली
स्कराहट के साथ—"न बाबा न। यह पुरानी देहली तो बूढ़े-बुजुर्गों
लिए है। मैं तो जलपान कनॉट प्लेस पर ही करूँगी। कहाँ नई
हली, कहाँ यह पुरानी। चलो डियर, अभी हमें साड़ी भी खरीदनी है।
देरी पहुँचते-पहुँचते देर हो जाएगी।"

"वाह! लीना, तुम्हारा हर अन्दाज़ निराला है। तुम्हारी ही पसन्द
माने में बाँकी है। हम लोग होटल नरूला चलेंगे जो कनॉट प्लेस की
शान है। हां साड़ी कैसी लोगी? सिल्क की, जरी, कमखाब, कौन-
सी?"

युवक के मुँह से यह सुनते ही युवती मुस्करा दी। उसके हाथ स्टीय-
रिंग व्हील पर नपटने लगे और कार देहली गेट से गुजरती हुई आसफ-
अली रोड की चौड़ी सड़क को चूम, अजमेरी दरवाजे आ गई। जहाँ से
सीधी सड़क कनॉट प्लेस को जाती थी। फिर वह कनॉट सरकिल का
एक गोल चक्कर घूम स्टैन्डर्ड मार्केट में आ गई। जहाँ भाव-मोल नहीं
होता। जहाँ ऊँचे तबके के ही लोग ग्राहक होते हैं।

एक सिल्क एम्पोरियम में लीला तथा राकेश ने प्रवेश किया। उनके

सामने कहते ही साड़ियों के ढेर लग गए। बीसलपुरी, भागलपुरी, बनारसी और लखनऊ की चिकन की। लीला ग़ौर से साड़ियाँ देखने लगी। राकेश भी उन्हें टटोलने लगा। तभी आकर एक स्थूल काय रमणी ने लीला के कोहनी मारी। वह उसे एक नीला लिफाफा दे गई और एक क्षण भी नहीं रुकी वहाँ से चल दी। तब राकेश दुकानदार से बातों में व्यस्त था।

लीला की जिज्ञासा ने उसे चौंकाया ही नहीं, बल्कि आतुर कर दिया। उसने लिफाफा खोल डाला और उसमें से पत्र निकालकर पढ़ने लगी। चिट्ठी में लिखा था—"मिसेज़ साहनी, मैं रोशनआरा बाग में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। मैं तुम्हारा हित चाहती हूँ। तुम्हें कुछ सलाह दूंगी। तुम शायद नहीं जानतीं, मैं बलराज की प्रथम पत्नी हूँ यानी अब भूत-पूर्व। तुम राकेश को छोड़ो वह धूर्त है, चाण्डाल है। कहीं उसके जाल में फँस मत जाना। वह बड़ा चतुर बहेलिया है।"

राकेश अब भी दुकानदार से बातों में संलग्न था। लीला ने लिफाफा फेंक दिया और पत्र गुड़ी-मुड़ी कर टेट में खोंस लिया। अब उसका ध्यान साड़ियों की ओर गया। राकेश जिस साड़ी को पसन्द कर रहा था, वह ग्यारह सौ की थी। वह थी बीसलपुरी। उसमें जरी का काम था। अपनी ओर लीला का रुख देख उसने धीरे से पूछ लिया—"क्यों लीला पसन्द है न? यही ले लूं?"

"नहीं, मैं जरी की साड़ी नहीं लूंगी। मेरे पास बहुत हैं। ले लो कोई हैण्ड लूम। आज कल ज़माना सादगी का है।"

इस पर राकेश का मन तो अवश्य छोटा हुआ; लेकिन वह मुस्क-राया। दुकानदार ने तनिक भी देर नहीं की। पलक मारते ही हैन्डलूम की कीमती साड़ियाँ सामने आ गईं। फिर जो साड़ी खरीदी गई वह एक सौ बीस रुपये की थी। लीला और राकेश दोनों एम्पोरियम के बाहर आए। वहाँ नई देहली की रोशनी जगमग कर रही थी, जवानी जैसे इठला-इठलाकर खेल रही हो। ऐसा लगता था कि यहीं है धरती का

स्वर्ग, यहीं है रौनक, यहीं है बहार। राकेश ने लीला को टोका कि पहले कनॉट सर्किल चलोगी हवाखोरी के लिए या होटल नरूला।

किन्तु लीला के चेहरे की हँसी और मुस्कराहट जैसे एकदम विलीन हो गई थी। वह उपेक्षित मुद्रा में रूखी-रूखी बोली—"न मैं जाऊँगी होटल नरूला और न कनॉट सर्किल। बस जल्दी से कोठी पहुँचो, मुझे एक काम याद आ गया है। मुझे अपनी एक सहेली के यहाँ जाना है। वह रोशनआरा बाग में रहती है। उसने मुझे बुलाया था, आज उसकी बहन की सगाई है। बेचारी है गरीब। मुझे जरूर जाना चाहिए यही सोचती हूँ। चलो डियर मौज-मेला तो रोज रहता है। शिष्टाचार भी रखना पड़ता है। दुनियादारी इसी को कहते हैं।"

राकेश हतप्रभ-सा हो गया, उसे कुछ भी अच्छा न लगा। आखिर कार की ओर जाते-जाते उसने पूछ ही तो लिया—"क्या बात है लीला! मुझसे कोई भूल हो गई। तुम्हारी वह उमंग, तुम्हारी वे हसरतें सब जैसे काफ़ूर हो गई। जो तुम कोठी से लेकर चली थीं, दरियागंज आई थीं। अजीब है तुम्हारा मिजाज। उसकी करवट ही समझ में नहीं आती, तो कोठी चलूं। चलो, तुम्हें रोशनआरा बाग में छोड़ दूं। मैं भी रुक जाऊँगा। ऐसी जल्दी क्या है?"

तुम मेरे साथ भगवान् के घर भी जाओगे, पहले यह बतलाओ। जहाँ चार औरतें होती हैं और उनकी अपनी महफ़िल जुड़ती है, वहाँ आदमियों का जाना अच्छा नहीं लगता, शोभा नहीं देता है। तुम बैठो मैं कार ड्राइव करती हूँ।"

यह कह लीला जल्दी से कार में बैठ गई। उसने गाड़ी स्टार्ट की। हार्न बजाया। तब रोनी-सी सूरत लिए राकेश भी बैठ गया उसकी बगल में। रास्ते भर दोनों मौन रहे। जैसे उनके बीच कोई आकस्मिक घटना घट गई हो। कभी-कभी सन्नाटे में कार की गति इतनी तीव्र हो जाती कि राकेश काँप जाता और कभी-कभी लीला के मुख पर आक्रोश की रेखाएँ खिंच जातीं। जिससे वह सहम जाता। लेकिन कुछ भी पूछने

का साहस नहीं कर पाता। कार हवा से बातें कर रही थी। कनॉट-प्लेस की रौनक पीछे छूट चुकी थी। करौल बाग पुलिस स्टेशन भी गुज़र चुका था। आगे दूर कोठी पर हरी लाल बत्तियाँ दिखलाई दे रही थीं। जिन पर मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा था 'बलराज भवन'। यह कोठी लीला के पति की थी। एकदम आलीशान, आकाश को चूमती हुई। जब पोर्टिको में आकर कार रुकी तो बरामदे में टहलते हुए बलराज पत्नी के सम्मुख आ गये। वे मन-ही-मन उसकी बलाएँ लेते हुए प्रगट में प्रसन्न होकर बोले—"खरीद लाई! कैसी हैं? तुम्हें साड़ियों का बड़ा शौक है, अबकी बार बनारस गया तो दस-बीस इकट्ठी ले आऊँगा।"

बलराज की बात समाप्त होते-होते लीला ने साड़ी का पैकेट उनके हाथ में थमा दिया और फिर द्रुत वेग से चली गई अन्दर। राकेश पीछे रह गया।

"आज मेम साहब का मूड कुछ खराब है। क्या बात हो गई राकेश?" हँसकर बलराज ने अपने पीछे आ रहे राकेश से प्रश्न किया।

"मैं कुछ भी नहीं जानता भैया। भाभी जब गई थीं तो बड़ी प्रसन्न थीं। लेकिन पता नहीं क्या हो गया? वे जल्दी ही लौट आईं। कहीं घूमने-फिरने भी नहीं गईं और पैकेट तो खोलो, साड़ी भी ली हैण्डलूम। उनका कहना है कि आजकल सादगी का ज़माना है। उन्हें एक सहेली के यहाँ सगाई में जाने की जल्दी है वे रोशनआरा बाग जाएँगीं।"

यह कह राकेश ने साड़ी का पैकेट बलराज के हाथ से ले लिया। उसे खोल साड़ी दिखलाता हुआ फिर कहने लगा—"यह है मेरी भाभी की पसन्द। आप हँसेंगे और क्या कहेंगे?"

"आदमी तो औरत की हर हरकत पर हँसता है। हँसूंगा नहीं तो और क्या करूँगा? शायद लीला अपने कमरे में गई हो। लाओ साड़ी मुझे दो और तुम देखो रेफ़्रीजेटर में खरबूजे रखवा दो। आमों की डिश तैयार हो गई है। वे मैंने खुद रखी थीं, जाओ खाने का इन्तज़ाम करो,

मैं लीला को लेकर अभी डिनर रूम में आता हूँ।"

यह कहकर बलराज लीला के कमरे की ओर चल दिए और राकेश पीछे लौटा।

लीला अपने कमरे में साड़ी बदल एक श्वेत मलमल की धोती पहन रही थी। वह अत्यन्त व्यस्त थी। चिट्ठी उसने ड्रार में रख दी थी। समय एक बार उड़ती-उड़ती निगाहों से देख लिया था। पत्रवाहिका ने नौ बजे का समय निश्चित रखा था।

"क्या बात है लीला कहाँ जा रही हो? तुमने मुझे पहले नहीं बताया कि तुम्हें एक सगाई में जाना है। चलो खाना खा लो मैं तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था।" यह कहते-कहते बलराज पत्नी के सम्मुख आ गए और साड़ी का पैकेट मेज़ पर रखकर तनिक हँसकर पुनः बोले—"यह साड़ी लाई हो। तुम नहीं जानतीं तुम कोठी में रहती हो, कार पर चलती हो और फिर प्लाईमाउथ कार। जो हर एक को नसीब नहीं होती। क्या तमाशा देख रहा हूँ मैं? सहेली के यहाँ जाने के लिए यह मलमल की धोती पहनी है। वाह! लीला वाह! तुम्हारे गुस्से का कमाल नहीं। कुसूर नहीं बतलातीं और सजा देने लगती हो।"

यह कहते-कहते बलराज मूविंग चेयर पर बैठ गए। कमरा वातानुकूलित था। लीला की साड़ी का पल्ला फर-फर उड़ रहा था। वह बोली नाक-भौं सुकेड़ व्यस्त स्वर में—"मुझे अभी भूख नहीं है। मैं कुछ नहीं खाऊँगी और मैं नाराज़ कहाँ? बस अभी आती हूँ घण्टे-डेढ़ घण्टे में। तुम लोग डिनर लो। मैं बाद में खा लूंगी।"

यह कह लीला ने पति के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। वह जाने का आयोजन कर दरवाजे की ओर बढ़ी। तभी बलराज जल्दी से कुर्सी से उठे। ईरानी कारपेट पर उनके स्लीपर सटके, वे कह रहे थे—"सुनो लीला।"

लेकिन लीला जैसे थी हवा के घोड़े पर सवार। उसने कुछ भी जवाब नहीं दिया और पोर्टिको में आ गई। यद्यपि कार अभी वहीं खड़ी

थी। लेकिन उसने उसकी ओर देखा भी नहीं। सड़क पर आ
स्कूटर रिक्शा किया और रोशनआरा बाग की ओर चल दी

यद्यपि दूधिया-चाँदनी मुँह धो रही थी धरती का; लेकि
रोशनआरा बाग़ में पेड़ों की काली-काली परछाइयाँ देख
लगतीं। हवा चलती, पत्ते डोलते, परछाइयाँ काँपतीं। कभी स
खड़-खड़, ऐसी प्रतिध्वनि होती और वाग मानो याद करता
जब मुग़लों का आतंक चारों दिशाओं में छा रहा था। शाहजह
दिली और औरंगज़ेब की खूनी हुकूमत, दोनों एक-दूसरे से
थीं। जहाँनआरा शाहजहाँ को प्राणों से भी अधिक प्यारी थी
बड़ी बेटी थी और औरंगज़ेब की कनिष्ठा थी, रोशनआरा
प्यारी बहिन थी। बाग की नींव शाहजहाँ ने डाली। लेकिन
उसे अद्वितीय बना दिया। सदियाँ देखीं, जश्न मनाए इसी
यहीं औरंगजेब की ताजपोशी हुई। लेकिन आज रात क
बढ़ाने के लिये वहाँ उल्लू बोल रहे थे। यह लगता था कि उ
फूट गई है। वह बीते दिनों की याद में आँसू बहा रहा है
वर्तन, दृश्य-परिवर्तन और ऐसा ही होता है हृदय-परिवर्तन
अगर अपना प्रचण्ड रूप न दिखलाता तो राम-राज्य की प
भी देखने को मिलती, म्लेच्छ और यवन इस पावन भूमि पर
करते। गोरे फिरंगी हमारी धन-दौलत लूटकर नहीं ले जाते
महान् है और मनुष्य है सृष्टि में कृमिमात्र।

हाँ! सो रोशनआरा बाग अपने पुराने वैभव को भूल,
कहानी कह रहा था। उसके फाटक बन्द थे। संतरी सोने का
रहे थे। पत्थर की दीवारें जहाँ-तहाँ टूट-फूट गई थीं।

चोरों की तरह भीतर घुस आई थी। लीला मुख्य द्वार पर रुकी। उ
पत्रवाहिका की प्रतीक्षा की; लेकिन नहीं, कोई भी नहीं था वहाँ। कि
पेड़ पर बसेरे पर बैठे पंछी पर फड़-फड़ा रहे थे। वे चीं-चीं करते शा
उन पर कोई आपत्ति आ गई। लीला सहमी, वह दो कदम पीछे ह
तभी उल्लू बोला। उसके मुंह से धीरे-से निकला—"उई माँ।"

"डरो न, डरो न मिसेज़ साहनी। मैं आ गई। मैं देर से तुम्हारी
राह देख रही थी। अभी-अभी तो बाग से बाहर निकली हूँ।"

लीला की जान-में-जान पड़ी। क्योंकि यह वही पत्रवाहिका थी जो
कनॉट प्लेस में मिली थी। उसने कहा—"आओ, हम लोग बाग़ में चल-
कर बैठें, रात ज्यादा हो जाएगी, वर्ना तुम्हें मैं अपने घर ले चलती। लोदी
कॉलोनी में रहती हूँ बहन। यहाँ से करीब आठ-नौ मील है। देहली अब
...ी नहीं। यह मीलों लम्बी हो गई है। भला हो सरकार का जो यात्रा
सबसे सस्ता और सबसे सुलभ साधन बस को बना रखा है। किसी
स्टॉप पर जाओ, हर पाँच मिनट के बाद बस मिलेगी। हाँ, छोड़ो,
...ा में बैठकर हम लोगों का बातें करना ठीक नहीं। आगे ही एक कैफे
। चलो वहीं कोल्ड ड्रिंक लिया जाए और वहीं बातें होंगी।"

यह कह पत्रवाहिका लीला का हाथ पकड़ उसे अँधेरे से उजाले की
र बढ़ चली। पथ पर उजली चाँदनी बिछ रही थी। यातायात रात्रि
प्रथम पहर समाप्त होने पर भी अपनी जवानी पर था। फुटपाथ वैसे
भरे चल रहे थे जैसे पुरानी देहली के। दोनों युवतियाँ कैफे में आकर
ीं। वे एक कैबिन में जा प्लास्टिक के पर्दे में छिप गई। बैरा आया
ी उठा, अन्दर प्रविष्ट हुआ।

"मैडम! क्या लाऊँ? कोल्ड ड्रिंक, चाय, कुछ स्पेशल या नम-
न?"

यह सुनते ही पत्रवाहिका बोल उठी—"ओनली कोल्ड ड्रिंक। जे०
० रोज़ ब्वॉय!"

पलक मारते ही जे० बी० रोज़ की दो गुलाबी ठण्डी बोतलें मेज पर धा

गई। पत्रवाहिका ने एक चुस्की ली। फिर उसने लीला की ओर देखा। उसने पूछा—"क्या सोच रही हो लीला ? यही कि मैंने तुम्हें यहाँ क्यों बुलाया है ? सुनो मैं कहानी संक्षेप में सुनाती हूँ। यह राकेश, जानती हो कौन है ? कहीं तुमने उसे आत्म-समर्पण तो नहीं कर दिया। यह मीठे जहर वाला काला साँप है। धर्म के रिश्ते में यह हमारा और तुम्हारा देवर लगता है। यह सहगल है हम साहनी। इसके बाप ने हमारे पति को गोद लिया था। वह निःसन्तान था। वह वसीयत सब बलराज के नाम कर गए। राकेश उनकी दया पर जी रहा है। मेरे पति उसे छोटे भाई तुल्य समझते हैं। उनके मन में किसी किस्म का भी कोई भेद-भाव नहीं है। लेकिन इसकी चाल कुछ और ही है। यह चाहता है कि मेरे बाप की तरह बलराज भी निःसन्तान ही रहे तो उनका वारिस मैं बनूंगा। उनकी सारी दौलत मेरे हाथ आएगी। मेरा व्याह हुआ। मैं हिन्दी में एम० ए० थी। मेरा नाम रेवती है। बलराजजी ज्यादा पढ़े नहीं, वे केवल हाई-स्कूल पास हैं। पढ़ी-लिखी होने के नाते वे मेरी इज्ज़त करते। मेरी हर इच्छा पूरी करने के प्रयत्न में रहते। लेकिन यह राकेश, यही नासूर बन गया बहन ! इसने मेरी ज़िन्दगी बिगाड़ दी। ईश्वर उसका सर्वनाश करे।"

यह कहकर रेवती ने साँस ली और जल्दी-जल्दी गुलाब पीने लगी। लीला की जिज्ञासा बढ़ी, उसके कान खड़े हो गए। भौंहें सतर थीं। वह तत्क्षण ही बोल उठी—"हाँ ! तो फिर हुआ क्या बहन ? मुझे तो आज सब नई-नई बातें मालूम हो रही हैं। मैंने अभी आत्म-समर्पण नहीं किया राकेश को; लेकिन आठ-दस दिन बाद ही मैं बलराज को तलाक़ दे उसकी गुप्त पत्नी बनने का विचार रखती थी। बलराज की अवस्था चालीस के क़रीब हो रही है और राकेश है तो खूबसूरत जवान। इसमें कोई शक नहीं।"

"यहीं पर तो तुम भूलती हो लीला, जो देखने में सुन्दर होता है, उसकी सुन्दरता में रहस्य छिपा रहता है। यह राकेश, यही राकेश जानती नहीं;

राजनीति में एम० ए० है। यह दाँव-पेंच खूब जानता है। उड़ती चिड़ियां पहचानता है। इसने किया क्या ? सुनोगी तो तुम्हारे रोंगटे खड़े हो जाएँगे।" यह कह रेवती ने बोतल खाली कर दी, लीला ने भी उसका अनुकरण किया। बैरा आया बोतलें उठा ले गया। मेज़ साफ़ कर गया।

और उसके जाते ही रेवती कहने लगी—"राकेश ने मुझे गर्भ-निरोधक दवा खिला दी ताकि मै सन्तान पैदा न कर सकूं। मैं बाँझ रही। मेरे व्याह को सात साल हो गए। मैं सुन्दर तो न थी लेकिन जवानी में हर स्त्री परी मालूम होती है। सो यह राकेश मेरी ओर आकर्षित हुआ। इसने मुझ पर डोरे डाले। मैंने इसे फटकारा, इसे धिक्कारा तो इसने दूसरी चाल चली।"

"क्या !" अब लीला के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह अवाक् होकर रह गई।

इस पर रेवती धीरे-धीरे कहने लगी—"राकेश ने बलराज के कान भरे। उन्होंने मुझे तलाक़ दे दिया। आजकल मैं निर्वासिता हूँ, मुझे सौ रुपये मासिक वृत्ति दी जाती है। तुम्हारे व्याह को भी तीन साल हो गए। तुमने भी सन्तान का मुंह नहीं देखा। कहीं तुम्हें भी तो धोके से इसने कोई दवा नहीं खिला दी। होशियार रहना बहन। यह आदमी बहुत नीच है, बड़ा पापी। पाप के पैर नहीं होते। उसकी ज़बान हाथ भर की होती है।"

बैरा प्लेट में रखकर बिल ले आया था। रेवती अपने पर्स से पैसे निकालने लगी तो लीला ने उसका हाथ पकड़ा। उसने अपने बटुए से बिल के पैसे दिये। साथ ही टिप भी। फिर दोनों उठ खड़ी हुईं और सड़क पर आ लीला रेवती से कहने लगी—"मुझे भी कम न समझो बहन। मैंने इंगलिश लिट्रेचर में एम० ए० किया है। मैं मानती हूँ कि मेरे पति की बुद्धि इतनी विकसित नहीं जितना चपल यह राकेश है; लेकिन मैं अब आगाह हो गई हूँ। इसकी चालाकी रखी-की-रखी ही रह जाएगी। मैं इसे उस दुनिया की सैर करा दूंगी। जहाँ बड़े-बड़े मुंह

के बल जाकर गिरते हैं। आऊँगी कभी लोदी कॉलोनी।
नम्बर है?"

रेवती ने अपना पता बतलाया। लीला ने उसे एक प

फिर जब वह करौल बाग़ पहुँची तो ग्यारह बज रहे थे। दोहरी देह फुलाए बैठा था और बलराज ने अब तक भोजन नहीं किया था उसके

लीला आते ही पति के पास गई। उसने पूछा—"खाना खा लिए, मुझे बहुत देर हो गई। क्यों आराम करो? बैठे क्यों? मेरी राह देख रहे थे क्या?"

लीला की यह बात सुन बलराज मुस्करा दिए। वे धीरे से अपनत्व-भरे स्वर में बोले—"पहले यह बताओ कि तुमने कुछ खाया या नहीं। मैं जानता था सगाई में कोरा शिष्टाचार चलता है। चलो मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था। हम लोग साथ ही खाएँगे।"

पति की इस बात ने लीला को इतना प्रभावित किया कि मन-ही-मन उसकी श्रद्धा ने नमस्कार किया और उसके क्षणिक अन्तर द्वन्द ने यह स्पष्ट कर दिया कि बलराज दोषी नहीं, गुनहगार है राकेश। उसने ज़रूर उसे गर्भ-निरोधक दवा दी होगी।

डिनर टेबिल पर करीने से डिश सज रही थी। शीशे के तीन बड़े-बड़े जग रखे थे। छुरी काँटे अलग शोभा पा रहे थे। बलराज ने श्री-गणेश किया। वे आलू चाय पर आये। लीला ने भी सबसे पहले छोले मुँह में डाले। किन्तु राकेश बैठा रहा उदास। उसे जब टोका गया बल-राज की तरफ़ से तो उसने काँटे में खरबूजे की एक फाँक फँसा ली और अनमने ढंग से उसे मुँह में रख फ़र्श पर बिछे कालीन की ओर देखने लगा। बलराज ने यह अनुमान लगाया कि शायद आज देवर-भाभी में कुछ खट-पट हो गई है। तभी राकेश चिढ़ा बैठा है और लीला उसे मनाती नहीं। बड़े होने के नाते वह टोकता और टोकता चला गया और इस तरह राकेश ज़बरदस्ती मुँह में कुछ-न-कुछ डालता गया। लीला उस समय प्रसन्न थी, न जाने क्यों? उसकी प्लेट में छुरी खटकती, काँटा

राजनीति में विम्मच से वह सिप करती केसर की खीर। कभी-कभी छिपी
पहचानता है। लेती बहुरुपिये राकेश को। स्त्री को जब पुरुष का कोई
जाएँगे।" यह म हो जाता है तो वह उसे अपराधी की तरह नहीं देखती,
अनुकरण किय पक्ष में भी नहीं रहती। वह उसका तिरस्कार करती है,
और ज्ञान और ऐसे ही क्षणों में दुश्मन बन जाती है। वह सब-कुछ
धकता है और कर देती है अपने अधिकारों के लिए आदमी का खून। उसकी बुद्धि छोटी होती है; लेकिन विवेक उतना ही बड़ा। जो मर्यादा के नूपुर बाँधती है। वही ऊँची-ऊँची दीवारें तोड़ देती है भेद की। तभी तो नारी पहेली है पुरुष के लिए, सदा से रही और रहती जाएगी।

भोजन समाप्त हो गया लीला राकेश से नहीं बोली। वह जब जाकर सोई तो देर तक नींद नहीं आई। उसके सामने रेवती की छाया बोलती रही कि तुमने राकेश को आत्म-समर्पण तो नहीं कर दिया। मेरे पति ...हनी हैं, वह सहगल। दोनों सगे भाई नहीं। सपने में उसने रोशनआरा बाग़ देखा और उसी कैफे में जे० बी० रोज़ पिया। वह रात जब तक बीती नहीं लीला सपने की दुनिया में विचरती रही।

सवेरा कब हुआ लीला ने नहीं जाना। वह जब उठी तो धूप छज्जे से दीवार पर उतर रही थी और जगह-जगह पिंजड़ों में टँगे लाल-मुनियाँ पक्षी अपना मधुर राग गा रहे थे। उसके पास खड़े बलराज हँसकर कह रहे थे—"उठो, लीला रानी तुम्हारे भाग्य से रात फिर होगी।"

पति के इस आचरण पर लीला संकोच से गड़ गई। वह मुस्करा दी। उसने कनखियों से उसकी ओर देखा, दोनों की निगाहें मिलीं। इस नेत्रों के मिलन ने दम्पत्ति को आत्म-सुख से विभोर कर दिया। तभी आकाश पर उड़ता हुआ एक पक्षी निकल गया। शायद वह परदेश जा रहा था अपने पिया को ढूंढने। यह पपीहा था और पी-पी रट रहा था।

बलराज की अवस्था पेंतीस को पार कर चुकी थी वह दोहरी देह का श्याम-वर्ण पुरुष था। उसके सिर पर खल्लोट था, जो था उसके भाग्यशाली होने का एकमात्र प्रतीक ! वह बनाव-चुनाव में नहीं रहता और न देता था महत्त्व फैशन को ही। उसके हाथ में लाखों की सम्पदा थी; लेकिन फिर भी वह साधारण धोती, कुरता और चप्पल पहनता। उसमें अहंकार नहीं, उसमें रौब और रूआव नहीं। उसमें थी एक शालीनता जो भद्र पुरुषों में होती है। उसे निस्संकोच सम्भ्रान्त की संज्ञा दी जा सकती थी। उसकी धर्म के प्रति आस्था थी और था वैसा ही ग़रीब दुखियों से लगाव। वह नित्य ही कुछ-न-कुछ दान अवश्य करता था।

एक समय था जब बलराज एक ग़रीब परिवार में पैदा हुआ। बाप को हैज़े ने बटोर लिया। माँ घुल-घुलकर मर गई। वह साहनी परिवार का था और उसके पड़ोस में ही रहते थे उमेश सहगल। जिनकी आयु पचास के लगभग पहुँच रही थी। किन्तु दुर्भाग्य से वे अब तक निःसन्तान ही थे। आठ साल का बलराज भटका, उसने लोगों से भीख तक माँगी और एक दिन जब कोठी आया तो गृहस्वामिनी ने पति से परामर्श किया। वह बोली कि तुम मेरे बेटे बन जाओ बलराज। तुम्हारे माँ-बाप नहीं। तुम्हारा दुनिया में कोई नहीं और भैया मेरे भी औलाद नहीं।

बलराज चौंका। उसे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। तब उमेश ने पत्नी का समर्थन किया। वे बालक की पीठ पर हाथ फेर उसे आश्वासन देते हुए बोले, कि हाँ-हाँ, बलराज, ये ठीक ही तो कह रही हैं, मैं तुम्हें गोद ले लूंगा। आ जाओ बेटा, मेरा घर सूना है। उसमें जितने चिराग़ हैं वे सब झूठे हैं। हम लोगों को असली रोशनी तो तुमसे ही मिलेगी। बालक असमंजस में पड़ा। उसने सोचा-विचारा। तब उसे भी वह मौका बड़ा प्यारा लगा और स्वर्ग आने लगा नज़र। उसने

बस फिर वह दत्तक-पुत्र बना उमेश सहगल का। गोद लेने की रसम खूब धूम-धाम से पूरी हुई। बलराज का लाड़-दुलार होने लगा। वह मोटर पर चलने और ग़लीचे पर सोने लगा। उसकी शिक्षा-दीक्षा का भी प्रबन्ध हुआ, वह विद्यालय जाने लगा और उसके तीन साल बाद उमेश सहगल स्वयं बाप बन गए। इस तरह राकेश बलराज से ग्यारह साल छोटा था।

उमेश ने जब बलराज को गोद लिया था तभी अपनी वसीयत की रजिस्ट्री उसके नाम कर दी थी। इस तरह जो कुछ था वह सब बलराज का। असली मालिक वही था। उमेश तो केवल अब करता-धरता रह गये थे। उनके मन में छोटे विचार थे ही नहीं। वे जानते थे कि बलराज राकेश को उतना ही प्यार करता है जितना बाप बेटे को और ऊँची में रहकर बलराज ने भी उच्चादर्श ही अपनाये थे। उसके मन में राकेश के प्रति सदा-सर्वदा यही बना रहता कि जितना चाहे खर्च करे राकेश। घर में दौलत-ही-दौलत है। उमेश बाबू मेरे धर्म पिता थे। उनके अभाव में कहीं राकेश यह न महसूस करने लगे कि मेरा बाप नहीं, बड़ा भाई बाप के ही तुल्य होता है।

इस तरह बलराज अब तक पैंतीस-छत्तीस बरसातें पार कर ले आया। उमेश बाबू नहीं रहे, उनकी पत्नी का भी देहान्त हो गया। उत्तरदायित्व का भार सिर पर आ जाने से बलराज मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ सका। उसका ब्याह हुआ। रेवती ने आकर कोठी की रौनक़ बढ़ा दी। उसी वर्ष राकेश ने राजनीति में एम० ए० किया था। रेवती हिन्दी में एम० ए० थी। इसलिए राकेश के ज्ञान-तन्त्र अधिक सक्रिय थे। उसकी सक्रियता अब उसके विश्वास को धीरे-धीरे छलने लगी। वह सोचता, यह सब-कुछ धन, ऐश्वर्य मेरे बाप का है। ठीक ही तो कहते हैं मेरे दोस्त! बलराज भैया, मुझे कुछ नहीं देंगे। खा लूं, खर्च कर लूं, बस इतना ही। जो स्वामी होता है धनदौलत और जगह-ज़मीन का, उसका कलेजा हाथ-भर का होता है। वह कहीं पर कच्चा नहीं पड़ता। उसमें

साहस होता है कि मेरे पास इतना कुछ है; लेकिन मेरे-जैसा आदमी हवा में उड़ा-उड़ा फिरता है। मुझे क्या सहारा ? मेरे पास क्या बल ? मेरे सामने तो कोई बुनियाद भी नहीं जिस पर दीवार खड़ी होगी।

ऐसा सोचा करता राकेश। धीरे-धीरे उसकी भावनाएँ विरोधी हो गईं और वह मन-ही-मन द्वेष रखने लगा बलराज से। मुँह पर हँसकर बोलता। भैया-भैया कहते-कहते उसकी ज़बान घिस जाती; लेकिन मन में कपट रखता था। उसने एक चाल सोची और उसमें सफलता भी मिली। उसने रेवती को धोखे से गर्भ-निरोधक दवा खिला दी। परिणाम यह हुआ कि रेवती के सन्तान नहीं हुई और बलराज जैसे निराश होने लगा।

बस यही तो चाहता था राकेश कि जब बलराज के औलाद नहीं होगी तो वसीयत वे मेरे ही नाम कर जाएँगे और यह तो तय है कि वे शायद दूसरा ब्याह न करेंगे। बस मेरे पौ-बारह हैं। किसका भाई, किस की भाभी। दुनिया बने-बने की साथी है। जो कुछ है वह पैसा और उसके बाद विलास, जिसने जिन्दगी के सुख का भोग नहीं किया, उसकी जिन्दगी भी क्या खाक होती है ? रेवती की उठती जवानी है और बलराज ठहरा साधु-सन्तों के स्वभाव वाला। मैं उससे खेलूं, दुनिया में ऊँच-नीच सब चलता है, कोई दूध का धोया नहीं होता।

इधर राकेश की भावनाएँ बदलीं, उसके विचारों ने पलटा खाया। उधर रेवती भी हो गई सजग, उसने जैसे राकेश की दुर्भावनाओं को अन्तर् की आँखों से पढ़ लिया था। वह फूंक-फूंककर कदम रखती और उस मौके के लिए हमेशा तैयार रहती जब राकेश उससे कुछ कहे या उसके ग़लत कदम आगे बढ़ें।

मौका आया और राकेश अपना दाव हार गया। बाजी उसे बहुत महँगी पड़ी। रेवती ने बलराज से शिकायत कर दी। बलराज समझदार था, उसने राकेश से कुछ नहीं कहा। तब राकेश को स्वयं ही अपनी सफ़ाई देनी पड़ी कि भैया दोषी मैं नहीं, भाभी हैं। सन्तान नहीं होती

तो क्या आदमी कुएँ-खाई में कूद पड़ता है ? और फिर मेरा यह धर्म नहीं कि जिसे एक बार भाभी कहा, जिसके पैर छुए, जिसे हमेशा माँ के समान समझता रहा उसी की देह से खेलूं; उसे ही स्पर्श करूँ।

अनुमान ठीक बैठा। बलराज को पत्नी पर सन्देह हो गया कि सन्तान की लालसा ने ही रेवती को गुमराह कर दिया। पुरुष की अपेक्षा स्त्रियाँ सन्तान को अधिक महत्त्व देती हैं। वे सोचने लगे कि इस तरह की पत्नी से तो मेरी बदनामी भी हो सकती है। रेवती को तलाक़ देकर मैं दूसरा व्याह करूंगा।

और हुआ भी यही। रेवती को तलाक़ दे दी गई। उसे बलराज [illegible] ओर से सौ रुपया महीना मिलता था। वह मैके नहीं गई। उसने [illegible]दी कॉलोनी में किराये पर घर ले लिया और एक महिला-विद्यालय [illegible] शिक्षण कार्य करने लगी। वहाँ से उसे दो सौ रुपये मासिक मिलता [illegible]। वह थी पति-परायणा। धार्मिक प्रवृत्तियाँ उसकी प्रबल थीं। उसने [illegible]र्विवाह के लिए सोचा तक नहीं। अकेले ही जीवन-यापन करने लगी। [illegible]ह छात्राओं को घर बुलाती, उन्हें निःशुल्क पढ़ाती। वह राग-रंग में [illegible]हीं डूबती। उसे अध्ययन और एकान्त से लगाव था। इसीलिए उसे [illegible]भी अकेलापन महसूस नहीं होता।

राकेश की कुटिल नीति उसी के लिए काल बन गई। आदमी जब [illegible]ोखा देने चलता है तो वह सोचता है कि मेरी चतुराई चल जाएगी। [illegible]ोई जान नहीं पाएगा। लेकिन धोखा देने वाला जब स्वयं धोखा खाता [illegible] तो उसकी बनी ऐसी बिगड़ती है कि फिर सँभाले नहीं संभलती। [illegible]वती को छेड़ने का नतीजा यह निकला कि बलराज ने उसे तो तलाक़ [illegible] दी और लीला को व्याह लाया।

और लीला वह थी इंगलिश लिटरेचर में एम० ए०। उसकी राकेश की [illegible]ब पटती। वे दोनों धारा-प्रवाह अंग्रेजी में बातें करते तो बलराज हँस [illegible]ते। वह कहता—अच्छा है, देवर-भाभी में खूब पटती है और राकेश [illegible]सलिए कर रहा था ये सारे अभिनय कि मौका लगे और लीला उसके

साथ घूमने-फिरने जाए। होटल कॉल्टन में उसने आखिर मौका ढूंढ़ ही लिया और उसने लस्सी के आधे खाली गिलास में वही गर्भ-निरोधक दवा डाल दी जो रेवती को खिलाई थी। तभी तो तीन साल हो गए, लीला भी माँ न बन सकी।

लीला सिर ढाँककर नहीं, खोलकर चलती। लिपिस्टिक, पाउडर और क्रीम उसे बहुत प्रिय थी और साड़ियाँ वह दिन में बदलती चार। क्यों न होता। बड़े घर की बेटी थी और बड़े ही घर की बहू। उसे संगीत का भी अभ्यास था। इसीलिए कोठी में प्यानो आया। उसे कार के पुराने मॉडल पसन्द नहीं, इसीलिए प्लाईमाउथ खरीदी गई। खाना बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता। घर में नौकर, नौकरानियाँ कई थीं। लेकिन लीला इस कला में थी अधूरी। चलचित्र देखने का भी उसे बहुत शौक था।

बलराज की आमदनी अच्छी-खासी थी। करौलबाग़ की ही कोठी नहीं, उमेश सहगल ग्यारह कोठियाँ छोड़ गए थे। कोई दरियागंज, कोई आसफअली रोड पर, कोई कनॉटप्लेस में, कोई पहाड़गंज। किराये की इतनी आमदनी थी कि धरे-उठाये नहीं चुकता। किसी कोठी से महीने में पाँच हज़ार आते तो किसी से चार और तीन हज़ार से कम कोई नहीं देती। इस तरह लीला रह रही थी रानियों की तरह। वह जब सवेरे सोकर उठती तो माली केवड़े, गुलाब या बेले के फूल रख जाता। रात को भी फूलों का गजरा उसके हाथ में होता। वह अपने स्वास्थ्य का भी अत्यधिक ध्यान रखती। डेटोल के पानी से नहाती। उसी से मुँह भी शुद्ध करती, जब दाँत-मुँह धोती। खाना वह साधारण ढंग का नहीं खाती। उसके लिए तमाम व्यंजन बनते। कोठी में कूलर लगा था। खस की टट्टियाँ और परदे चलते थे। लेकिन लीला की ख्वाहिश फौरन पूरी की बलराज ने। कोठी वातानुकूलित हो गई। छोटे की जगह बड़ा रेफ्रीजरेटर आया। दरवाज़ों के पर्दे बदले गए। फ़र्श पर बिछे ईरानी कालीन पुराने कहकर नौकरों को दे दिये गए। जहाँ-तहाँ ही पुरानापन

रहा, बाकी सब कोठी एकदम नई हो गई।

लेकिन हाय रे ! मनुष्य के भाग्य। तू उसे क्षण-मात्र में ही ठग लेता है। उसका बना महल गिरा देता है। तू होनहार के सपने दिखलाकर अनहोनी गाज मनुष्य पर छोड़ देता है। सन्तान नहीं हुई, बलराज की चिन्ता बढ़ी। इसीलिए धीरे-धीरे लीला उनसे कुछ दूर होने लगी।

यद्यपि लीला हो गई थी सतर्क राकेश की ओर से; लेकिन फिर भी वह उसकी गति-विधि परखना चाहती थी कि आखिर वह करता क्या है ? कौन-सा कदम उठाता है ? जो समझदार होते हैं, वे जान-बूझकर धोखा खाते हैं और उसी धोखे से अनुभव करते हैं प्राप्त, कि पतन की परि-छाइयाँ मनुष्य को कहाँ तक आगे-आगे ले जाती हैं, जहाँ उसका विश्वास नहीं, उसकी मिथ्या उसके साथ चलती है। एक दिन बीता, दूसरा सवेरा हुआ, तीसरी साँझ रात में बदली और चौथा प्रभात भी मुस्कराया। पाँचवे दिन मनःस्थिति कुछ-कुछ बस में रही, तब राकेश सामने आया, उसने हँसकर कहा—"हुजूर का गुस्सा कुछ ठण्डा हुआ कि नहीं। मैं कुछ अर्ज कर सकता हूं। लेकिन यहाँ नहीं, यहाँ कुछ भी नहीं कहूँगा। चलो कुतुबमीनार चलें। कितनी सुन्दर जगह है; कैसा बढ़िया एकान्त ? वहीं पृथ्वीराज की अदालत लगती थी। वहीं है बेला का सतखण्डा, जिसे हम कुतुबमीनार कहते हैं। वहाँ लोग क्यों जाते हैं ? उनको शान्ति मिलती है। चलना है तो इन्तजाम करो और एतराज है तो कोई बात नहीं।"

"आखिर तुम कहना क्या चाहते हो राकेश ? यह साफ-साफ सुन लो मैं अपने पति को धोखा नहीं दे सकती। मैं तुम्हारी भाभी हूँ। मुझ से अदब से बात करो। तुम्हें नहीं मालूम तुम हमारे टुकड़ों पर पल रहे हो। चलो चलती हूँ, यह तुम्हारे साथ मेरी अन्तिम यात्रा है। कुतुब-मीनार नहीं तुम ओखला चलो, चिड़िया घर चलो। देहली से मीलों दूर। न जाने क्यों मुझे तुमसे बेहद नफ़रत हो गई है ?"

यह कह लीला कमर पर हाथ बाँध बरामदे में टहलने लगी। उसके नथुने गुस्से से फड़क रहे थे। उसके होंठ हिल रहे थे। तब अपराधी की

भाँति राकेश उसके सम्मुख खड़ा हो विनयी स्वर में कहने लगा—"नफ़र
को मैंने प्यार में न बदल दिया तो मेरा नाम राकेश नहीं। चलो
आज मेरी बड़ी इच्छा है कि हम लोग कुतुब पर चढ़ें। वहाँ से शहर दे
पिकनिक की पिकनिक हो जाएगी और एक बहुत बड़ी समस्या का ह
हो जाएगा। चलो टिफ़िन-कैरियर तैयार करवाओ। कोल्ड ड्रिंक के थ
मस ले लूं और...।"

"और कुछ नहीं राकेश तुम चलो, आज मैं इस रोज़-रोज़ के कि
को खत्म ही कर दूं। मैं...।"

"कौन-सा किस्सा खत्म किया जा रहा है। कहाँ की तैयारी है, सवे
ही-सवेरे। अरे लीला तुम्हारी आँखों में बल। क्या...?"—बलर
अभी इतना ही कह पाए थे कि राकेश बीच में ही बोल उठा—"कु
नहीं भैया, कुछ नहीं। हम लोग कुतुबमीनार जा रहे हैं। भाभी
छोटी-सी बात पर गुस्सा आ जाता है। यह इनका स्वभाव है। क
बाहर जा रहे हो भैया ? ड्राइवर से कह दो कार ले आए और दे
बैरा को बोल दो—दो थर्मस कोल्ड ड्रिंक रख दे। टिफ़िन-कैरियर मह
राजिन ला रही है, बस चलो भाभी जल्दी से साड़ी बदल लो।"

"अच्छा, अच्छा।" यह कहते हुए बलराज वहाँ से चले गए। ली
ने साड़ी बदली जो क़ीमती न होकर साधारण चिकिन की थी। वह
लटकाए कार में आकर बैठ गई। ड्राइवर ने झुककर उसका आद
बजाया और डरते-डरते बोला—"चलूं मेम साहब। गाड़ी स्टार्ट करूँ

"ओह ! ब्लाडी फूल। कोई ज़रूरत नहीं, तुम जाओ।" यह क
लीला स्वयं चालिका बनी, उसने चाबी खोली। स्टियरिंग ह्वील पर उस
दोनों हाथ पहुँचे। राकेश उसके पास नहीं बैठा। वह पीछे की सीट प
आसीन हो गया।

कार हवा से बातें करती हुई सड़क पर दौड़ने लगी। लीला
रही थी कि ज़रूर इसका स्वार्थ होगा, ज़रूर कोई भेद।
कुतुबमीनार जा रहा है और राकेश सोच रहा था मन-ही

के बाद फिर मौक़ा मिलने का नहीं। मालूम होता है लीला कुछ चौंक गई। इसे किसी ने बहका दिया। मैं इसे आज कुतुबमीनार की पाँचवीं मन्ज़िल से गिराऊँगा। यही तो होगा कि बलराज भैया तीसरा व्याह कर लाएँगे। मैं उसे भी बर्थ-कन्ट्रोल की दवा खिला दूँगा और जो नई कली आएगी उसे जी-भर मसलूँगा। दुनिया में सब-कुछ चलता है।

कार पृथ्वीराज रोड से आगे निकल गई। सात मील की दूरी तय हो चुकी थी। लेकिन लीला और राकेश अब तक मौन थे। इण्डिया गेट का भव्य-द्वार आया। दूर से दिखलाई दिया पालम हवाई अड्डा। कई पुराने मक़बरे गुज़रे। फिर आया कुतुबमीनार जिसको चारों ओर से घेरे पृथ्वीराज का किला ध्वंसावस्था में खड़ा था। दोनों कार से नीचे उतरे। सामान उसी में बन्द रहा। चाबी लीला ने उंगली में पहन ली और उसे छल्ले की तरह हिलाती हुई आगे बढ़ी। दोनों आए क्यू में लगे। गेट पर उनसे पूछताछ हुई। दोनों ने अपने को देवर भाभी बतलाया। वे सीढ़ियों पर चढ़े। वे पहली मन्ज़िल की गैलरी में आये। ठण्डी-ठण्डी हवा लगी और दूसरी मन्ज़िल पर से जब झाँके तो नीचे के आदमी छोटे-छोटे से नज़र आये। तीसरी से दिखलाई दिया नजफ़गढ़, ओखला और नई तथा पुरानी देहली। चौथी से यमुना दृष्टिगोचर हुई, पतली-पतली चींटे की तरह और पाँचवीं पर पहुंच ठिठक गये राकेश के पैर। उसने अन्य लोगों के मुँह देखे। दाएँ-बाएँ और आगे-पीछे देखा। अचानक उसकी दृष्टि लीला से मिल गई। उसने कहा—"क्या देख रहे हो कुछ परेशान से हो राकेश। यह कुतुबमीनार है, मैं तुम्हारे साथ हूँ और बोलो आज तुम बोले नहीं या तो कुछ कमी मुझ में आ गई है या अपराधी तुम हो।"

राकेश कुछ नहीं बोला। वह घूमकर नीचे उतरने लगा। तब लीला ने उसे फिर टोका। वह व्यस्त स्वर में बोली—"कितनी मेहनत की। इतनी सीढ़ियाँ चढ़ीं। अरे पांच मिनट तो सुस्ता लो, ऐसी भी क्या जल्दी है?"

लेकिन राकेश ने नहीं सुना। वह सीढ़ियों-पर-सीढ़ियाँ उतरता चला

गया। लीला भी पीछे-पीछे चली। कुतुब की तंग सीढ़ियाँ, वहाँ भी क्यू, एक उतरता एक चढ़ता। लीला ऊबने लगी जहाँ कहीं झरोखा मिल जाता वह नथुने खोलकर ठण्डी साँस भरती। चौथी गैलरी पर उसने सोचा, शायद राकेश रुके; लेकिन वह उतरता गया। तीसरी पर भी उसकी आशा पूरी नहीं हुई। दूसरी गैलरी आई और पीछे छूट गई। उसके बाद ये लोग पहुँच गए नीचे। लीला गई। उसने कार की विण्डो खोल दोनों थरमस कन्धों पर लटका लिए। तब राकेश ने पीछे से आ उठा लिए टिफ़िन-कैरियर।

एक झोले में दरी थी। राकेश ने वह लाकर हरी दूब पर बिछा दी। खाना, फल और मिठाइयाँ सब सामने थीं। थरमस भी दोनों पास रखे थे। दोनों ने खाना आरम्भ किया। खाते-खाते लीला बोली—"यह रेवती कौन है? क्या तुम इसे जानते हो? कल मिली थी, तुम्हारी बड़ी तारीफ़ करती थी। वही जो लोदी कॉलोनी में रहती है। शायद तुम्हारा उसका कुछ रिश्ता है।"

अब राकेश का माथा ठनका, वह समझ गया कि शायद इसे रेवती मिली है। उसी ने उसके कान भरे हैं; लेकिन इसने व्युत्पन्न-बुद्धि से काम लिया और तत्क्षण ही कहने लगा—"मैं नहीं जानता रेवती को। मेरा किसी से रिश्ता नहीं। तुम क्या कहना चाहती हो?"

"वही जो तुमको अच्छा नहीं लगता कि मैं अपने पति को धोखा नहीं दे सकती। उसे छोड़ तुम्हारे साथ नहीं जा सकती। तुम मेरी राह से हट जाओ या खुद मैं ही कोठी छोड़ दूँ। दो में से एक बात होकर ही रहेगी।"

लीला ने यह कहा। राकेश ने सुना। वह गम्भीर हो गया, कुछ जवाब नहीं दिया।

फिर कुछ रुककर लीला बोली—"मनुष्य में जो कुछ हो वह स्पष्ट, आडम्बर नहीं चला पाता। धोखा साथ नहीं देता। [illegible] जब आदमी बदलने लगता है गिरगिट की तरह रंग, तब तो

मैं आगे कुछ और न कहूँ यही अच्छा है। चलो देर हो रही है। आज की पिकनिक, पिकनिक नहीं, एक ऐसा ही चलताऊ प्रोग्राम था कि तुम जो कुछ कहना चाहते थे कह ही नहीं पाए। परिस्थिति बिगड़ गई। हम लोगों को अब दूर-ही-दूर रहना चाहिए।''

यह कह लीला उठ खड़ी हुई। उसने खाली थरमस कन्धों पर लटका लिए। राकेश ने अनमने मन से टिफ़िन-कैरियर बन्द किये और वैसे ही समेटी उपेक्षापूर्वक दरी। दोनों कार के निकट आये। लीला चालक के स्थान पर बैठी और राकेश वहीं पीछे; जहाँ आते समय भी बैठा था और सोचता रहा था।

दोपहर ढलने-ढलने को हो रही थी। पावस का सूरज निकला तो था; लेकिन एक छोटे से भूरे बादल ने उसे ढँक रखा था। हवा इस समय की गुनगुनी थी और कुतुब के प्रवेश द्वार पर सवारियों की भीड़ बढ़ती ही जा रही थी; क्योंकि दिन ठण्डा हो रहा था। बस स्टॉप पर क्यू-ही-क्यू नज़र आ रही थी। यद्यपि बस महरौली तक जाती थी; लेकिन यहाँ उसे प्रायः अधिक रुकना पड़ता। स्क्यूटर-रिक्शे एक के तीन माँगते। टैक्सी वाले सीधे मुँह बात नहीं करते। ताँगे और मनुष्य-चालक रिक्शे उनकी भी भरमार थी। आते समय वे पैसे उतने ही लेते जो उचित होते। किन्तु जाते समय उनका मोल बढ़ जाता। यात्री भी जल्दी में होते, उन्हें लौटने की धुन होती। इस तरह वहाँ छोटा-मोटा एक जन-समुदाय जुड़ा था। जिसका कोलाहल तुमुल तो नहीं लेकिन क्षीण भी नहीं; वह था हल्के शोर से भरा। डीज़ेल-आयल का बदबूदार भद्दा धुआँ छोड़ती हुई बस छूटी और आगे बढ़ गई। तभी स्टार्ट की लीला ने कार। उसकी कार भी तारकोल की काली सड़क पर रपटने लगी। सड़क नागिन-सी थी, कभी इधर मुड़ती कभी उधर घूमती और ऐसे ही मोड़ ऐसे ही विचार उठ रहे थे लीला के मन में कि रेवती ने जो कुछ भी कहा है वह अक्षरशः सच है। राकेश का मौन यह सिद्ध कर देता है कि वह अपराधी है। मैं इस आदमी से अब कोई मतलब नहीं रखूँगी। यदि मेरा

बस चला तो एक दिन इसे कोठी से निकाल बाहर करूँगी। ऐसे में जहाँ सड़क पर खम्भे में लगा बोर्ड नज़र आ जाता—'स्पीड फिफ्टीन'—'स्पीड लिमिट टेन' तो वह चौंक जाती, ब्रेक दाबती, गाड़ी को नियंत्रण में ले आती।

जब कि राकेश चाह रहा था कि गाड़ी बहुत धीरे-धीरे चले। मुझे बहुत सोचना है। यह लीला नहीं बला है मेरे लिये क़यामत। मैं इसको कुतुब से नीचे नहीं गिरा सका। लाया तो हूँ पिस्तौल। क्या पीछे से इसे शूट कर दूँ? यह सब जान गई। इसकी भी आँखें खुल गई हैं रेवती की तरह। अब यह नागिन डसकर ही रहेगी। इसके प्यार का जादू बलराज भैया के सिर पर चढ़कर ऐसा बोल रहा है जैसे लाल किले की लाल-कुँअरि। जिसने कभी यात्रियों से भरी नाव को डूबते नहीं देखा था। शहंशाह की आज्ञा हुई। भरी यमुना में नाव पर स्त्री और बच्चे, पुरुष लगभग पचास बैठाये गये। फिर नाव डुबो दी गई। इस तरह लाल-कुँअरि की इच्छा पूरी हुई। सो यह लीला भैया के कान भरकर मुझे मिट्टी में मिला सकती है। मैं उसको नेस्त-नाबूद कर दूँगा। मैं वह कहानी ही नहीं रखूँगा, जिससे आगे का हाल जुड़े। ठीक है, ठीक काम को कर डालना ही चाहिए।

अब राकेश का हाथ पैन्ट की जेब में पहुँच गया। वह काँपा। पिस्तौल बाहर निकली तो उसे गरूई-गरूई मालूम हुई। उसने घोड़ा उठाया, चर्खी घुमाई, गोलियाँ छः भरी थीं। उसने हिम्मत बाँधी लेकिन तब तक धड़कने लगा तेज़ी से हृदय। वह बार-बार निशाना साधता, फिर हाथ हटा लेता। कार भागी चली जा रही थी। अब इण्डिया गेट आने ही वाला था। आखिर दृढ़ निश्चय करके राकेश ने निशाना साधा, वह घोड़ा दबाना ही चाहता था कि तब तक पीछे से पकड़ ली किसी ने उसकी कलाई। उसने घूमकर देखा वह रेवती थी।

अब राकेश के काटो तो बदन में खू[illegible]
गया और तभी पिस्तौल कब्जे में आ ग[illegible]

राकेश के गले में अड़ाती हुई बोली—"हैण्ड्स्-अप। तू मारना चाहता था लीला को। मैंने सवेरे-ही-सवेरे तुम दोनों को कार में कुतुब जाते हुए देखा। मुझे कुछ ऐसा लगा कि आज अनहोनी होने वाली है। मैं कालेज नहीं गई। घर भी नहीं गई। मैंने टैक्सी की और तुम्हारी कार का पीछा किया। तुम लोग कुतुब पर चढ़े, फिर वहाँ से वापस आए और यह था लीला का सौभाग्य जो तुम टिफ़िन-कैरियर निकालते समय खिड़की खुली ही छोड़ गए। मैंने सोचा था कि तुम दोनों सही सलामत कोठी पहुँच गए तो मैं कार की वर्थ से निकल चुपचाप अपने घर चली जाऊँगी और अगर बीच में कहीं तुमने नर-पिशाच का रूप दिखाया तो मैं चण्डी बन जाऊँगी। लीला का जीवन बरबाद नहीं होने दूँगी।"

अब कार रुक चुकी थी। लीला के हाथ स्टीयरिंग व्हील पर टिके थे। वह पीछे घूमकर जो दृश्य देख रही थी, जो सुन रही थी, उससे उसे भय लगा। उसके रोंगटे खड़े हो गए। वह कुछ भी पूछ नहीं पाई रेवती और राकेश से। मुँह बाये अवाक् वह राकेश को एक टक देख रही थी जो खामोश था, जिसकी देह पत्ते की तरह थर-थर काँप रही थी।

रेवती कह रही थी—"तू बड़ा नीच है राकेश! तू पराई इज्ज़त को मिट्टी समझता है। तू दुनिया से नहीं डरता। भगवान को भी जेब में डाले है। बोल अब तू मेरी गिरफ़्त में है, चलाऊँ गोली। तेरे ही कारण मुझे तलाक़ मिली। तेरे ही कारण मैं माँ नहीं बन पाई। नरक के कीड़े, आज मैं तुझे सजा ज़रूर दूँगी।"

राकेश का होठ पर से होठ नहीं उठा। अब लीला रेवती के पास आ गई। वह उससे जल्दी-जल्दी व्यस्त स्वर में पूछने लगी कि "आपके हाथ में पिस्तौल, क्या बात हुई?"

"हाँ, मेरे हाथ में पिस्तौल, इसी से यह दुष्ट तुम पर निशाना साध रहा था। ज़रा इसकी हिम्मत तो देखो। आज मैं न आ जाती तो तुम्हारी जान नहीं बचती। यह······।"

रेवती अभी इतना ही कह पाई थी कि सहसा वह चौंक गई। लीला

से बातें करने में उसका ध्यान बँट गया। राकेश खिड़की खोलकर भागा और जब तक दोनों सकते की हालत में एक-दूसरे की ओर देखें-देखें तब तक वह न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। लीला और रेवती दोनों ठगी-सी खड़ी-की-खड़ी रह गईं।

४

देर तक लीला और रेवती जहाँ-की-तहाँ ही खड़ी रहीं। फिर दोनों आकर बैठ गईं आगे की सीट पर। रेवती का मुँह बन्द नहीं हुआ वह लीला से कहती रही कि बड़ा सयाना है राकेश। देखो कैसा दाँव दे गया, वह तुम्हें मार क्यों डालना चाहता था ? क्या तुमने उससे उसके भेद की कोई बात कही थी ? मालूम होता है तुम्हारी उसी भूल ने उसे ऐसा करने के लिए बाध्य कर दिया। बहन मारने वाले से बचाने वाला बहुत बड़ा होता है। ईश्वर हर जगह रक्षा करता है। उसकी बड़ी-बड़ी बाँहें हैं।

और लीला भी अपना दुखड़ा रो रही थी कि ज़ालिम बड़ा जल्लाद निकला। यह पापी जिस पत्तल में खाता है उसी में छेद करना चाहता है। हाँ, मैंने उससे पूछा था कि रेवती को जानते हो।

"ओह ! तभी तो आग में घी पड़ गया। अब तुम्हारी खैर नहीं, संभल कर रहना। दुष्ट लोग शैतान होते हैं शैतान। उनके लिए कहा जाता है कि शैतान अगर मारता नहीं तो हैरान ज़रूर करता है। रुकोगी या जाने की जल्दी है, मोड़ लो कार, सामने ही लोदी कॉलोनी है, तुम्हें अपना घर दिखला दूं। कभी ज़रूरत पड़ सकती है। क्योंकि परिस्थितियाँ जटिल हो रही हैं। मौके नाज़ुक बन-बनकर सामने आएँगे। होशियारी से न रहीं तो जान का भी ख़तरा है और वह भी हो सकता है जो मेरे साथ हुआ है।"

जाएगा जैसे साधारण हवा में दिये की लौ। क्या जाऊँ ? मैं भी
के से कोठी पहुँचूँ। मुझे लगता है कि आज की रात जैसे कुछ होने
ला है। सवेरे की शंका निर्मूल नहीं निकली। उसने सन्देह को और
आगे बढ़ा दिया। मन की परख रखने वाले जानते हैं कि अच्छे और
लक्षण पहले से ही अपना आभास दे जाते हैं।

रेवती सोचती रही, वह खड़ी रही। साँझ आई, धीरे-धीरे गोधूलि
ता रात में परिणित हो गई। आकाश का नीला तम्बू तारों से सज
था। चन्द्रमा नहीं निकला। उसे बादल घेरे थे, नज़रबन्द किए थे। वे
ार कर रहे थे उससे और इधर-उधर इतरा-इतराकर घूम रहे थे। वे
सन्न थे और अजर-अमर हो जाना चाहते थे चन्द्रमा का अमृत पीकर।

५

लीला ने जब कोठी में प्रवेश किया तो बलराज ताव में भरे कमरे में
घूम रहे थे। वे बार-बार बाहें फटकारते और स्वतः ही क्रोध से बड़-
बड़ाने लगते—"नहीं ऐसा नहीं हो सकता, कभी नहीं हो सकता।
रेवती और लीला दोनों की जान एक कर दूँगा। उसकी यह हिम्मत,
उसने तुम्हें पिस्तौल दिखलाई। मार डालने की धमकी दी। वाह री औरत
तेरी जात निराली है। रस्सी जल जाती; लेकिन फिर भी ऐंठन नहीं
छूटती।"

राकेश बुत बना बैठा था माटी-सा और श्वेत तथा दूधिया रॉड
अपनी रोशनी प्रसारित कर आपस में एक-दूसरे से कह रहे थे कि आज
की रात खैर नहीं। हम दोनों जब जगमगाए तभी वातावरण गम्भीर
हो गया। इसके बाद मामले ने तूल अर्ज पकड़ा और अब देखो क्या
होता है ?

एयर कण्डीशन कमरे के कोने-कोने से जैसे फर-फर हवा निकलती
रेडियो वन्द था और ताव से वलराज का मत्था तवा जैसा गरम
रहा था। एक वार वलराज ने दरवाज़े की ओर देखा तभी प्लॉस्टि
का रंगीन पर्दा उठा और उनकी द्वतीया ने कमरे में प्रवेश किया।

"कहाँ से आ रही हो—तुम तो राकेश के साथ गई थीं। वोले
जवाव दो लीला। मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था। मैं......"

वलराज अभी इतना ही कह पाए थे कि अपने क्रोध पर नियन्त्र
पाती हुई लीला सहज-स्वर में वोल उठी—"राकेश ने तो तुम्हें स
वतला ही दिया होगा। तुम्हारे सवालों का जवाव यही मूर्ति देगी, इ
सब मालूम है।"

"लीला—मेरी वात का जवाव दो, मूर्ख मत वनाओ। मैं जानत
हूँ कि स्त्री कितनी चालाक होती है। वह एक ही क्षण में मनुष्य को सौ
सौ धोखे देती है। वोलो रेवती कहाँ मिली तुम्हें? उसने तुमसे क्य
कहा? जवाव दो लीला वरना मुझसे वुरा कोई न होगा।" यह कहक
वलराज ने दाँत पीसे। मुट्ठियाँ भींचीं और फिर वे अनायास ही वड़
ज़ोर से चिल्ला पड़े—"लीला, नालायक़ औरत! तू वहाँ गई क्यों?"

"मैं गई नहीं। रेवती मेरे पास स्वयं आई थी। वह कनॉट प्लेस के
एक सिल्क एम्पोरियम में मिली थी और मुझे एक पत्र दे गई थी, तभी
मुझे कुछ भेद मालूम हुए और उसी रात को मैं रोशनआरा वाग़ गई।
हम दोनों की एक कैफे में वातें हुई। रेवती ने वहुत-कुछ वतलाया। फिर
यह छलिया, यह नीच, पापी, चाण्डाल।" यह कह लीला ने वक्र-दृष्टि
से राकेश की ओर घूरा। उसने एक से ही नहीं दसों उँगलियों से इंगित
किया, फिर तो उसमें जीवट आ गया और वह भी पति की तरह दहाड़ने
लगी। क्रोध से उसके गालों पर सुर्खी दौड़ी। उसके हाथ हिलने ही नहीं,
झटकने और फड़कने लगे। वह वोली—"हाँ! तो सुनो इस अपने
अनुज राकेश की करतूत। यह मुझे हमेशा यही सिखाता रहा कि मैं
तुम्हें छोड़ दूं और इसके साथ कहीं भाग

सब रहस्य बतला गई। अब मेरी आँखें खुल गईं। इसने जब जाना कि भेद खुल गया है तो इसने खुद पिस्तौल से मुझ पर वार करना चाहा। रेवती ने मुझे बचाया। वरना यह मुझे मार, मेरी लाश किसी मेन-होल में डाल देता। बस और कुछ पूछना है मुझसे।"

बलराज को ऐसा लगा कि यह कमरा नीचे से ऊपर को घूम रहा है। उसकी आँखों के आगे ज़र्दी-सी छा गई। उसने बड़े गर्व, बड़े अभि-मान से कहा—"राकेश झूठ नहीं बोलता, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ, मुझे सफ़ाई देने की ज़रूरत नहीं। खबरदार जो आज से तुम रेवती से मिलीं तो मैं तुम्हें भी उसी गति को पहुँचा दूंगा जो उस दुष्टा की हुई।"

राकेश मामला संगीन देख, चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया ौर ईश्वर से मनाने लगा अपनी खैर कि भगवान्, खूब बचाया। बलराज ा विश्वास ज्यों-का-त्यों कायम है।

दम्पत्ति में देर तक वाक्-युद्ध चलता रहा। अगर लीला हथिया ाल देती तो बलराज उसकी सुनते; लेकिन तर्कों के तीर-कमान लि वह उनके सम्मुख प्रस्तुत थी। ज़िरह चली। बहस हुई। गुस्से से हुमक हुमक बलराज कई बार उसे मारने दौड़; लेकिन लीला नहीं दबी। ते खौलता गया और दम्पत्ति आपस में ही इस बुरी तरह खिसिया गये f दोनों की इच्छा होने लगी, एक-दूसरे को गोली मार दें।

भीतर दम्पत्ति में कहा-सुनी हो रही थी और बाहर किवाड़ों आड़ में खड़ा राकेश अब प्रसन्न हो रहा था। मुस्करा रहा था कि मे तीर खूब निशाने पर बैठा है। मौक़ा कोई ढूंढ़ता है और मुझे बार-ब मिलता है। कहो लीला! कौन हारा, कौन जीता। अरे अभी क्या दे है? यह तो तेल है, तुम्हें तेल की धार भी देखनी है। ज़रूरत पड़ेगी तुम्हारे गोली मार दी जाएगी और किसी को पता भी नहीं चलेगा। इ तरह तलाक़ तो अब तय समझो। जब शक हो जाता है तो बल औरत को दुश्मन समझने लगता है।

राकेश अपनी दुनिया में मग्न था। सहसा एक छटाके की आवाज़ ह

मेज़ की ड्रार खुली। पिस्तौल मेज़ पर वजी। लीला थर्रा गई।
तेज़ी के साथ यह कहता हुआ कमरे से वाहर निकल गया
जाता हूँ रेवती के घर। उसे वता दूंगा कि किसी की [illegible]
लगाने का नतीजा क्या होता है?"

लीला अपने स्थान से तिल-भर भी नहीं हिल पाई औ
रह गया खड़ा देखता। वलराज पोर्टिको में आ ज़ोर-ज़ो
लगे—"गैरिज की चावी कहाँ है? ड्राइवर, ओ ड्राइवर।"

ड्राइवर अभी-अभी कार गैरिज में वन्द करके आ र
उल्टे पैरों भागा और मोटर निकाल लाया। जव वह [illegible]
पर वैठने लगा तो डाट दिया वलराज ने कि जा भाई, तेरी [illegible]
मुझे अकेले ही जाना है।

कार पोर्टिको से वाहर आई और वह दौड़ने लगी [illegible]
रफ़्तार में। तव रात का पहला पहर क़रीव-क़रीव वीत रहा
पर पहले-जैसी चहल-पहल नहीं रह गई थी। नई देहली [illegible]
की तरह घनी नहीं वसी है इसीलिए।

केसरिया रेशमी रंग की प्लाईमाउथ मोटरकार, जब लो
के चौराहे पर पहुँची तो वलराज ने एक लम्बी साँस ली और
मन कहा कि आज रेवती तुम्हारी खैर नहीं। तुमने
जगाया है। फिर कार रेवती के दरवाज़े पहुँची, द
खुले। पति को देखते ही रेवती ज़ोर से चिल्ला प
क्यों आये? जाओ, चले जाओ, मैंने पूछा नहीं
खोल दी।"

यह कहने के साथ ही रेवती खुले किवाड़ बन्द करने लगी। तब तक बलराज अन्दर आ गए। उसने रेवती को धक्का दिया ? वह गिर पड़ी। तब बड़बड़ाता हुआ वह कमरे में एक ओर खड़ा हो गया। वह कह रहा था—"अभी तुम्हारा दिमाग़ रास्ते पर नहीं आया। चोर की दाढ़ी में तिनका। तभी तो मुझको देख किवाड़ें बन्द करने लगी। तूने लीला का दिमाग़ खराब किया। तू क्या सोचकर यह खेल खेलने चली ? बोल, जवाब दे, वरना मैं गोली तेरे सीने के पार कर दूंगा।"

और जब बलराज ने हाथ में पिस्तौल ले ली, उसे हिलाने लगा तो रेवती जल्दी से उठी, उसने भी पिस्तौल निकाली। यह तो खूब मिल गई थी उसे आज। जाते समय उसने लीला को देनी चाही; लेकिन वह यह कहकर छोड़ गई कि तुम्हें इसकी ज़रूरत पड़ सकती है। मेरे घर मे तीन पिस्तौलें हैं। एक ये रही, दो अभी शेष हैं।

जब रेवती के हाथ में पिस्तौल सधी तो बलराज अपना-सा मुँह लेकर रह गया। वह बोला—"यह बात है। तो यह वही पिस्तौल है, जो कोठी से चुराकर तुम्हें लीला दे गई थी और इसी को लेकर तुम राकेश को धमकाने गई थीं, उसे मार डालने का साहस किया था। बोलो, तुम मेरे बीच में क्यों आ रही हो ? मैं इसका जवाब लेने आया हूँ और तुम्हें बतलाना पड़ेगा।"

"न भी बतलाऊं तो मुझे कोई डर नहीं। तुम मेरा कुछ भी नहीं कर सकते हो; लेकिन बतलाऊँगी इसलिए क्योंकि यह लीला की इज्ज़त का सवाल है। दुष्ट राकेश उसका जीवन बरबाद कर देगा। मुझे यह चिन्ता हुई, तभी मैं उससे मिली, उसकी आँखें खोलीं और उसे समझाया। मैंने, कोई गुनाह तो नहीं किया। बस यही कारण है, कि मैं बीच आई।"

रेवती की बात समाप्त हो गई। लेकिन पिस्तौल उसके हाथ में सीधे-का-सीधा बना रहा। बलराज ने अपनी पिस्तौल कन्धे से लटक रही पेटी में डाल लिया और फिर बोला—"चला गोली, मैं भी तो देखूं

क औरत में कितनी हिम्मत होती है। तू मेरा घर वरवाद करेगी। तू मेरी जिन्दगी से खेलेगी। मैं वहुत बुरी गति करूँगा तेरी। तू······"

"रेवती इतनी वेवकूफ़ नहीं कि अकारण ही कोई भूल करे, तुमने पिस्तौल रख ली है; लेकिन मुझे तुम पर यक़ीन नहीं। जो वात से न मरा, वह गोली से क्या मरेगा? जाओ, मेरा मन न दुखाओ, अव और कुछ नहीं तुमसे केवल यही आशा रह गई है।"

रेवती के मुँह से यह सुन वलराज क्रोध के कारण अपनी जगह से वालिस्त-भर उछल पड़े। वे जोर से चिल्लाए—"रेवती।"

फिर तनिक रुक, वे कुछ सोचते हुए-से एकदम कहने लगे—"मैं तुम्हारा खून ही नहीं कर दूंगा, तुम्हें जो मासिक रुपया देता हूं, वह वन्द कर दूंगा। तुम पिस्तौल से मेरा मुक़ावला करोगी। मेरे पास पैसा है, मैं एक नहीं दस गुण्डे लगा दूंगा। उनसे तुम अपनी रक्षा नहीं कर पाओगी। काश! अगर तुम मेरा सन्देह दूर कर पातीं तो मैं तुम्हें तलाक़ क्यों देता? चुपचाप अपना काम देख, चींटी के पर न जमे। मैं तुम्हारी अच्छी खवर लूंगा कि तुम जिन्दगी-भर याद करोगी।"

रेवती भला कव पीछे हटने वाली थी। वह बोली—"जाओ, जाओ, वड़े आदमी, पैसे वाले, पूंजीपति, मेरी इतनी उम्र हो गई, लेकिन मैंने गरजने वाले वादलों को कभी वरसते नहीं देखा। मुझे गीदड़ भवकी न दिखाओ, धमकी मत दो। मेहनत करती हूँ, स्वयं कमाती हूँ और कान खोलकर सुन लो कि इस महीने जो सौ रुपये का मनीऑर्डर आएगा मैं उसे वापस कर दूंगी।"

अव तो वलराज के गुस्से का पारावार न रहा। वे इतने हो गए कि रेवती के हाथ से पिस्तौल छीनने लगे। उसे भी मौक़ा। उसने नली उनकी छाती से अड़ा दी। फिर सख्त "हाथ ऊपर उठाओ। हैण्डस्-अप प्लीज़।"

···और डरते-डरते वलराज को ऐसा ही क

उसे पुनः ललकारा। वह बोली—"इसी तरह उल्टे-उल्टे लौट जाओ और फिर कभी मत आना।"

अब बलराज की बोलती भी बन्द हो गई। उसकी देह सनसना गई। वह मरता क्या न करता की तरह धीरे-धीरे पीछे लौटने लगा। पिस्तौल की नली अब भी उसकी छाती से अड़ी थी और रेवती तेवर चढ़ाये कटु शब्दों में कह रही थी—जाओ, तुम मेरे खिलाफ़ अदालत में कल नोटिस देना कि मेरे पास तुम्हारा पिस्तौल है और मैं उसे चुरा लाई हूँ, कल ही कर दूंगी उसे किसी मेनहोल या अन्धे कुंए के हवाले। फिर मैं भी ज़िलाधीश से मिलकर प्रार्थना-पत्र दूंगी और निज की रक्षा के लिए स्वयं बारह बोर का रिवाल्वर खरीदूंगी। देखूं, तुम कितने चालाक हो तुम डाल-डाल तो मैं पात-पात।"

...और जब बलराज दरवाज़े तक पहुँच गए तो रेवती उसे बाहर भी दो क़दम भेज आई। उधर कार स्टार्ट हुई और इधर उसने कुण्डी बन्द कर ली।

७

आदमी जब मात खाकर घर आता है तो वह परिवार के लोगों को फाड़-फाड़ खाता है। लीला अपने कमरे में बैठी एक अमेरिकन उपन्यास पढ़ रही थी, जिसमें ट्रेजेडी थी और जिसके नायक ने नायिका की हत्या कर दी थी। वह सोच रही थी उसी पृष्ठ-भूमि को, कि तब तक क्रोध से हांफते हुए, बलराज उसके सामने जाकर खड़े हो गये। जाते ही वे उसका कन्धा झटककर बोले—"क्यों री, तू मेरा पिस्तौल दे आई रेवती को। बोल तुझे क्या हक़ था? एक दिन तू उसे धन-दौलत दे आएगी। तू होती क्या है इस कोठी की? धनीमानी आदमी के मन से जब औरत

उतर जाती है तो वह उसकी रखैल से भी वदतर हो जाती है
मैंने तुम्हें फूल समझा था; लेकिन तुम काँटा निकलीं।''

''क्यों झूठ बोलते हो। तनिक शर्म खाओ। पिस्तौल मैं नहीं
रेवती ने राकेश से छीनी है। कहाँ गया वह पापी, आज मैं उस
कमा कर दूँगी। क्या पढ़े-लिखे लोग और ऊँचे खानदान के रईस
ही होते हैं ? खवरदार जो मुझसे अलिफ़-से-वे कहा।''

लीला यह कहकर एक झटके के साथ उठकर खड़ी हो गई
आव-गिना-न-ताव और कमरे से वाहर निकल गई। राकेश अप
में था, वह सोने का उपक्रम कर रहा था। लीला ने जाकर उस
दबोची, फिर वलिदान के वकरे की तरह उसकी वुशर्ट का कॉल
पति के कमरे में खींच लाई और वहाँ ला दोनों हाथों से उस
दाव कर्कश स्वर में कहने लगी—''वोल रे धूर्त तेरी क्या गति
तू वीच में क्यों आता है ? तू विश्वास-पात्र वना है जवकि
का साँप है। आज मैं तुझे ही छटी का दूध याद न दिला दूंगी
नाम लीला नहीं। वोल-वोल कायर वोल, वुज़दिल तू पराये
फूलता है। देख यह रेवती नहीं लीला है। यह तुझे निकाल दे
किस हवा में।''

राकेश की गर्दन दव रही थी, उसकी दम फूल रही थी।
चेहरा सफ़ेद हो रहा था और वलराज यह देख-देख हत्या के लिए
हो रहा था। उसने पिस्तौल साधी। उसकी नली लीला के गले से
और वह वोला—''नापाक औरत दूर हट जा। अपनी सफ़ाई इ
मत दे जो चोर होते हैं वे ही छिछोरापन करते हैं। जिनके दामन में
दाग़ होता है वही अपनी चादर सफ़ेद वतलाते हैं। इस निर्दोष ने
क्या विगाड़ा ? मुझसे पूछ मैं वताऊँ कि जव औरत का पैर ऊँचे
पड़ जाता है तो वह ऐसी ही भूमिका वाँधती है, ऐसा ही नाटक दि
है। मुझे फाँसी हो जाए लीला, मैं आज तुम्हें इस दुनिया में नहीं
ताकि लोग न कहें वलराज की औरत वदचलन है, आवारा है

उसे पुनः ललकारा। वह बोली—"इसी तरह उल्टे-उल्टे लौट जाओ और फिर कभी मत आना।"

अब बलराज की बोलती भी बन्द हो गई। उसकी देह सनसना गई। वह मरता क्या न करता की तरह धीरे-धीरे पीछे लौटने लगा। पिस्तौल की नली अब भी उसकी छाती से अड़ी थी और रेवती तेवर चढ़ाये कटु शब्दों में कह रही थी—जाओ, तुम मेरे खिलाफ़ अदालत में कल नोटिस देना कि मेरे पास तुम्हारा पिस्तौल है और मैं उसे चुरा लाई हूँ, कल ही कर दूंगी उसे किसी मेनहोल या अन्धे कुंए के हवाले। फिर मैं भी ज़िलाधीश से मिलकर प्रार्थना-पत्र दूंगी और निज की रक्षा के लिए स्वयं बारह बोर का रिवाल्वर खरीदूंगी। देखूं, तुम कितने चालाक हो तुम डाल-डाल तो मैं पात-पात।"

...और जब बलराज दरवाज़े तक पहुँच गए तो रेवती उसे बाहर भी दो क़दम भेज आई। उधर कार स्टार्ट हुई और इधर उसने कुण्डी बन्द कर ली।

७

आदमी जब मात खाकर घर आता है तो वह परिवार के लोगों को फाड़-फाड़ खाता है। लीला अपने कमरे में बैठी एक अमेरिकन उपन्यास पढ़ रही थी, जिसमें ट्रेजेडी थी और जिसके नायक ने नायिका की हत्या कर दी थी। वह सोच रही थी उसी पृष्ठ-भूमि को, कि तब तक क्रोध से हांफते हुए, बलराज उसके सामने जाकर खड़े हो गये। जाते ही वे उसका कन्धा झटककर बोले—"क्यों री, तू मेरा पिस्तौल दे आई रेवती को। बोल तुझे क्या हक़ था? एक दिन तू उसे धन-दौलत दे आएगी। त

तर जाती है तो वह उसकी रखैल से भी बदतर हो जाती है। लीला
नि तुम्हें फूल समझा था; लेकिन तुम काँटा निकलीं।"

"क्यों झूठ बोलते हो। तनिक शर्म खाओ। पिस्तौल मैं नहीं दे आई
वती ने राकेश से छीनी है। कहाँ गया वह पापी, आज मैं उसकी कला
मा कर दूँगी। क्या पढ़े-लिखे लोग और ऊँचे खानदान के रईसज़ादे ऐसे
ो होते हैं? खबरदार जो मुझसे अलिफ़-से-बे कहा।"

लीला यह कहकर एक झटके के साथ उठकर खड़ी हो गई। उसने
ाव-गिना-न-ताव और कमरे से बाहर निकल गई। राकेश अपने कमरे
ं था, वह सोने का उपक्रम कर रहा था। लीला ने जाकर उसकी ग
बोची, फिर बलिदान के बकरे की तरह उसकी बुशर्ट का कॉलर प
ति के कमरे में खींच लाई और वहाँ ला दोनों हाथों से उसका ग
ाव कर्कश स्वर में कहने लगी—"बोल रे धूर्त तेरी क्या गति करूँ
[बीच में क्यों आता है? तू विश्वास-पात्र बना है जबकि आस्त
ा साँप है। आज मैं तुझे ही छटी का दूध याद न दिला दूँगी तो मे
ाम लीला नहीं। बोल-बोल कायर बोल, बुज़दिल तू पराये धन
फूलता है। देख यह रेवती नहीं लीला है। यह तुझे निकाल देगी, तू
केस हवा में।"

राकेश की गर्दन दब रही थी, उसकी दम फूल रही थी। उसक
ेहरा सफ़ेद हो रहा था और बलराज यह देख-देख हत्या के लिए प्रस्तु
ो रहा था। उसने पिस्तौल साधी। उसकी नली लीला के गले से अड़ा
ौर वह बोला—"नापाक औरत दूर हट जा। अपनी सफ़ाई इस तरह
मत दे जो चोर होते हैं वे ही छिछोरापन करते हैं। जिनके दामन में काला
दाग़ होता है वही अपनी चादर सफ़ेद बतलाते हैं। इस निर्दोष ने तुम्हारा
क्या बिगाड़ा? मुझसे पूछ मैं बताऊँ कि जब औरत का पैर ऊँचे खाली
पड़ जाता है तो वह ऐसी ही भूमिका बाँधती है, ऐसा ही नाटक दिखलाती
है। मुझे फाँसी हो जाए लीला, मैं आज तुम्हें इस दुनिया में नहीं रखूँगा,
ताकि लोग न कहें बलराज की औरत बदचलन है, आवारा है। छोड़ दे

गला राकेश का वरना मैं घोड़ा दावता हूँ। वाह ! उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे, यह अच्छी रही।"

इस पर लीला ने भय-त्रस्त नेत्रों से एक वार पति की ओर देखा। उसने राकेश का गला छोड़ दिया और दूर हटकर खड़ी हो गई। तब बलराज उसकी तरफ़ बाज़ की तरह झपटे। वे बोले—"बोल, आज मैं तेरे खून से अपने हाथ रंगूं। आवारा थी, बदचलन थी रेवती, तभी मैंने उसे तलाक़ दी। तू भी रस लेती फिरती है फूलों का, तू तितली बन गई और तितली को रंग-बिरंगी देख दुनिया ललचाती है। उसे पकड़ती है फिर मसल कर फेंक देती है।"

लीला ने देखा कि जीवन-मरण की समस्या सामने है। उसने हिम्मत बाँधी और साहस से काम लिया। धीरे-धीरे बोली—"नारी अगर विवश न होती तो पुरुष इस पर शासन नहीं करता। वह जननी न होती तो संसार नहीं चलता। वह देवी न होती तो देवताओं का जन्म नहीं होता। गोली मारो मेरी लाश को ग़ायब कर दो; लेकिन यह मत भूलो मिस्टर साहनी कि आपसे मैं ज्यादा पढ़ी हूँ और अधिक बुद्धि रखती हूँ। छोटी बुद्धि के लोग पराए कानों से सुनते और दूसरों की आँखों से देखते हैं। वे ठीक अन्धे होते हैं तुम्हारी ही तरह। आज मुझसे पाला पड़ा है, मुझे सूट कर देना। अरमान बाकी मत रखना। लेकिन पहले खूब खरी-खरी सुन लो कि मैं···।"

"लीला औरत की जात, तेरे सिर पर मौत नाच रही है। मैं हत्या करूँ, तू मुझे मजबूर कर रही है। बस खामोश हो जा, इसी में भलाई है। मैंने तेरे सारे क़सूर माफ़ कर दिए। मैं ···।"

अभी बलराज इतना ही कह पाए थे कि लीला व्यंगात्मक हँसी हँसी। वह झूठे दाँत निपोरकर बोली—"ईश्वर की अदालत से बड़ी दुनिया में दूसरी कोई अदालत नहीं। धर्म से बड़ा बाप नहीं और सत्य से बड़ी माँ नहीं। तुम क्या माफ़ करोगे मुझे ? आदमी आदमी को माफ़ नहीं करता। तुम्हें यही नहीं पता क्या सच है और क्या झूठ ? ढिंढोरा पीटे जा रहे

हो ! चलाओ गोली, वह मर्द बड़ा बहादुर होता है। जो औरत की हत्या करता है।"

"तू मुझे पानी पर चढ़ा रही है। तू मेरा खून खौला रही है क्या, कर दूँ शूट ? तू यही चाहती है।"

बलराज ने दाँतों से होठ चबाए। वे काँपे और खूब थरथराए। तभी लीला दोनों हाथ फटकार उन्हें चुनौती देती हुई बोली—"कहते क्या हो करते क्यों नहीं ? मर्द ज़बान से नहीं कहते, करके दिखलाते हैं। चलाओ गोली मिस्टर साहनी, तुम्हें मेरी क़सम, इस बेईमान राकेश की क़सम। तुम असल खानदान के नहीं अगर तुमने शूट न किया।"

अब बलराज के सम्मुख कोई चारा नहीं रह गया। औरत की बात आदमी को ऐसी लगती है जैसे बिच्छू काटने का ज़हर। वे बोले—"मैं एक मौक़ा देता हूँ, ले सँभल और अपनी भूल स्वीकार कर ले। हाँ, एक···दो।"

"···और तीन", एक दो तो निकला था बलराज के मुँह से। तीन का उच्चारण लीला ने किया और वह सीधी-सीधी फ़र्श पर लेट गई। घोड़ा दबा, गोली चली और वह दीवाल में लगी। बलराज इस बुरी तरह खिसिया गए, जैसे किसी दूसरे राजा ने उनका राज्य छीन लिया हो। वे लीला की ओर झपटे; लेकिन चतुर नारी इस युक्ति से उठी कि उनके हाथ से पिस्तौल छीनकर बाहर फेंक दी।

फिर लीला झपटी राकेश पर, वह तड़ातड़ उसके गालों पर थप्पड़ लगाने लगी। उसने एक मुक्का दिया उसकी नाक पर, जिससे नथनों से रुधिर प्रवाहित होने लगा, "तूने मार डाला इसे अब तेरी खैर नहीं, ले सँभल। मैं अभी पिस्तौल लाता हूँ।" यह कहकर बलराज कमरे से बाहर भागे, दरीचे में पड़ी पिस्तौल उठा लाए। अब लीला राकेश को छोड़ उनसे भिड़ गई। दम्पति में हाथा पाई होने लगी और उसी छीना-झपटी में दब गया पिस्तौल का फिर घोड़ा। ठाँय की आव
के कन्धे में लगी। यवनिका पतन हो गई। ड्राप
और राकेश दोनों सन्नाटे में आ गए। बलराज

कबूतर की तरह और पेरिस का वह क़ीमती कालीन ख़ून से तर हो
लगा। तभी बाहर कहीं पेड़ पर बैठा उल्लू बोल उठा। कुत्ते भोंकते-भोंक
लड़े, वे बोलने लगे। कमरे में मौत-जैसा सन्नाटा व्याप्त होकर रह गया
नौकर-चाकर भी वहाँ दौड़ आए।

लीला सोच रही थी कि उनकी हत्या मेरे ही हाथ बदी थी। यह क्य
हो गया और राकेश सोच रहा था कि बहुत अच्छा हो अगर बलरा
दुनिया से चल दे। देखते-ही-देखते बलराज बेहोश हो गए। उनके क
से पर्याप्त-मात्रा में रक्त निकल गया था। उस समय रात का सन्ना
अपने सूने आलम से कह रहा था कि देखो खामोश रहना और झींगु
तुम शहनाई मत बजाना। झिलियों झनकार मत करना और रात तु
ऐसी ही सूनी रहना। यह भेद कहीं खुल न जाए। कहानी विज्ञापन
बने। यह मौत नहीं, हत्या नहीं, एक ऐसा अभियोग है; जो प्रमाणि
करता है कि स्त्री भी पुरुष की हत्या कर सकती है।

देर हो गई और कमरे में घोर निस्तब्धता छाई रही। न किसी
होठ हिले, न सुनाई पड़े पद चाप। हाँ एक साँय-साँय अवश्य थी ज
सन्नाटे की प्रतीक थी। उसके समक्ष वातावरण रो रहा था; जो
भयानक तथा भयावह था, जिसमें रोंगटे खड़े नहीं होते बल्कि आदमी दाँ
तले उँगली दाबकर रह जाता।

८

बलराज के चले जाने के बाद रेवती ने किवाड़ों की कुण्डी अन्दर
बन्द तो कर ली; लेकिन वह सोचती रही कि अब लीला की खैर नहीं
वह जरूर खतरे में होगी। क्या करूँ मैं? पहुँचूँ करौलबाग़। टैक्स
पकड़ूँ, चौराहे पर तो मिलने से रही। आगे ही मिलेगी। मेरा मन कह

है कि आज कुछ होकर रहेगा। जब शंकाएँ और समस्याएं मन में जन्म ले लेती हैं तो फिर निश्चिन्त नहीं रह पाता मनुष्य। लीला से मुझे लगाव हो गया है। वह योग्य रमणी है शिक्षित और सुसंस्कृति। वह दल-दल में फँस गई है राकेश के कारण। ज़रूरत पड़ी तो मैं राकेश को आज मौत के घाट ही उतार दूंगी। अधिक-से-अधिक फाँसी ही तो होगी और क्या।

रेवती विचारों के उधेड़-बुन में व्यस्त थी। समय धीरे-धीरे जा रहा था पाँव करके। आखिर वह सँभली, सजग हुई। उसने पिस्तौल पर्स में डाला और चल दी घर से बाहर। लगभग एक फर्लांग जाने के बाद उसे रास्ते में जाती हुई एक टैक्सी मिली। टैक्सी की ड्राइवर एक ऐंग्लो-इण्डियन महिला थी। रेवती ने हाथ उठाया उसने गाड़ी रोकी और खिड़की के बाहर सिर निकाल तहज़ीब से बोली—"व्यर प्लीज़ सिस्टर।"

"करौलबाग़"—यह कह रेवती पीछे की खिड़की खोल टैक्सी में बैठ गई। टैक्सी चल पड़ी और थोड़ी देर में ही वह करौलबाग़ पहुँच गई।

रेवती जब टैक्सी का किराया दे रही थी तभी उसने कोठी में एक ठाँय की आवाज़ सुनी। वह सहम गई। वह दबे-पाँव धीरे-धीरे आगे बढ़ी। पोर्टिकों में नौकरों की भीड़ लग रही थी। सब में काना-फूंसी चल रही थी। रेवती चलती गई। आगे बढ़ती गई। आखिर वह पहुँच गई कमरे में तो वहाँ खून देख आश्चर्य से चौंकती हुई लीला से बोली—"गोली किसने मारी। मुझे विधवा बनाने में किसका हाथ है।"

"किसी ने नहीं। छीना-झपटी में पिस्तौल इन्हीं के हाथ से दब गई।" लीला यह कह धम्म से कालीन पर बैठ गई। राकेश रेवती को आया देख वहाँ से जाने लगा। वैसे ही रेवती ने उसे रोका वह बोली—"जाने की जरूरत नहीं राकेश। फ़ोन करो, डॉक्टर बुलाओ, या अपने भाई को अस्पताल पहुँचाओ।"

रेवती के मुंह से यह सुन राकेश कुछ ठिठक-सा गया, वह आगे नहीं बढ़ा। तब लीला तेज़ी के साथ यह कहते-कह
क्या करेगा फ़ोन ? यह बड़ा मक्कार, दगा

कबूतर की तरह और पेरिस का वह क़ीमती कालीन खून से तर होने लगा। तभी बाहर कहीं पेड़ पर बैठा उल्लू बोल उठा। कुत्ते भोंकते-भोंकते लड़े, वे बोलने लगे। कमरे में मौत-जैसा सन्नाटा व्याप्त होकर रह गया। नौकर-चाकर भी वहाँ दौड़ आए।

लीला सोच रही थी कि उनकी हत्या मेरे ही हाथ बदी थी। यह क्या हो गया और राकेश सोच रहा था कि बहुत अच्छा हो अगर बलराज दुनिया से चल दे। देखते-ही-देखते बलराज बेहोश हो गए। उनके कन्धे से पर्याप्त-मात्रा में रक्त निकल गया था। उस समय रात का सन्नाटा अपने सूने आलम से कह रहा था कि देखो खामोश रहना और झींगुरो तुम शहनाई मत बजाना। झिंझियों झनकार मत करना और रात तुम ऐसी ही सूनी रहना। यह भेद कहीं खुल न जाए। कहानी विज्ञापन न बने। यह मौत नहीं, हत्या नहीं, एक ऐसा अभियोग है; जो प्रमाणित करता है कि स्त्री भी पुरुष की हत्या कर सकती है।

देर हो गई और कमरे में घोर निस्तब्धता छाई रही। न किसी के होठ हिले, न सुनाई पड़े पद चाप। हाँ एक साँय-साँय अवश्य थी जो सन्नाटे की प्रतीक थी। उसके समक्ष वातावरण रो रहा था; जो कि भयानक तथा भयावह था, जिसमें रोंगटे खड़े नहीं होते बल्कि आदमी दाँतों तले उँगली दाबकर रह जाता।

८

बलराज के चले जाने के बाद रेवती ने किवाड़ों की कुण्डी अन्दर से बन्द तो कर ली; लेकिन वह सोचती रही कि अब लीला की ख़ैर नहीं। वह ज़रूर ख़तरे में होगी। क्या करूँ मैं? पहुँचूं करौलबाग़। टैक्सी पकड़ूं, चौराहे पर तो मिलने से रही। आगे ही मिलेगी। मेरा मन कहता

है कि आज कुछ होकर रहेगा। जब शंकाएँ और समस्याएं मन में जन्म ले लेती हैं तो फिर निश्चिन्त नहीं रह पाता मनुष्य। लीला से मुझे लगाव हो गया है। वह योग्य रमणी है शिक्षित और सुसंस्कृति। वह दल-दल में फँस गई है राकेश के कारण। ज़रूरत पड़ी तो मैं राकेश को आज मौत के घाट ही उतार दूँगी। अधिक-से-अधिक फाँसी ही तो होगी और क्या।

रेवती विचारों के उधेड़-बुन में व्यस्त थी। समय धीरे-धीरे जा रहा था पाँव करके। आखिर वह सँभली, सजग हुई। उसने पिस्तौल पर्स में डाला और चल दी घर से बाहर। लगभग एक फर्लांग जाने के बाद उसे रास्ते में जाती हुई एक टैक्सी मिली। टैक्सी की ड्राइवर एक ऐंग्लो-इण्डियन महिला थी। रेवती ने हाथ उठाया उसने गाड़ी रोकी और खिड़की के बाहर सिर निकाल तहज़ीब से बोली—"व्यर प्लीज़ सिस्टर।"

"करौलबाग़"—यह कह रेवती पीछे की खिड़की खोल टैक्सी में बैठ गई। टैक्सी चल पड़ी और थोड़ी देर में ही वह करौलबाग़ पहुँच गई।

रेवती जब टैक्सी का किराया दे रही थी तभी उसने कोठी में एक ठाँय की आवाज़ सुनी। वह सहम गई। वह दबे-पाँव धीरे-धीरे आगे बढ़ी। पोर्टिकों में नौकरों की भीड़ लग रही थी। सब में काना-फूँसी चल रही थी। रेवती चलती गई। आगे बढ़ती गई। आखिर वह पहुँच गई कमरे में तो वहाँ खून देख आश्चर्य से चौंकती हुई लीला से बोली—"गोली किसने मारी। मुझे विधवा बनाने में किसका हाथ है।"

"किसी ने नहीं। छीना-झपटी में पिस्तौल इन्हीं के हाथ से दब गई।" लीला यह कह धम्म से कालीन पर बैठ गई। राकेश रेवती को आया देख वहाँ से जाने लगा। वैसे ही रेवती ने उसे रोका वह बोली—"जाने की ज़रूरत नहीं राकेश। फ़ोन करो, डॉक्टर बुलाओ, या अपने भाई को अस्पताल पहुँचाओ।"

रेवती के मुँह से यह सुन राकेश कुछ ठिठक-सा गया, वह आगे नहीं बढ़ा। तब लीला तेज़ी के साथ यह कहते-कहते चौखट लाँघ गई—"यह क्या करेगा फ़ोन? यह बड़ा मक्कार, दगाबाज़

ाटर को यहीं पर बुलाती हूँ। अस्पताल भेजने की जरूरत नहीं।"

दूसरे कमरे में जा लीला ने डॉक्टर को टेलीफ़ोन किया। फिर वह ती के पास आ उसकी प्रतीक्षा करने लगी। थोड़ी देर बाद पोर्टिको कार का एक अपरचित हार्न सुनाई दिया। दोनों सजग हो गईं कि क्टर आ गया। यह डॉक्टर सेठी था, बलराज का फ़ैमिली डॉक्टर। उने कन्धे का आपरेशन किया और गोली निकाली। बलराज को तक-ाफ़ बहुत थी इसीलिए नींद लाने का इन्जेक्शन दे दिया गया।

रेवती उस रात फिर अपने घर नहीं गई, कोठी में ही रही और नियादारी के नाते बैठा रहा राकेश भी। सारी रात रेवती और लीला ागती रहीं। सवेरे बलराज की नींद टूटी तो वह दोनों पत्नियों को देख ल-भुन गया और मुँह घुमा लिया। उसने राकेश को पुकारा। उससे ानी माँगा; लेकिन लीला ने फ़ौरन ही पति को गिलास में पानी दिया ौर रेवती ले आई दवा की एक खुराक। डॉक्टर ने कहा था कि सवेरा होते ही एक खुराक पिला देना।

राकेश अपनी दोनों भाभियों की गति-विधि देखता रहा। वह गहरे ोच में पड़ गया कि अब मेरा यहाँ कुछ भी अस्तित्व नहीं रहा। जहाँ ्त्री-प्रधान होती है वहाँ आदमी की नहीं चलती। अच्छी घटना घट ाई, अजीब तमाशा सामने आया। क्या सोचा था और क्या हो गया? ब भैया बलराज को ठीक होने में कम-से-कम आठ-दस दिन तो लग ही जाएँगे। क्या तब तक यह रेवती यहीं रहेगी?

····और लीला जिसे गिर जाना चाहिए था बलराज की निगाहों से वह उनके सिर का ताज बन गई है। पानी मुझसे माँगा गया, दिया उसने और ताज्जुब की बात है कि भैया ने रेवती के हाथ से दवा कैसे पीली?

इसी तरह सारे दिन सोचता रहा राकेश। डॉ० सेठी आए, बैन्डेज करके चले गए। वे एक इन्जेक्शन भी लगा गए और जाते-जाते लीला को यह हिदायत कर गए कि देखिए, मिसेज साहनी, उन्हें अभी उठना-बैठना नहीं चाहिए और न चलना-फिरना ही।

राकेश वलराज के पास आकर बैठा उसने धीरे से पूछा—"अब कैसी तवियत है भैया। यह तो कहो सेठी साहव अपने फ़ैमिली डॉक्टर थे वरना ख़ुदकशी का जुर्म वनता और मामला पुलिस के हाथ में होता। हम लोग वँधे-वँधे घूमते। न जाने क्या होने वाला है? आज कई दिनों से यह चक्र चल रहा है।"

"चक्र तो चलता ही रहता है राकेश। तवियत अच्छी है। जो हुआ उसे भूल जाओ और आगे की सोचो। यह रेवती क्यों टिकी है यहाँ? उससे कह दो चली जाए। अभी दोनों कमरे से वाहर गई हैं। लीला को तो उसने चेली वना लिया है, चेली। दोनों एक ही वाणी वोलती हैं। दोनों की साँसें और दोनों के स्वर एक ही जैसे हैं।"

वलराज की यह वात सुन उनका मुँह पा, राकेश कुछ कहना ही चाहता था कि तव तक आहट हुई। लीला ने चौखट पर पैर रखा तो राकेश मुँह की आई वात लौटाकर उपड़-चुपड़ करने लगा। वह वोला—"ठीक है भैया, ठीक है। चिन्ता की कोई वात नहीं। वस समझ लो कि तुम्हारी नई ज़िन्दगी हुई और ईश्वर ने वड़ी रक्षा की। गुलूकोज़ वाटर दूं, डॉक्टर ने वतलाया था।"

...और फिर उत्तर की प्रतीक्षा किए विना ही राकेश ने दो चम्मच गुलूकोज पाउडर कटोरी में डाला। उसे पानी में अच्छी तरह घोल वलराज को पिला दिया। देखा लीला ने, यह उसे विलकुल अच्छा नहीं लगा।

वलराज न तो लीला से वोलते न रेवती से ही। वे दिन-रात राकेश-राकेश की रट लगाये रहते और राकेश को मौका ही नहीं मिल पाता जो वह उनसे भेद की वातें कहे। अपनी कहे उनकी सुने, नई योजना वनाये रेवती और लीला दोनों पति के पास से नहीं हटतीं और राकेश यह सोचता कि जव भैया अपने मुँह से नहीं कह पाते कि रेवती तुम चली जाओ तो मैं कैसे कहूँ? किस वूते पर। समझ में नहीं आता परिस्थिति वहुत ही जटिल हो गई है।

इस तरह चार दिन वीत गए। वलराज धीरे-धीरे स्वास्थ्य लाभ

कर रहे थे। रेवती इस तरह टिकी थी मानो उसका खोया अधिकार उसे मिल गया हो और लीला पति-परायणा लग रही थी।

लेकिन धूर्त का चेहरा बाहर से उजला था अन्दर से काला। उसके कलेजे में कचोटन हो रही थी, उसके मस्तिष्क में चींटियाँ काट रही थीं। वह सोच रहा था कि कैसे और कब यह रेवती जाएगी? इसको जाना चाहिए। खतरनाक आदमी का पास रहना ठीक नहीं होता है। उससे किसी भी समय खतरा सम्भव हो सकता है; लेकिन क्या करूँ? मेरे हाथ में कुछ भी नहीं, मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ।

९

स्वास्थ्य होते-होते एक दिन बलराज की तबियत अचानक खराब हो गई, बात यह हुई कि उस दिन इन्जेक्शन लगाने डॉक्टर सेठी नहीं आये, उनका कम्पाउण्डर आया था; वह भी नया। वह पेन्सिलीन के बजाय भूल से दूसरा इन्जेक्शन लगा गया जो पाइज़न का था। बलराज की हालत तेज़ी के साथ बिगड़ने लगी। लीला और रेवती दोनों परेशान हो उठीं। फौरन ही डॉ० सेठी को बुलाया गया। कम्पाउण्डर आया उससे पूछ-ताछ हुई।

तब डॉक्टर ने कई इन्जेक्शन लगाए बलराज के। सिर पर बर्फ़ की टोपी रखवाई। उन्हें पोटास परमैंगनेट के पानी से कई बार कुल्ला करवाया और निरन्तर वे चार-पाँच घण्टे तक बैठे रहे जब तक स्थिति काबू में नहीं आ गई, खतरा दूर नहीं हो गया।

बलराज को लग रहा था कि उसकी खोपड़ी चटकी जारही है। उसके पेट और कलेजे में आग जल रही है। वे बोले—"मुझे तबियत अच्छी नज़र नहीं आती। क्या दूसरा डॉक्टर बुलवाऊँ?"

राकेश ने वलराज की वात का समर्थन किया। फौरन ही डॉक्टर व्यास को वुलाया गया। डॉ० व्यास इरविन हॉस्पिटल के प्रमुख ही नहीं प्रधान डॉक्टर थे। उन्होंने आकर वतलाया कि आप अस्पताल में भर्ती हो जाइए। घर में पूरी तरह इलाज नहीं हो सकता, अस्पताल में सभी साधन हैं। एक नहीं अनेक डॉक्टर हैं। आप प्राईवेट वार्ड ले लीजिए। मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ।

इस तरह वलराज इरविन हॉस्पिटल में भर्ती हो गए। वहाँ वे दो-तीन दिन वड़ी उलझन में रहे। उसके वाद धीरे-धीरे चित्त शान्त हुआ, तवियत वहलने लगी। रेवती, लीला और राकेश तीनों उनके साथ थे।

जव आदमी सीमित जगह में रहता है तो संकोच उसे दवाये रहता है। उसके हाथ-पैर नहीं चलते। वह जो सोचता है, कर नहीं पाता है; लेकिन जव वह मैदान में आता है तो उसे हवा का रुख अपने माफ़िक मिलता है। उसके कान खड़े हो जाते हैं, आँखें खुल जाती हैं और वह वहुत-कुछ सोच जाता है। जव तक वलराज कोठी में रहे राकेश की एक नहीं चली और जिस दिन से आ गए वे अस्पताल। वह कुछ-न-कुछ षड्यन्त्र सोचा ही करता।

···और आखिर एक दिन सूझ गई राकेश को एक वहुत अच्छी युक्ति। वह हिम्मत करके वहाँ के एक डॉक्टर से मिला। उसकी नियुक्ति नई हुई थी। वह अभी अनुभव-हीन था। वह राकेश के जाल में फँस गया। राकेश ने उसे सौ-सौ के पचास नोट दिये और वोला—"यह एडवान्स है, आप वलराज को ज़हर का इन्जेक्शन दे दीजिए जिससे उनकी तत्काल ही मृत्यु हो जाय। कोई भी सन्देह नहीं करेगा; क्योंकि मामला ज़हर के इन्जेक्शन का ही है? वस उसके वाद पाँच हज़ार मुझसे लीजिए कान पकड़ कर। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ डॉक्टर साहव। मेरी राह का यह काँटा दूर कर दीजिए।"

डॉक्टर वेचारा सीधा था। उसे राकेश ने प्रलोभन में ऐसा फँसाया कि वह इन्कार नहीं कर सका। राकेश की उससे वातें वार्ड के वाहर

कर रहे थे। रेवती इस तरह टिकी थी मानो उसका खोया अधिकार उसे मिल गया हो और लीला पति-परायणा लग रही थी।

लेकिन धूर्त का चेहरा वाहर से उजला था अन्दर से काला। उसके कलेजे में कचोटन हो रही थी, उसके मस्तिष्क में चींटियाँ काट रही थीं। वह सोच रहा था कि कैसे और कव यह रेवती जाएगी? इसको जाना चाहिए। खतरनाक आदमी का पास रहना ठीक नहीं होता है। उससे किसी भी समय खतरा सम्भव हो सकता है; लेकिन क्या करूँ? मेरे हाथ में कुछ भी नहीं, मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ।

९

स्वस्थ होते-होते एक दिन वलराज की तवियत अचानक खराव हो गई, वात यह हुई कि उस दिन इन्जेक्शन लगाने डॉक्टर सेठी नहीं आये, उनका कम्पाउण्डर आया था; वह भी नया। वह पेन्सिलीन के वजाय भूल से दूसरा इन्जेक्शन लगा गया जो पाइज़न का था। वलराज की हालत तेज़ी के साथ विगड़ने लगी। लीला और रेवती दोनों परेशान हो उठीं। फौरन ही डॉ० सेठी को वुलाया गया। कम्पाउण्डर आया उससे पूछ-ताछ हुई।

तव डॉक्टर ने कई इन्जेक्शन लगाए वलराज के। सिर पर वर्फ़ की टोपी रखवाई। उन्हें पोटास परमैंगनेट के पानी से कई वार कुल्ला करवाया और निरन्तर वे चार-पांच घण्टे तक वैठे रहे जव तक स्थिति कावू में नहीं आ गई, खतरा दूर नहीं हो गया।

वलराज को लग रहा था कि उसकी खोपड़ी चटकी जारही है। उसके पेट और कलेजे में आग जल रही है। वे वोले—"मुझे तवियत अच्छी नज़र नहीं आती। क्या दूसरा डॉक्टर वुलवाऊँ?"

राकेश ने बलराज की बात का समर्थन किया। फौरन ही डॉक्टर व्यास को बुलाया गया। डॉ० व्यास इरविन हॉस्पिटल के प्रमुख ही नहीं प्रधान डॉक्टर थे। उन्होंने आकर बतलाया कि आप अस्पताल में भर्ती हो जाइए। घर में पूरी तरह इलाज नहीं हो सकता, अस्पताल में सभी साधन हैं। एक नहीं अनेक डॉक्टर हैं। आप प्राईवेट वार्ड ले लीजिए मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ।

इस तरह बलराज इरविन हॉस्पिटल में भर्ती हो गए। वहाँ वे दो-तीन दिन बड़ी उलझन में रहे। उसके बाद धीरे-धीरे चित्त शान्त हुआ, तबियत बहलने लगी। रेवती, लीला और राकेश तीनों उनके साथ थे।

जब आदमी सीमित जगह में रहता है तो संकोच उसे दबाये रहता है। उसके हाथ-पैर नहीं चलते। वह जो सोचता है, कर नहीं पाता है; लेकिन जब वह मैदान में आता है तो उसे हवा का रुख अपने माफ़िक मिलता है। उसके कान खड़े हो जाते हैं, आँखें खुल जाती हैं और वह बहुत-कुछ सोच जाता है। जब तक बलराज कोठी में रहे राकेश की एक नहीं चली और ज़िस दिन से आ गए वे अस्पताल। वह कुछ-न-कुछ षड्यन्त्र सोचा ही करता।

...और आखिर एक दिन सूझ गई राकेश को एक बहुत अच्छी युक्ति। वह हिम्मत करके वहाँ के एक डॉक्टर से मिला। उसकी नियुक्ति नई हुई थी। वह अभी अनुभव-हीन था। वह राकेश के जाल में फँस गया। राकेश ने उसे सौ-सौ के पचास नोट दिये और बोला—"यह एडवान्स है, आप बलराज को ज़हर का इन्जेक्शन दे दीजिए जिससे उनकी तत्काल ही मृत्यु हो जाय। कोई भी सन्देह नहीं करेगा; क्योंकि मामला ज़हर के इन्जेक्शन का ही है? बस उसके बाद पाँच हज़ार मुझसे लीजिए कान पकड़ कर। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ डॉक्टर साहब। मेरी राह का यह काँटा दूर कर दीजिए।"

डॉक्टर बेचारा सीधा था। उसे राकेश ने प्रलोभन में ऐसा फँसाया कि वह इन्कार नहीं कर सका। राकेश की उससे बातें वार्ड के बाहर

कर रहे थे। रेवती इस तरह टिकी थी मानो उसका खोया अधिकार उसे मिल गया हो और लीला पति-परायणा लग रही थी।

लेकिन धूर्त का चेहरा बाहर से उजला था अन्दर से काला। उसके कलेजे में कचोटन हो रही थी, उसके मस्तिष्क में चींटियाँ काट रही थीं। वह सोच रहा था कि कैसे और कब यह रेवती जाएगी? इसको जाना चाहिए। खतरनाक आदमी का पास रहना ठीक नहीं होता है। उससे किसी भी समय खतरा सम्भव हो सकता है; लेकिन क्या करूँ? मेरे हाथ में कुछ भी नहीं, मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ।

९

स्वस्थ होते-होते एक दिन बलराज की तबियत अचानक खराब हो गई, बात यह हुई कि उस दिन इन्जेक्शन लगाने डॉक्टर सेठी नहीं आये, उनका कम्पाउण्डर आया था; वह भी नया। वह पेन्सिलीन के बजाय भूल से दूसरा इन्जेक्शन लगा गया जो पाइज़न का था। बलराज की हालत तेज़ी के साथ बिगड़ने लगी। लीला और रेवती दोनों परेशान हो उठीं। फौरन ही डॉ० सेठी को बुलाया गया। कम्पाउण्डर आया उससे पूछ-ताछ हुई।

तब डॉक्टर ने कई इन्जेक्शन लगाए बलराज के। सिर पर बर्फ़ की टोपी रखवाई। उन्हें पोटास परमैंगनेट के पानी से कई बार कुल्ला करवाया और निरन्तर वे चार-पाँच घण्टे तक बैठे रहे जब तक स्थिति काबू में नहीं आ गई, खतरा दूर नहीं हो गया।

बलराज को लग रहा था कि उसकी खोपड़ी चटकी जारही है। उसके पेट और कलेजे में आग जल रही है। वे बोले—"मुझे तबियत अच्छी नज़र नहीं आती। क्या दूसरा डॉक्टर बुलवाऊँ?"

राकेश ने बलराज की बात का समर्थन किया। फौरन ही डॉक्टर व्यास को बुलाया गया। डॉ० व्यास इरविन हॉस्पिटल के प्रमुख ही नहीं प्रधान डॉक्टर थे। उन्होंने आकर बतलाया कि आप अस्पताल में भर्ती हो जाइए। घर में पूरी तरह इलाज नहीं हो सकता, अस्पताल में सभी साधन हैं। एक नहीं अनेक डॉक्टर हैं। आप प्राईवेट वार्ड ले लीजिए। मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ।

इस तरह बलराज इरविन हॉस्पिटल में भर्ती हो गए। वहाँ वे दो-तीन दिन बड़ी उलझन में रहे। उसके बाद धीरे-धीरे चित्त शान्त हुआ, तबियत बहलने लगी। रेवती, लीला और राकेश तीनों उनके साथ थे।

जब आदमी सीमित जगह में रहता है तो संकोच उसे दबाये रहता है। उसके हाथ-पैर नहीं चलते। वह जो सोचता है, कर नहीं पाता है; लेकिन जब वह मैदान में आता है तो उसे हवा का रुख अपने माफ़िक मिलता है। उसके कान खड़े हो जाते हैं, आँखें खुल जाती हैं और वह बहुत-कुछ सोच जाता है। जब तक बलराज कोठी में रहे राकेश की एक नहीं चली और ज़िस दिन से आ गए वे अस्पताल। वह कुछ-न-कुछ षड्यन्त्र सोचा ही करता।

···और आखिर एक दिन सूझ गई राकेश को एक बहुत अच्छी युक्ति। वह हिम्मत करके वहाँ के एक डॉक्टर से मिला। उसकी नियुक्ति नई हुई थी। वह अभी अनुभव-हीन था। वह राकेश के जाल में फँस गया। राकेश ने उसे सौ-सौ के पचास नोट दिये और बोला—"यह एडवान्स है, आप बलराज को ज़हर का इन्जेक्शन दे दीजिए जिससे उनकी तत्काल ही मृत्यु हो जाय। कोई भी सन्देह नहीं करेगा; क्योंकि मामला ज़हर के इन्जेक्शन का ही है? बस उसके बाद पाँच हज़ार मुझसे लीजिए कान पकड़ कर। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ डॉक्टर साहब। मेरी राह का यह काँटा दूर कर दीजिए।"

डॉक्टर बेचारा सीधा था। उसे राकेश ने प्रलोभन में ऐसा फँसाया कि वह इन्कार नहीं कर सका। राकेश की उससे बातें वार्ड के बाहर

रास्ते हैं। दूंगा उसे एक हब्बा भी नहीं, सब-कुछ कब्जे में कर लूंगा। मुझे मालूम है कि बैंक एकाउण्ट के अलावा कोठी में जो गुप्त तहखाना है। उसमें सोने-चाँदी के टुकड़े, बर्तन और जेवरात हैं। लीला यह नहीं जानती और न बलराज ने उसे बताया ही। इसके अतिरिक्त सेफ़ में जो ज्वेलरी है, वह भी आज ही ग़ायब कर दूंगा। लीला वारिस क्या होगी? उसके पहले ही मैं उसे जहन्नुम रसीद कर दूंगा। हिम्मत चाहिए, आदमी सब-कुछ कर सकता है।

उस दिन राकेश बहुत सतर्क रहा। उसने बार-बार डॉक्टर को छेड़ा और डॉक्टर जब विवश हो गया बुरी तरह, तो उसने सोचा कि काम कर डालो। तीसरा पहर जवानी से बुढ़ापे की ओर अग्रसर हो रहा था। साँझ होने की सूचना पक्षी अपने कलरव-गान से दे रहे थे। शायद वे बसेरों पर जा रहे थे। सूरज की तरह जो दिन-भर का थका राही था, उदयाचल से चला था और अब अस्ताचल की गोद में जा रहा था। गरम हवा कुछ-कुछ ठण्डी हो चली थी क्योंकि दिन की उष्णता पयान कर चुकी थी और सलोनी साँझ आ रही थी। डॉक्टर स्टोर रूम में गया उसने कई इन्जेक्शन छुए, उठाए और रखे। आखिर फिर एक इन्जेक्शन हाथ में ले वह उसी वार्ड में आया, जहाँ बलराज लेटे थे। लीला ने डॉक्टर को तनिक पैनी दृष्टि से देखा तो उसका चेहरा सफ़ेद पड़ गया और हाथ काँपने लगे। उसने इन्जेक्शन रख दिया और बीमार से हाल-चाल पूछने लगा। रेवती को भी वर्तमान परिस्थिति ने तनिक विस्मय में डाला कि आख़िर बात क्या है? डॉक्टर बार-बार इन्जेक्शन उठाता है और फिर रख देता है।

···और डॉक्टर—उसकी हो रही थी गति भंग। उसकी एम० बी० बी० एस० की डिग्री अपना तकाज़ा कर रही थी कि भले आदमी यह नीच काम न कर। वह सिटपिटाया तो था ही उसने जल्दी से इन्जेक्शन तोड़ा और सीरिंज में भरने लगा।

तभी सहसा सबका ध्यान बदला। छत पर उल्टी टंगी छिपकली पट्ट

से आकर गिरी वलराज के पलंग पर। उनकी देह पर गिरती तो घोर अपशकुन था, फिर भी रेवती के मुंह से आखिर निकल ही गया कि यह अच्छा नहीं हुआ।

१०

वार्ड की छत में लटक रहा सीलिंग फैन, अपनी पूरी रफ़्तार से नाच रहा था। सफ़ेद चूने से पोती हुई दीवारें ऐसी लग रही थीं जैसी दूध की धोई। सीमेण्टेड फ़र्श भी चमक रहा था और डेटाल की भीनी-भीनी महक भर रही थी उस कमरे में। रेवती का ध्यान पति की ओर था। लीला एकटक दृष्टि टिकाये थी उस डॉक्टर के चेहरे पर। जिसने दवा पिचकारी में भर ली थी। अब टूटा हुआ, ट्यूब चुपके से अपने कोट की जेब के हवाले कर लिया था। राकेश कभी उठता, कभी बैठता। उसकी भी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर डॉक्टर की हिम्मत क्यों नहीं पड़ती ? मैंने रुपये कम नहीं दिए। पाँच हज़ार वहुत होते हैं।

डॉक्टर कुर्सी से उठा। वह धीरे-धीरे वलराज के पास आया। उसने उनकी दाहिनी वाँह खोली। उस पर रूई से स्प्रिट लगाई। पिचकारी आगे पीछे कर देखने लगा। फिर जैसे ही वह सुई माँस में भोंकने लगा वैसे ही लीला ने पकड़ लिया उसका हाथ और फिर सीरिंज छीन कब्जे में कर डाँटकर से वोली—"फुलिस फैलो। नान सेन्स। खवरदार जो इन्जेक्शन लगाया। यह प्वाइज़न है डॉक्टर मैं सव जानती हूँ।"

डॉक्टर के होस-हवास गुम हो गए। उसके पैरों के नीचे से ज़मीन निकल गई। अव अन्य कोई चारा सम्मुख न देख, वह वहाँ से भागा तो दौड़ी उसके पीछे स्थूला रेवती। उसने कसकर उसका हाथ पकड़ लिया और वार्ड में खींच लाई। तव लीला वोली—"

काम नहीं चलेगा। यह डॉक्टर तो भागा ही था। भागेगा राकेश भी। खूब शोर मचाओ, चिल्लाओ। अभी लोग दौड़ते हैं; अभी पुलिस को टेलीफ़ोन करती हूँ।"

बस फिर क्या था? रेवती और लीला दोनों ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगीं। तब बलराज की समझ में भी आया कि डॉक्टर उन्हें ज़हर का इन्जेक्शन दे रहा था। हल्ला मचा जमादार, नर्स, कम्पाउण्डर और चपरासी दौड़ने लगे। जो सुनता उधर ही भागा आता। जब पूरे-का-पूरा वार्ड भीड़ से भर गया, तब उस भीड़ में बुलन्द हुई, एक तेज़ आवाज़—"यह देखिए इन्जेक्शन डॉक्टर साहब की जेब में है। सीरिंज मैंने अलग रख दी है।" यह कह लीला ने डॉक्टर की जेब से टूटा हुआ इन्जेक्शन निकाला।

फिर आगे लीला यह कह वहाँ से जाने लगी—"रेवती बहन मैं पुलिस को फ़ोन करके आती हूं। देखो डॉक्टर भागने न पाए।"

भीड़ अपने में सजग और सतर्क खड़ी थी। काना-फूँसी यह हो रही थी कि राम-राम डॉक्टर मुर्दे में जान डालता और यह रँगा सियार सफ़ेद कपड़ों में शैतान। अभी मालूम होता है, अभी पुलिस आती है।

लीला ने सिविल सर्जन को टेलीफ़ोन किया। फिर उसने डायल पर उँगली घुमाई और कोतवाली को भी फ़ोन किया। जब वह वार्ड में आई तो देखा राकेश भाग रहा था। उसने दौड़कर उसे पकड़ा और दाँत पीसकर बोली—"अब भागने से काम नहीं चलेगा राकेश बाबू। तुम्हारे दिन आ गए।"

राकेश ने बहुत ज़ोर आजमाया; लेकिन वह लीला से अपना हाथ न छुड़ा सका। स्त्री जब आवेश में आ जाती है तो उसकी शक्ति दुगुनी-चौगुनी ही नहीं आठगुनी बढ़ जाती है। तभी तो कहा जाता है कि वह चण्डी बन गई। वह काली बन गई—साक्षात् चण्डिका।

उधर डॉक्टर का यह हाल था कि वह पसीना-पसीना हो रहा था। उसके मुँह की ज़बान जैसे किसी ने क़लम कर ली थी। उसे मार गया

था लकवा। उसकी सारी देह थर-थर काँप रही थी। उसे भीड़ नहीं, आदमी नहीं, सब कुछ धुँधला-धुँधला नज़र आ रहा था। वह ऐसा हो रहा था जीवन्मृत कि उसकी नीचे की साँस नीचे और ऊपर की ऊपर रह गई थी।

ऐसी ही गति थी बन्दी राकेश की। वह जब भीड़ में आ गया और लीला ने जब रेवती के सुपुर्द किया तो उसका मुँह हो गया धुँआ। हिम्मत करके बलराज उठे और रेवती से डाँटकर पूँछने लगे—"इसको क्यों पकड़ रखा है तुम लोगों ने। इसने क्या किया है? बदला इस तरह नहीं लिया जाता रेवती। राकेश को जाल में न फँसाओ?"

इस पर रेवती तो बोलते-बोलते ही रह गई। लीला बीच में ही बोल उठी—"जी हाँ! आपकी आँखें अभी फूटी हैं। आपको दिखलाई नहीं देता। क्या किया है इसने बतलाऊँ? इसने पाँच हज़ार रुपये दिए हैं डॉक्टर को। मैंने दोनों की बातें सुनी हैं।"

बलराज को यह कहानी गढ़ी हुई लगी। उसने सोचा कि लीला और रेवती मिल गई हैं। रुपये डॉक्टर को इन दोनों ही ने दिए होंगे। कितनी अच्छी युक्ति सोची राकेश को फँसाने की। राकेश जहाँ पर मेरा पसीना गिरे वह अपना खून बहा दे। वह विश्वासघात नहीं कर सकता। बड़ा नेक लड़का है।

लेकिन उस अपराधी डॉक्टर ने लीला की बात का समर्थन किया। वह अपना सारा दोष राकेश के मत्थे पर मढ़ता हुआ बोला—"सारी ग़लती राकेश की ही है और रक़म आदमी को लालच में डाल ही देती है। मैं भी उसी लालच का शिकार हो गया। यह मेरी बदकिस्मती है।"

बलराज ने यह सुना तो वह डॉक्टर का मुँह देखने लगा; लेकिन वाह रे! उसके अटूट स्नेह। उसने सन्देह को टिकने नहीं दिया। उसका अन्तःकरण बोला कि रेवती और लीला ने डॉक्टर को यही सिखलाया होगा। मगर चोर की दाढ़ी में तिनका—पत्ता खड़का बन्दा सरका। राकेश अपने को छुड़ाकर इस तरह भागा कि मानो उसने पैर सिर पर रख

लीला पीछे दौड़ी, रेवती भी चिल्लाई और तभी आ गई पुलिस की रेडियो पेट्रोल-कार। मुलज़िम पकड़ लिया गया। वह भाग नहीं सका।

११

"पुलिस आ गई-पुलिस आ गई।" यह शोर मच गया। लोग चौकन्ने हो, उधर ही देखने लगे और डॉक्टर का अपराध उसके हृदय में इतनी तेजी के साथ धड़कने लगा, मानो वह कह रहा था कि मैं कलेजा चीर-कर बाहर निकल जाऊंगा, तुम्हारी हृदय-गति रुक जायगी और ठीक भी है, ऐसी ही परिस्थितियों में हार्ट-फ़ेल होता है, आदमी बेहोश होकर गिर पड़ता है। ऐसा ही सदमा मनुष्य को अनहोनी के मुंह में ले जाकर पटक देता है।

पुलिस के आते ही भीड़ तितर-बितर हो गई। घटनास्थल पर रह गए, लीला, रेवती और बलराज। अभियुक्त की तो बहुत ही शोचनीय स्थिति थी, उसकी आँखें फ़र्श देख रही थीं। न भीड़ और न पुलिस। ठीक तभी हॉस्पिटल की पोर्टिको में एक लैन्डमास्टर कार आकर रुकी। उस पर से सिविल-सर्जन उतरा—"व्हाट हैपैन्ड-व्हाट हैपैन्ड (क्या हुआ, क्या घटना घट गई।") यह कहता हुआ वह वार्ड की ओर चल दिया।

पुलिस इन्सपेक्टर ने मामले की तहकीक़ात की। राकेश अभी सिपा-हियों की पकड़ में था। वह पेट्रोल-कार में बैठा था। एक सिपाही उसका हाथ पकड़े था और दूसरा नीचे उतर सामने की गतिविधि देख रहा था। करता क्या न करता? जब आदमी बन्दी बन जाता है तो वह मुक्त होने के एक नहीं अनेक उपाय सोचता है। राकेश ने दूसरे सिपाही की भी स्थिति का पूरा-पूरा अध्ययन किया। उसने देखा कि उसकी भी निगाहें वार्ड की ओर लगी हैं, जहां मामले की जाँच हो रही है। उसने एक

झटका दिया और जल्दी से अपना हाथ छुड़ा सिपाही को नीचे ढकेला। फिर वह रेडियो पेट्रोल-कार ही ड्राइव कर के ले चला। जब तक लैन्ड-मास्टर गाड़ी ने उसका पीछा किया। वह दृष्टि से ओझल हो गया।

उस तरह असली मुलजिम भाग गया। पुलिस उसे नहीं पकड़ पाई। वेचारे डॉक्टर की आ गई शामत। उसे सिविल सर्जन ने खूब ज़लील किया। बुरा-भला कहा, जब उसे बहुत तंग किया गया तो उसने कहा कि "मैं अपने बयान एस० पी० सिटी के सामने दूंगा। यह मामला संगीन है और मैं बिलकुल निर्दोष हूँ।"

डॉक्टर के हाथों में हथकड़ियाँ डाल दी गईं। उसे कोतवाली लाया गया। वहाँ सुपरिन्टेन्डेट ऑफ़ पुलिस के सामने उसने कहना शुरू किया—"मैं हस्पताल में अभी नया-नया आया हूँ, मुझे तजुर्बा नहीं; बुरे-भले की पहिचान नहीं। मैंने बहुत मना किया; लेकिन राकेश नहीं माना। उसने सौ-सौ रुपये के मुझे पचास नोट दिए, मेरे ट्रंक में बन्द हैं। पुलिस जाकर तलाशी ले सकती है। फिर मैं वे रुपये लौटा न सका। एक भूल कर चुका था। दूसरी करने ही जा रहा था कि मिसेज़ साहनी ने मेरे हाथ से सिरिंज छीन ली। मुझे रुपये का भी लालच नहीं था; लेकिन न जाने इस प्रलोभन में कैसे फँस गया? अब फैसला अदालत के ऊपर है, जो सचाई थी वह मैंने बयान कर दी। बस इसके अलावा और मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।"

सुपरिन्टेन्डेंट ने डॉक्टर के बयान क़लम बन्द किए। उन्हीं बयानों के नीचे हस्ताक्षर ले लिए गए। उस दिन की तारीख़ और बयान देने का समय भी लिख लिया गया। फिर डॉक्टर सीखचों में बन्द कर दिया गया; कोतवाली की हवालात में।

और राकेश के नाम वारण्ट निकला। पुलिस बड़ी सरगर्मी से उसकी तलाश करने लगी। डॉक्टर के घर में तलाशी हुई। रिश्वत के नोट भी कोतवाली में आकर जमा हुए।

लीला और रेवती जब दोनों ने बलराज से कहा कि देखा अपने भाई

राकेश को। भाई जैसा दोस्त नहीं और उसका जैसा दुश्मन भी नहीं। देख ली उसकी दुश्मनी। वह दग़ा कर रहा था। उसमें तनिक भी वफ़ा नहीं। तब बलराज को पहले क्रोध आया, वे दोनों पर बिगड़े। फिर रोने लगे बच्चों की भाँति अधीर होकर और रो-रोकर कहने लगे—"राकेश बेचारा दग़ा का नाम भी नहीं जानता। यह सब कारस्तानी तुम दोनों की है। तुम दोनों ने उसे फँसाया है। मुझे मत सिखलाओ, मैंने दुनिया देखी है। औरत कितनी मायाविनी होती है। मैं यह भी जानता हूँ।"

इस पर रेवती तो कुछ नहीं बोली; लेकिन लीला को आ गया तैश। वह ताव में भरकर बोली—"अच्छा अब भी तुम उस पर विश्वास किए बैठे हो। हम लोगों पर लांछन लगाते हो। छी-छी, तुम मेरे पति हो, बड़े अफ़सोस की बात। मालूम पड़ेगा अदालत में। जब राकेश पकड़ा जाएगा और उस पर मुकदमा चलेगा कि यह रेवती और लीला की चाल थी या राकेश के बेले हुए पापड़। मैं···"

"लीला!" यह कहकर बलराज बड़ी ज़ोर से चिल्लाए—"खबरदार आगे बोलने की ज़रूरत नहीं, तुम लोग फ़ौरन यहाँ से चली जाओ। जाओ, मैं कहता हूँ जाओ, वरना मैं अपना सिर फोड़ लूंगा।"

रेवती सन्नाटे में आ गई। लीला का चेहरा लाल हो रहा था और बलराज भी अपना आपा खो रहे थे। दम्पति में कसकर वाक्-युद्ध चल रहा था। आखिर उठे बलराज और वे लीला को ढकेलकर कमरे से बाहर निकाल आए।

रेवती अन्दर थी। बलराज जब लौटकर आए तो उसके बाल पकड़ बेरहमी से खींच दुत्कार कर कहने लगे—"तू क्यों खड़ी है, तू ही तो विष की गाँठ है। चल, निकल, नहीं तो मैं अभी तेरी और अपनी जान एक कर दूंगा।"

बलराज खींचते गए, रेवती खिचती चली गई और जब वह बरामदे में आ सुबक-सुबककर रोने लगी तो आगे जा रही लीला ने पीछे घूमकर देखा। तब वह पीछे लौटी। उसने रेवती का हाथ पकड़ा और बोली—

"रोती क्यों हो ? चलो मेरे साथ। यह आदमी इतना निष्ठुर है कि अपनी पत्नियों पर विश्वास नहीं करता। चलो आज की रात कोठी में रहो। वस इतना करना कल से कि दिन में एक वार आकर इनको देख जाना। वही मैं भी करूँगी। नेकी की, वदी सामने आई। क्या आज-कल की दुनिया ऐसी ही है ?"

रेवती आँचल से आँसू पोंछने लगी। वह लीला के साथ चल दी। वोली कुछ भी नहीं। जिस समय दोनों सहपत्नियाँ वलराज की कोठी पहुँची, तव रात के वारह वजे थे और वलराज अपने वार्ड में अकेले रह गए थे।

१२

लीला और रेवती दोनों चली गईं। वलराज अकेले पड़े-पड़े सोचने लगे कि ठीक हो चला हूँ। अव क्या करूँगा अधिक यहाँ रहकर ? कल मैं भी कोठी चला जाऊँ। दुनिया में अपना कोई नहीं। देखो तो लीला को, सरासर राकेश को झूठा वना दिया। यह रेवती ने ही चाल वतलाई जिस पर वह चली। यह कभी सम्भव नहीं कि मैं जिसे अपनी दाहिनी वाँह समझूँ वह मुझसे दग़ा करे। कहाँ हो राकेश मेरे भाई ? तुम्हारे नाम वारण्ट निकला है, पुलिस तुम्हारा पीछा कर रही है। यह सव है स्त्रियों का चक्कर। रेवती ने तुमसे गिन-गिनकर वदला लिया है और लीला जिसे तुम भाभी कहते थे, जिसके पीछे-पीछे घूमते थे, उसी साँपिन ने डस लिया तुम्हें। तुम आ जाओ। मैं तुम्हारी ज़मानत कर लूँगा। तुम्हारे मुक़दमे को कामयाव वनाने के लिए मेरे पास जो कुछ भी है वह सव खर्च कर दूँगा। राकेश मैंने तुझे गोद में खिलाया, मैंने तुम्हें वाप [illegible] प्यार दिया। इस समय तुम भटक रहे होगे। छिपने की जगह

इस तरह जब राकेश के प्रति ममता बहुत उमड़ी तो बलराज रोने लगे। वे रोते रहे, सिसकते रहे और भविष्य के प्रति सोचते रहे। अस्पताल का घण्टा बजा एक। बड़े जोर से टन्न की आवाज हुई। तब बलराज ने करवट बदली और वे पुनः विचारों में खो गए कि कल मुझे हर हालत में कोठी चले जाना चाहिए। रेवती को वहाँ से निकालना है। शायद वह भी लीला के साथ गई होगी और लीला से तो बात भी नहीं करनी है ज़िन्दगी भर। वह बड़ी ओछी औरत है। उसका हृदय काला है। वह बहुत मुँह-फट हो गई है। राकेश मिल जाए, फिर उसे भी दे दूँ तलाक़। औरत तभी सीधी होती है जब आदमी उसे छोड़ देता है।

बलराज उधेड़-बुन में व्यस्त रहे। रात का रंग निखरा, फिर गहरा और गहरा होता चला गया। जब अस्पताल में दो का घण्टा बजा तो लगा जैसे सारे शहर ने सन्नाटे की चादर ओढ़ ली हो। उस सन्नाटे के सोये हुए समुद्र में झिल्लियाँ तैर रही थीं। वे शनैः-शनैः झनकारतीं। झींगुर भी मस्ती ले रहे थे, वे शहनाई बजाते, जो सुख और सौभाग्य की प्रतीक नहीं, जो भयानक लगती, जिससे रोंगटे खड़े हो जाते। तभी तो दहल जाता आदमी है जब सूनी अँधेरी रात में अकेले घर से बाहर निकलता है।

जब बलराज की उलझन ज़्यादा बढ़ी तो उन्होंने उठकर वार्ड की बत्ती बन्दकर दी। बरामदे में चपरासी सो रहा था। वह खर्राटे ले रहा था और दूर कहीं इसी अस्पताल के इर्द-गिर्द एक पेड़ पर बैठा उल्लू बोल रहा था। बलराज ने आँखें मूंद लीं, उन्हें लगा कि अपशकुन हुआ, शायद राकेश पकड़ा गया। मरजा उल्लू, तेरा सत्यानाश हो। तू कितना खराब है दुनिया तेरे नाम से नफ़रत करती है।

सहसा बलराज को कुछ आहट मालूम हुई कि कमरे में कोई चल रहा है। वे उठे, उन्होंने जल्दी से बत्ती खोली और घबड़ाहट के स्वर में पूछा—"कौन है ? कौन ?"

तभी ठाँय की एक आवाज हुई। काले कपड़ों में लिपटी एक मूर्ति वहाँ से भागी। निशाना चूक गया। नहीं तो गोली बलराज के सीने में

लगती। वे घवड़ाकर पलंग पर बैठ गए। गोली दीवार में लगी थी। चपरासी हड़बड़ाया और लोग भी जाग गए। सभी परिस्थिति का पता चलते ही आक्रमणकारी के पीछे दौड़े और वात-की-वात में गोली चलाने वाली मूर्ति पकड़ ली गई। जब सबने देखा तो चौंककर रह गए कि वह पुरुष न होकर स्त्री थी। फ़ौरन ही पुलिस को फ़ोन हुआ और थोड़ी देर में रेडियो-कार आकर अपराधिनी को पकड़ ले गई। सभी की दृष्टि में वह अपरचिता थी; लेकिन बलराज ने उसे पहिचान लिया और उसने बलराज को।

कोतवाली की हवालात में अपराधी डॉक्टर तो पहले से ही बन्द था और उसी वार्ड में जब यह दूसरी सनसनी खेज़ घटना घटी तो पुलिस अधिकारी आपस में बातें करने लगे कि बलराज के एक नहीं तमाम दुश्मन हैं, देखो किसी ने उसे मरवाने के लिए डॉक्टर को रिश्वत दी और किसी ने खुद जाकर गोली चलाई। आख़िर यह औरत है कौन? बयान लेकर इसे भी स्त्री बन्दी-गृह में बन्द कर दिया जाए।

कोतवाली-इन्चार्ज दफ्तर में आए। उनके सामने वह युवती पेश की गई जिसने बलराज की हत्या करने की कोशिश की थी। जब उससे पूछा गया कि तुमने गोली क्यों चलाई? तुम्हारी बलराज से कुछ रंजिश थी क्या? तो वह निर्भय होकर कहने लगी—"रंजिश! रंजिश तो इतनी बड़ी है कि मैं बयान नहीं कर सकती। आप लोग नहीं जानते हैं बलराज की सबसे पहले मंगनी मेरे साथ हुई थी। मेरा नाम शीला है, मैं बाबर-रोड पर रहती हूँ। मैं एक ग़रीब बाप की बेटी हूँ। आजकल वह भी दुनिया में नहीं। हाँ! एक छोटा-सा घर छोड़ गए, जिसकी क़ीमत दस-पन्द्रह हज़ार से अधिक नहीं होगी। मैंने बी० ए० किया था किसी तरह और मेरी आगे पढ़ने की इच्छा थी। मेरा बाप मजबूर था। मैं एक दफ़्तर में टाइपिस्ट थी। उसी से जो वेतन मिलता, हमारा बाप-बेटी का ख़र्च चलता।"

यह कहकर शीला ने एक लम्बी साँस ली और तनिक रुककर फिर

कहने लगी—"एक बात और थी, एक समय पड़ा था मेरे बाप पर जब मेरी माँ बीमार थी और मेरा बड़ा भाई फँस गया था खून के एक जुर्म में, तो उन्होंने बलराज से कर्ज़ा लिया था। वे कर्ज लेते गए। बलराज देते गए। आखिर भाई को फाँसी हो गई और तपेदिक की बीमारी भी माँ को धरती से उठा ले गई। कर्ज बारह हज़ार का था। वह अदा नहीं हुआ। बलराज की नहीं, राकेश की निगाह मेरे बाप के मकान पर थी और यही सोच मेरे पिता ने बलराज से मेरे ब्याह की बात चलाई कि ग़रीब समझकर बलराज लड़की ब्याह लेगा। उसके बाद जब तक मैं ज़िन्दा हूँ मकान में हूँ, मरने के बाद यह रियासत शीला की होगी। पति-पत्नी भला कहीं दो-दो होते हैं।"

शीला के कहने का क्रम चल रहा था। पुलिस अधिकारी जिज्ञासा-पूर्वक उसकी कहानी सुन रहे थे, वह कह रही थी—"जब मुझे यह पता चला कि मेरा ब्याह बलराज के साथ हो रहा है, तो मुझे थोड़ा नहीं बहुत खला कि पति मैट्रीकुलेट और पत्नी ग्रेजुएट। वाह रे! पैसा तू चाहे तो भगवान को भी खरीद सकता है। ख़ैर मैं राज़ी हो गई। मैंने बुरा नहीं माना। क्योंकि बाप का मन रखना था। लेकिन मेरे मन ने कहा कि नहीं, शीला तुम और पढ़ो। जब लखपती के घर में जा रही तो पैसे की क्या कमी? तुम लन्दन जाओ वहाँ से डी० लिट्० का डिप्लोमा लेकर लौटो और रख दो अपनी यह शर्त ब्याह से पहले ही कि मेरी पढ़ाई का ख़र्च बलराज उठाएँगे। वे मुझे ब्याह के बाद लन्दन भेज देंगे। बलराज बड़ी मुश्किल से राज़ी हुए, हालाँकि उनका मन नहीं था कि मैं लन्दन जाऊँ और इस तरह ब्याह की तैयारियाँ होने लगीं। दिन क़रीब आ गए। जब चार दिन बाकी रह गए तो मुझे पता चला कि बलराज, राकेश के हाथों की कठपुतली है। मालिक बलराज ज़रूर है; लेकिन कर्ता-धरता राकेश। राकेश ने सुझाव दिया बलराज को कि भैया तुम तो ज्यादा पढ़े लिखे नहीं। शीला को क्या करोगे लन्दन भेज कर? औरत को ज्यादा पढ़ाना ठीक नहीं, वह सिर पर चढ़ जाती है।

कोई लिखा-पढ़ी तो हुई नहीं। जबानी बातचीत का कोई मूल्य नहीं। ब्याह हो जाने दो, शीला को दासी बनाकर रखो और उसके बाद ही दावा कर दो उसके बाप पर। मकान अपने कब्जे में कर लो।"

शीला के बयान क़लमबन्द हो रहे थे। सुनने वाले उसके हाल पर तरस खा रहे थे और उसके कहने का सिलसिला ज्यों-का-त्यों जारी था, वह कहे जा रही थी—"मुझे इस षड्यन्त्र का पता बलराज की कोठी के एक नौकर से लगा, वह नौकर बूढ़ा था और चाहता था मेरा अहित न हो। बस मैंने इन्कार कर दिया कि यह ब्याह नहीं होगा और दूसरे ही दिन बाप को लेकर कचहरी पहुँची। मकान की रजिस्ट्री अपने नाम करवाली ताकि बलराज और राकेश कर्ज़ के बदले में उसे हड़प न सकें। आप लोगों को ताज्जुब होगा मैंने उसी दिन वह प्रतिज्ञा कर ली कि मैं आजीवन ब्याह नहीं करूँगी और अगर ज़रूरत पड़ी तो राकेश तथा बलराज से बदला लूँगी। ब्याह रुक गया। कुछ दिन बाद मेरा बाप भी चल बसा। इधर बलराज का ब्याह रेवती से हुआ। राकेश ने धोखे से उसे बर्थ-कन्ट्रोल की दवा खिलाई। फिर पड़ गया उसके पीछे हाथ धोकर। बलराज ने बेचारी को तलाक़ दे दिया। यह सब हुआ राकेश के कारण। तब मेरे सीने में आग भड़क उठी और मैंने सोचा कि एक नहीं मैं दो खून करूँगी। एक बलराज का और दूसरा राकेश का। मैं बदला लेने की भावना लिए बैठी-की-बैठी ही रही कि लीला का ब्याह हुआ। उसे भी उस बदमाश राकेश ने गर्भ-निरोधक दवा दी। यहाँ तक हुआ कि राकेश ने उसे मार डालने की कोशिश की। घर में खूब कलह हुई। बलराज के कन्धे में गोली लगी। मैं सोचकर आई तो थी यही कि अस्पताल में जाकर दोनों भाइयों की हत्या कर दूँ। लेकिन राकेश मिला नहीं। वह दिखलाई नहीं पड़ा और बलराज पर भी निशाना चूक गया। मुक़दमा चलेगा। सजा होगी। इसकी मुझे चिन्ता नहीं।"

राकेश तो फरार है। उसके नाम वारण्ट हैं। उस[illegible] डॉक्टर को पाँच हज़ार की रिश्वत दी थी, सामने हवालात में

शाम को तो जहर का इन्जेक्शन लगाते डॉक्टर पकड़ा गया और आज ही रात को तुमने भी यह काण्ड कर दिया। मुझे तुमसे हमदर्दी है शीला; लेकिन मजबूर हूँ। क़ानून हमारे दोनों के बीच में है। लो दस्तख़त कर दो।"

शीला की बात समाप्त होते ही कोतवाली-इन्चार्ज ने उसे यह बतलाया। इसके बाद स्त्री-बन्दी-गृह में वह बन्द कर दी गई।

सवेरे समाचार पत्रों में मोटे-मोटे अक्षरों में छपा कि एक ही रात में अस्पताल में दो दुर्घटनाएँ। डाक्टर रंगे हाथों गिरफ़्तार, बलराज का भाई राकेश फ़रार और गोली चलाने वाली महिला शीला भी पुलिस की हिरासत में। दोनों दुर्घटनाओं का विवरण जनता ने चौंक-चौंककर पढ़ा और उस दिन नगर में यह आम चर्चा रही। सुना रेवती और लीला ने भी। दोनों अवाक् हो, एक-दूसरे का मुंह देखने लगीं और बोलीं—"यह शीला कौन? अब तो बड़े-बड़े गुल खिल रहे हैं। मालूम होता है कि बलराज की कहानी अकेली नहीं, उसके साथ कई कहानियाँ जुड़ी हैं।"

१३

शीला न गोरी थी न साँवली, उसका रंग बीच का था। उसकी आयु तीस-बत्तीस की थी। वह अब भी एक आफ़िस में टाइपिस्ट थी। वह कभी सलवार पहनती तो कभी सादी धोती में दिखलाई देती। व्यसन उसके पास कोई नहीं। जो कुछ था सो एक निश्चित ध्येय कि अपने खाने-पहनने-भर को कमाना आवश्यक है। उसके अलावा अगर बन सके तो दूसरे की सेवा।

एक बात और थी शीला में आलस्य का नाम तक न था। वह प्रायः

अपने में प्रसन्न ही रहती। हाँ! विचार के क्षणों में गम्भीर अवश्य जाती। वह नित्य प्रातः सूर्योदय से पहले उठती, शौचादि से निवृत्त अपने लिए नाश्ता तैयार करती। फिर देखती दैनिक समाचार पत्र यह भी उसकी आदत थी, उसके बिना उसे चैन नहीं पड़ती। तदुपरा स्नान आदि कर वह भोजन की व्यवस्था करती। तब उसका चूल जलता। सवेरे की चाय स्टोव में बनती थी। भोजनोपरान्त बस द्वा वह सीधी अपने दफ़्तर पहुँचती। दफ़्तर में खूब मन लगाकर का करती। लन्च के समय वह स्टाफ़ के लोगों से भी आत्मीयतापूर्वक बा करती। छुट्टी होने पर सीधी घर आती। तनिक सुस्ता कर फिर सन्ध्य पूजन पर बैठती और रात के लिए तो उसके पास तमाम काम रहत था। वह किसी क्लर्क के लड़के का स्वेटर बुनती तो अपनी किसी सह कारी महिला का ब्लाऊज़ मशीन पर सींती। किसी की साड़ी में बार्ड लगाती। इस तरह वह कुछ-न-कुछ करती ही रहती। जब तक सो नह जाती।

पड़ौसी सहानुभूति दिखलाते। शीला को समझाते और महिला कहतीं कि व्याह कर लो बेटी, ज़माना अच्छा नहीं, लम्बी उमर है। अके ज़िन्दगी कैसे पार करेगी? तब शीला के पास एक ही जवाब होता मैंने जो तय कर लिया है वही ठीक है। अब व्याह मुझे बन्धन-सा लगत है। मैं कभी नहीं करूँगी।

...और शीला, जब कभी अपने प्रति सोचती तो वह पाती कि व अपनी जगह दुरुस्त है। उसे अपने प्रति विश्वास हो गया था। उसक आत्मा में दृढ़ता समा गई थी और वह मांटी की ही नहीं, हाड़ माँस क भी नहीं, फौलाद की बन गई थी। कर्तव्य और परिशोध की भावना ने उसे वज्र की चादर उढ़ा दी थी। इसीलिए वह पाषाण-नारी थी।

इस तरह शीला ने जब कोठी षड्यन्त्र सुना तो उसका खून उबल उबल जाने लगा। आखिर उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि आज ही रात को मैं राकेश तथा बलराज दोनों का काम तमाम कर दूँगी। ले...

जो मनुष्य सोचता है वह कभी पूरा नहीं होता। अगर सोचने की क्रिया आदमी को उसी के अनुसार अनवरत रूप से फल देती चली जाय तो मनुष्य सातों लोकों का स्वामी बन जाए। प्रतिष्ठा को सभी गले में पहन लें। नेकी से अपनी मुट्ठियाँ भर लें और उदरस्थ कर लें अमृत, मरने-जीने का डर नहीं। किन्तु यह सब नहीं, एक दैवी शक्ति है जो हम सबको नचाती है। वही हमें बाँधे रहती है। वही ब्रह्म है, वही आत्मा, वही ईश्वर, वही पालन-हार है। प्रकृति उसकी प्रिया है। इसीलिए तो धरती पर जो फूल खिलते हैं वह उनमें रंग भरती है, उन्हें महँक देती है। प्रकृति से हमेशा हारा है मनुष्य। किन्तु आज की सदी उसके लिए अपवाद बन गई है। तभी तो लोग कहते हैं कि आज का विज्ञान मनुष्य का पालक नहीं उसका घातक है। उदजन बम, अणुबम, हाइड्रोजन बम ! ये सब क्या हैं ? उनमें संहार भरा है, जो एक दिन अजगर की भाँति साँस छोड़ेगा और जितनी छोटी मछलियाँ हैं, वे सब एक बड़ी मछली के पेट में पहुँच जाएँगी।

सो इस तरह जो सोचा जाता है वह कभी नहीं होता और कभी-कभी भले ही हो जाता है। तभी तो शीला आ गई थी हवालात में और सींखचों में बन्द बैठी बड़े-बड़े आँसू बहा रही थी। रात जा रही थी, प्रभात आ रहा था और शीला सोच रही थी कि जो मन में दग़ा लेकर चलता है, उसी का बुरा होता है। यह ध्रुव सत्य है। ईश्वर क्षमा कर मुझे ! मैंने क्या किया ? तू शान्ति का प्रेरक है और मैंने बरबरता की है। आह ! जिन्दगी तूने मेरा साथ नहीं दिया। बचपन में दुखी और ग़रीब रखा। जवानी में मुझे धोखा दिया और आज ले आई कारागार में। क्या यह भाग्य की विडम्बना नहीं ? क्या यह दुर्भाग्य नहीं ?

जिस दिन बलराज अस्पताल से कोठी आ गये। रेवती अपने घर चली गई और लीला रह गई अकेली। दिन और सप्ताह बीतते गये। दम्पति में बोल-चाल बन्द रही। बलराज को राकेश का अभाव इस तरह खलता जैसे मछली को पानी का। वे खाने बैठते तो उनके आँसू आ जाते। वे जब कमरे में लगी उसकी फ़ोटो देखते तो चित्र के पास जा, उससे प्रश्न करते कि कहाँ हो राकेश, खबर दो। मैं सब ठीक कर लूंगा। मेरा बस चला तो मैं वारण्ट ही रद्द करवा दूंगा।

...और ऐसे ही बलराज जब सवेरे-शाम टहलने निकलते तब वे अकेलापन महसूस करते। क्योंकि इसके पूर्व उनके साथ लीला होती थी। राकेश पीछे-पीछे चलता—वह जैसे उनका भाई ही नहीं अंगरक्षक था। वे एकान्त में सोचते। आँखें मूंदते तो राकेश को सामने खड़ा पाते। सो जाते तो उसे सपने में देखते और जब कोई हितू-व्यौहारी उनसे पूछ लेता कि राकेश का कुछ पता चला तो वे रो देते उसके सम्मुख। उनकी हिलकी भर आती। वे एक लम्बी सांस छोड़कर कहते कि न पूछो भाई, मेरे घाव को और गहरा न करो। राकेश को नहीं, मैंने अपनी जिन्दगी को खो दिया। गुप्तरूप से पता बड़ी मुश्किल से चलता है। अगर उसके नाम वारण्ट न होता तो मैं आकाश के तारे तोड़ लाता। अखबारों में उसका फोटो छपाता, रेडियो में हुलिया की खबर का प्रचार करता; लेकिन क्या करूँ भाई? मजबूरी ने तो हाथ और पैर दोनों बांध दिए हैं।

बलराज स्वस्थ तो हो गए थे, लेकिन वे दुबले-पतले हो गये। चिन्ता की चिता अहर्निश उनके मानस-पटल में जलती रहती। चिता मुर्दे को जलाती है; लेकिन चिन्ता तो जिन्दे को ही जला देती है। लीला यह देखती, वह [illegible] और न अनुराग। बल्कि [illegible]

दल बन गए थे। एक बहूजी-बहूजी की रट लगाए रहता और कोई कह
कि बाबूजी बहुत दुबले हो रहे हैं। वे अपनी तन्दुरुस्ती पर ध्यान न
देते।

पड़ौसी लोग आनन्द लेते। वे देखते कि सवेरे घूमने के लिए
लीला प्लाईमाउथ कार पर जाती और बलराज हाथ में बेत लेकर सड़
पर चप्पलें बजाते। पुराने बूढ़े बुजुर्ग हँसते। आपस में एक-दूसरे
कुहल करते कि भैया पहली औरत तो महरिया होती है, वह सब सह
है, सब मानती है और दूसरी होती है पतुरिया। देखो इस लीला के पी
ही राकेश फ़रार हुआ, उसके नाम वारण्ट है और बलराज जा रहे
तावेदार की तरह सड़क पर पैदल। इस आदमी ने बड़ी भूल की, इस
पहली स्त्री रेवती देवी-थी-देवी। जिस घर में स्त्रियों का सम्मान न
होता, उनका आदर नहीं होता है; वह घर नष्ट हो जाता है, एक दि
उजड़ जाता है। अब एक कसर और बाकी रह गई है कि बलराज तीस
ब्याह कर लें। तीसरी औरत होती है, कुकुरिया मतलब कुतिया।
घर-घर छु-छुआती है। देखो बड़े लोगों का यह हाल। लोग कहते हैं
लखपति और करोड़पति सुख की नींद सोते हैं। इनसे भले हैं ग़री
उनसे भले हैं मध्य-वर्ग के लोग। इन बेचारों से पूछो तो न इन्हें
मिनट चैन मिलती है न इन्हें नींद आती है। बलराज की ज़िन्दगी का क
मतलब नहीं। उसके औलाद नहीं कोई सुख और सार नहीं। ईश्वर
बहुत बड़ी सज़ा देता है तो आदमी को अमीर बना देता है।

ऐसी थी स्थिति बलराज की। वे अपनी साँसों पर भी अधिक
नहीं पाते। वे लीला से भी कुछ कह नहीं पाते और न नौकरों को
पाते। उन्हें लग रहा था कि वे बिलकुल अकेले हैं, उनका कोई नहीं
लीला से अब उनका कोई रिश्ता नहीं रहा। वे अब जल्दी ही उसे तल
देंगे और तलाक़ देना ही ठीक रहेगा। औरत जब क़ाबू से बाहर
ाय तो उसे छोड़ देना चाहिए।

बलराज के सामने यदि एक समस्या होती तो वे जुटकर उस

समाधान करते। वे एक अकेले थे और व्याधियाँ बहुत। एक तो राकेश की चिन्ता, दूसरी रेवती-महामाया, तीसरी लीला चपल-चंचल और चौथी आ गई शीला जो चिन्गारी से शोला बन गई। चिन्गारी उड़ती है, वह बुझ जाती है और शोला भड़का तो वह सब जलाकर खाक कर देता है। बलराज सोचते कि यह समाज क्या है? दुखों का एक कारागार है। इसमें दुख-ही-दुख है, सुख का चिह्न तक नहीं। जो गृहस्थ है उसके सिर पर भार लदा है और भार कभी ज़िन्दगी भर नहीं उतरता, आदमी हाथ पसारकर चल देता है।

बलराज लीला से दिन-पर-दिन असन्तुष्ट ही होते चले जा रहे थे। वे उसे अच्छी निगाह से नहीं देखते। वह जब सामने पड़ जाती तो उनकी भौंहें तन जातीं, उनकी आँखों में बल पड़ते। वे सोचने लगते ठीक उसी दम कि इस आफ़त की पुड़िया को अब मैं घर में नहीं रखूँगा, निकाल कर ही दम लूँगा। यह क्या आई? इसने मेरा घर बरबाद कर दिया। यह वह छूत की बीमारी है, जिसे तपेदिक कहते हैं और क्षय। यह वह जीती-जागती नागिन है जो मौका पाकर डस लेती है। मैं इसका कायल नहीं। मुझे इससे कोई मतलब नहीं। वह जिए तो अपना भाग्य और मरे तो अपना भाग्य।

इस तरह अहर्निश उधेड़-बुन में व्यस्त रहते बलराज। वे अपनी समस्याओं में ऐसे उलझे रहते, जैसे मकड़ी के जाल में मक्खी। वे दुनिया को दुखी निगाहों से देखते। उन्हें चप्पा-चप्पा दुखपूर्ण ही नज़र आता। वे मन-ही-मन अपने को कोसते, समाज को गालियाँ देते और जब झल्ला जाते खूब, तो दोनों हाथ सिर पर दे मारते।

लीला सब-कुछ समझ रही थी। सब-कुछ देख रही थी; लेकिन वह मौन थी। उसके मौन की परिभाषा भी पढ़ रहे थे बलराज। वे कहते कि जा, तू नारी नहीं, नारी के नाम पर कलंक है। नारी वह देवी होती—
है, जो हँसते-हंसते पति के लिए बलिदान हो जाती
पहेली होती है वही तो जीवन की समस्या बन जाती है

ही बुरा है। समस्या सुख के कोष में नहीं, वह समाज की एक बहुत बड़ी धरोहर है। लोग कहते जरूर हैं कि मैंने अपनी समस्या का समाधान पा लिया है; लेकिन मन समझाने के लिए। भला समस्या भी कहीं सुलझती है। मौत भी कहीं हँसती है और आदमी बन पाता है देवता। यह सतयुग नहीं, द्वापर और त्रेता का भी प्रतीक नहीं, यह कलियुग है, घोर कलियुग। इस युग का इन्सान आँखों का अन्धा है और कानों का बहरा है।

बलराज जब धन-दौलत की ओर देखते तो वे कहते कि तू ही तो आदमी की तृष्णा है। इस दुनिया में बिना पानी की धार बहती है और उस कल्पना की नदी में मन की नावें चलती हैं। पतवार की आवश्यकता नहीं, भावनाएँ स्वयं उन्हें खेती हैं। कर्तव्य को माँझी नाँव पर नहीं बैठने देता, जो मन का चोर होता है। इच्छाएँ पुलकती हैं। वे पैरों में घूँघरू बाँध, उस डोंगी पर नृत्य करती हैं। दुनिया कुछ नहीं एक सुनहला सपना है। समझने वालों के लिए कसौटी और नासमझ के लिए जागीर।

बलराज जब और अधिक गहराई में उतरते तो वे पाते कि जो कुछ है एकान्त। मरा-मरा रटने वाला महर्षि बाल्मीक बन गया। केन्द्र क्या है? मनःस्थित, वस्तु क्या है? अनिच्छा, कर्म क्या है? अनवरत निष्काम-कर्म-योग, फल क्या है? मन समझाना। त्यागी कभी सुखी नहीं रहता, संसारी कभी सुख की नींद नहीं सोता। विवेचना किसी से उधार नहीं लेती है और आलोचना मुँहफट होती है; लेकिन एक समाज की रंगीन नारी है जिसका नाम मौखिक है। वह जब सहानुभूति के साथ गठबन्धन कर लेती है तो दुनिया दुरंगी हो जाती है और उसका दर्पण धुँधला।

इस तरह बलराज अपने में हैरान रहते। खोये-खोये से रहते। उनके कलेजे में हूक उठती, जब राकेश की याद आती। उनके हृदय में जलन होती, जब वे लीला को निहारते। उनका अन्तःकरण रो देता; जब अतीत की स्मृतियाँ उन्हें घेर लेतीं। वे कहते कि दुनिया पागल है और पागल है हर इन्सान, जो रोटी-रोज़ी के लिए दिन-रात भटकता है। जो ज़र-ज़मीन और जोरू के पीछे झगड़ा करता है और जो कहता है मुँह फैलाकर, कि मैं

ह हूँ कि मैं वह हूँ। अन्त यह है आदमी कुछ नहीं, पानी का एक बुलबुला है, जो उठता है और मिट जाता है।

१५

शिद्दत की गरमी का मौसम बीता। अषाढ़ में नभ पर मेघ गड़-गड़ाए और फिर लग गया सावन। धरती ने हरियाली की चादर ओढ़ी। पेड़-पौधों को जान मिली और नदियाँ भी हो गईं जवान। जमुना आँखें फाड़ बहने लगी। उसकी जल-राशि अपार ही नहीं अथाह हो गई। शाहदरे के उस पार की नई बस्तियाँ बाढ़ के खतरे से सशंकित हो, दिन-रात सतर्क रहने लगीं और ऐसे ही सतर्क हो गए, बलराज। क्योंकि अभी तक वे अपने दृढ निश्चय को कार्य-रूप में परिणत नहीं कर पाए थे। योजना का बना लेना जितना सरल है, उसको कार्यान्वित करना उतना ही कठिन। मन के घोड़े दौड़ाना अति सरल है; लेकिन नियन्त्रण का चाबुक प्रत्येक अपने हाथ में नहीं रख पाता। ऐसे ही सोचना तो एक साधारण-सी बात है और उसको करके दिखलाना एक कला।

दम्पति में अब तक बोल-चाल नहीं हुई थी। डिनर-टेबिल पर खाना लगता। एक ओर बलराज बैठते दूसरी तरफ़ लीला। नौकरों में साझा-सा हो गया था। जो नौकर लीला की डिश सजाता, बलराज उससे बात नहीं करते और जो नौकर बलराज के भोजन की व्यवस्था करते, लीला उन्हें देख नाक-भौं सिकोड़ती। इस तरह चल रही थी गाड़ी। गृहस्थी रो रही थी और कोठी झींख रही थी अपने भाग्य को। मर्यादा कह रही थी कि ये लक्षण अच्छे नहीं। जहाँ प्रणय की रागिनी और प्यार की शह-नाई बजनी चाहिए थी, वहाँ मौन-स

को कर देता है खाक। कहीं धुंआं

ही बुरा है। समस्या सुख के कोष में नहीं, वह समाज की एक बहुत बड़ी धरोहर है। लोग कहते जरूर हैं कि मैंने अपनी समस्या का समाधान पा लिया है; लेकिन मन समझाने के लिए। भला समस्या भी कहीं सुलझती है। मौत भी कहीं हँसती है और आदमी बन पाता है देवता। यह सत-युग नहीं, द्वापर और त्रेता का भी प्रतीक नहीं, यह कलियुग है, घोर कलि-युग। इस युग का इन्सान आँखों का अन्धा है और कानों का बहरा है।

बलराज जब धन-दौलत की ओर देखते तो वे कहते कि तू ही तो आदमी की तृष्णा है। इस दुनिया में बिना पानी की धार बहती है और इस कल्पना की नदी में मन की नावें चलती हैं। पतवार की आवश्यकता नहीं, भावनाएँ स्वयं उन्हें खेती हैं। कर्तव्य को माँझी नाँव पर नहीं बैठने देता, जो मन का चोर होता है। इच्छाएँ पुलकती हैं। वे पैरों में घूंघरू बाँध, उस डोंगी पर नृत्य करती हैं। दुनिया कुछ नहीं एक सुनहला सपना है। समझने वालों के लिए कसौटी और नासमझ के लिए जागीर।

बलराज जब और अधिक गहराई में उतरते तो वे पाते कि जो कुछ है एकान्त। मरा-मरा रटने वाला महर्षि वाल्मीक बन गया। केन्द्र क्या है? मनःस्थित, वस्तु क्या है? अनिच्छा, कर्म क्या है? अनवरत निष्काम-कर्म-योग, फल क्या है? मन समझाना। त्यागी कभी सुखी नहीं रहता, संसारी कभी सुख की नींद नहीं सोता। विवेचना किसी से उधार नहीं लेती है और आलोचना मुँहफट होती है; लेकिन एक समाज की रंगीन नारी है जिसका नाम मौखिक है। वह जब सहानुभूति के साथ गठ-बन्धन कर लेती है तो दुनिया दुरंगी हो जाती है और उसका दर्पण धुँधला।

इस तरह बलराज अपने में हैरान रहते। खोये-खोये से रहते। उनके कलेजे में हूक उठती, जब राकेश की याद आती। उनके हृदय में जलन होती, जब वे लीला को निहारते। उनका अन्तःकरण रो देता; जब अतीत की स्मृतियाँ उन्हें घेर लेतीं। वे कहते कि दुनिया पागल है और पागल है हर इन्सान, जो रोटी-रोज़ी के लिए दिन-रात भटकता है। जो जर-ज़मीन और जोरू के पीछे झगड़ा करता है और जो कहता है मुंह फैलाकर, कि मैं

यह हूँ कि मैं वह हूँ। अन्त यह है आदमी कुछ नहीं, पानी का एक बुलबुला है, जो उठता है और मिट जाता है।

१५

शिद्दत की गरमी का मौसम बीता। अषाढ़ में नभ पर मेघ गड़-गड़ाए और फिर लग गया सावन। धरती ने हरियाली की चादर ओढ़ी। पेड़-पौधों को जान मिली और नदियाँ भी हो गईं जवान। जमुना आँखें फाड़ बहने लगी। उसकी जल-राशि अपार ही नहीं अथाह हो गई। शाहदरे के उस पार की नई बस्तियाँ बाढ़ के खतरे से सशंकित हो, दिन-रात सतर्क रहने लगीं और ऐसे ही सतर्क हो गए, बलराज। क्योंकि अभी तक वे अपने दृढ निश्चय को कार्य-रूप में परिणत नहीं कर पाए थे। योजना का बना लेना जितना सरल है, उसको कार्यान्वित करना उतना ही कठिन। मन के घोड़े दौड़ाना अति सरल है; लेकिन नियन्त्रण का चाबुक प्रत्येक अपने हाथ में नहीं रख पाता। ऐसे ही सोचना तो एक साधारण-सी बात है और उसको करके दिखलाना एक कला।

दम्पति में अब तक बोल-चाल नहीं हुई थी। डिनर-टेबिल पर खाना लगता। एक ओर बलराज बैठते दूसरी तरफ़ लीला। नौकरों में साझा-सा हो गया था। जो नौकर लीला की डिश सजाता, बलराज उससे बात नहीं करते और जो नौकर बलराज के भोजन की व्यवस्था करते, लीला उन्हें देख नाक-भौं सिकोड़ती। इस तरह चल रही थी गाड़ी। गृहस्थी रो रही थी और कोठी भींख रही थी अपने भाग्य को। मर्यादा कह रही थी कि ये लक्षण अच्छे नहीं। जहाँ प्रणय की रागिनी और प्यार की शह-नाई बजनी चाहिए थी, वहाँ मौन-साज़ बजता है, मौन-साज़ ज़िन्दगी को कर देता है खाक। कहीं धुंआं नज़र आता है तो कहीं राख। इस

तरह मिट्टी का इन्सान, मिट्टी में ही मिल जाता है। उसकी उमंगें क्व
रह जाती हैं। उसके अरमान अनव्याहे। वह अछूता चला जाता है दुनि
के इस रंगीन मेले से।

वलराज को जव-जव राकेश की याद आती तो उन्हें लीला पर क्र
आ जाता और वे सोचने लगते कि सारा दोष इसी फ़ैशनेविल परी
है। स्त्री क्या नहीं कर सकती? वह आग लगा सकती है—घर
तमाशा देख सकती है। परम्परा के वोल इसी लिए तो दुनिया वार-
दुहराती है कि 'त्रिया-चरित्र जाने नहिं कोई—खसम मार के सत्ती हो
लेकिन मैं पिछड़ा हुआ नहीं, आज का आदमी हूँ। मैं जानता हूँ कि नि
हुए दाँत अन्दर कैसे किए जाते हैं। सावन वीत नहीं पाएगा और मैं ल
को तलाक़ दे दूँगा।

वलराज के विचार अपने निश्चय की सीमा निर्धारित कर चुके
और लीला अव तक थी अनभिज्ञ। उसे पता तव चला जव, एक
अदालत से उसके पास सम्मन आया। उसे सिटी-मजिस्ट्रेट के न्याय
में बुलाया गया था।

जव लीला कचहरी पहुँची तो वलराज पहले से ही इजलास में
थे। पुकार हुई, दम्पति आमने-सामने खड़े हुए। न्यायाधीश ने लील
वलराज का प्रार्थना-पत्र पढ़कर सुनाया, जिसमें तलाक़ की माँग की ग
और कारण वतलाया गया था कि उन्हें अपनी पत्नी से जान-माल
ख़तरा है। वे उसे गुज़ारा देंगे; लेकिन घर में नहीं रखेंगे। यही नहीं
उसके चरित्र पर भी सन्देह है।

लीला अवाक् खड़ी रही। वह कभी वलराज को देखती तो
मजिस्ट्रेट को। आख़िर वह चीखी और ज़ोर से चिल्लाई अदालत
"हाँ, मैं आवारा हूँ, वदचलन हूँ, मैं शेर, वाघ ही नहीं, एक हौवा
जव नौवत यहाँ तक आ गई है तो कोई हर्ज नहीं, मुझे तलाक़ मंजूर
लेकिन गुज़ारा कितना मिलेगा प्रति मास। मैं रेवती नहीं, जो सौ रुप
महीना काटूँ।"

बलराज को इसका ध्यान पहले से ही था कि रेवती की अपेक्षा लीला अधिक खर्चीली है। उसे दो सौ रुपये से कम वृत्ति नहीं मिलनी चाहिए। जब नगर-न्यायाधीश ने लीला को यह बतलाया तो वह अपनी जगह से एक बालिश्त उछल गई। फिर दोनों हाथ फटकार संतुलन खोकर बोली—"दो-सौ। दो-सौ तो मुझे दो ट्यूशन में मिल सकते हैं। चाहिए तो हज़ार; लेकिन मैं पाँच सौ ले लूंगी। अगर यह नहीं तो तलाक़ भी मुझे मंजूर नहीं।"

मरता क्या न करता ? बलराज को पाँच-सौ रुपये महीने लीला को देने के लिए बाध्य होना पड़ा। दम्पति अदालत से आगे-पीछे कोठी आए। लीला ने अपना सामान बाँधा। उसने सभी साड़ियाँ रख लीं और ज्वेलरी के नाम पर भी सेफ़ में कुछ नहीं छोड़ा। बलराज खड़े-खड़े देखते रहे। वे चूं तक नहीं कर पाए। सूटकेस, प्लाईमाउथ कार में रखे गए। अब बलराज बहुत चौंके कि शायद लीला यह गाड़ी भी ले जायगी और सच-मुच प्लाईमाउथ लेकर चल दी निर्वासिता को। वह करौलबाग़ से चली और लोदी कालोनी में जाकर रुकी।

रेवती अभी-अभी विद्यालय से आकर बैठी थी। उसने देखा कि लीला आ रही है तो वह कुछ चौंक-सी गई। और जल्दी से उठकर खड़ी हो व्यस्त स्वर में पूछने लगी—अच्छी तो हो लीला, बहुत दिन में आई। अरे तुम्हारे हाथ में सूटकेस कैसे ? कोई नौकर नहीं था क्या ?"

लीला कुछ नहीं बोली। उसने दोनों सूटकेस कमरे में छोड़े, फिर जल्दी से वापस गई और दो ही वैसे सूटकेस और उठा लाई अब रेवती बहुत अधिक चौंक गई। वह विस्मय-विस्फारित नेत्रों से लीला की क्रोध-पूर्ण-मुद्रा निहारती हुई अचरज-भरे स्वर में बोली—"यह सब क्या है ? रूठ-कर आई हो या पति-पत्नी में लड़ाई हुई। कुछ बोलो तो लीला, तुमने तो मुझे ताज्जुब में डाल दिया है।"

"ना रूठकर आई हूँ और न लड़ाई-झगड़ा करके। तुम्हारी ही तरह तलाक़ लेकर आई हूँ और एक दिन तो यह होना ही था।" यह कहते-

कहते लीला रोने लगी और लग गई रेवती के गले से। दोनों खूब रोईं और देर तक रोती रहीं। जब रेवती के आँसुओं का वेग कुछ कम हुआ तो वह लीला का सिर ऊपर उठा अपनी धोती के छोर से उसके आँसू पोंछ स्नेह-भरे स्वर में धीरे-धीरे कहने लगी—"जब बड़ी बहन मौजूद हो तो छोटी रो नहीं सकती, लीला। वह आँसू नहीं बहा सकती। तुम्हें याद है न, मैंने एक दिन कहा था कि जब तक रेवती जिन्दा है तुम पर आँच नहीं आने देगी। कोई बात नहीं बहन सन्तोष करो। यह पुरुष जाति बड़ी कठोर होती है।"

लीला रोती रही, सिसकती रही और उसकी सिसकियाँ बार-बार रेवती से स्नेह की माँग करती रहीं। दिन छिप गया, रात ने काली चादर ओढ़ी। वह पैरों में झिल्ली और झींगुरों के नुपुर बाँध चली पिया के देश। तब लीला को होश आया कि मोटर में ताला बन्द नहीं है। वह सुरक्षित नहीं। उसने रेवती से कहा। दोनों उसी समय रेवती के कालेज की प्रिन्सिपल के बँगले गईं। उनके यहाँ एक गैरिज खाली था, वे भी लोदी कालोनी में ही रहती थीं।

इस तरह कार को सुरक्षा की गोद में सौंप, जब दोनों सह-पत्नियाँ वापस लौटीं तो रेवती ने दाल-भात बनाया। छोटे-छोटे और हल्के-हल्के फुल्के सेंके। उसने बड़े प्यार से खिलाया लीला को। दोनों एक ही पलंग पर लेटीं और जब तक कनिष्ठा सो नहीं गई बड़ी बहन उसे समझाती रही, उसका मन बहलाती रही।

दूसरे दिन पंजाब नेशनल बैंक के लॉकर में लीला रेवती के साथ वे सब गहने रख आई जो वह कोठी से लाई थी। रेवती अपना जीवन तो साधारण ढंग से व्यतीत करती, लेकिन अब उसे चिन्ता होने लगी कि लीला साधारण घर में नहीं रह सकती। इन दो कमरों से काम नहीं चलने का। कह तो रही थी प्रिन्सिपल कि वह मेरे ही कालेज में लग जाए। इंगलिश में एम० ए० है और वह भी फ़र्स्ट डिवीज़न। उसे

देंगे और मैं भी कुछ कमा ही लेती हूँ। जल्दी ही उसके लिए कोई फ्लैट या बँगला किराये पर ले लूंगी। जो लोग उच्च-स्तर का जीवन व्यतीत कर चुके होते हैं, उन्हें जंगल में नहीं बैठाया जा सकता, उन्हें रेगिस्तान में नहीं चलाया जा सकता।

और इस तरह लीला रेवती के कॉलेज में पढ़ाने लग गई। अब लोदी कालोनी में ही दो सौ रुपये मासिक का एक बँगला लिया गया था। यही नहीं खाना बनाने के लिए महराजिन, सफ़ाई और कपड़े-बरतन धोने के लिए महरा। एक माली भी रखा गया था नौकर, बँगले की फुलवारी सींचने के लिए। अब लीला और रेवती दोनों उसी प्लाईमाउथ-कार पर कालेज जातीं। उसी पर वे शाम को घूमने निकलतीं। कभी-कभी नज़र पड़ जाती बलराज की, तो वे मुँह घुमा लेते, दृष्टि नीची कर लेते।

रेवती जितना अधिक ध्यान रखती लीला का, उतना ही लीला उसका बड़प्पन मानती। अब वह बहन नहीं, रेवती नहीं, उसे दीदी कहती थी। वह सोचती कि जब ससुराल से निर्वासित लड़की अपने पीहर पहुँचती है, तो माँ-बाप उसे अच्छी निगाह से नहीं देखते। भाई और भाभी दो दिन बाद ही साफ़-साफ़ कहने लगते हैं कि तुम्हारे लिए उस घर में ठौर नहीं। मैं जाती तो वहाँ टीका-टिप्पणी की पात्री बनती। मेरे पास लगभग एक लाख रुपये की ज्वेलरी है। यह भी होता है, अक्सर कि मैके वाले रुपया, ज़ेवर रख लेते हैं और बाद में धक्के देकर निकाल देते हैं। रेवती पर ही मेरा विश्वास था और वही है एक विश्वस्त सूत्र, उसमें त्याग की भावना है। वह दूसरे को कुछ देने की इच्छा रखती है, लेने की नहीं। उसे कुछ नहीं चाहिए, देखो तो उसका सारल्य, वह अपना वेतन मेरे ही हाथ में रख देती है। बलराज वाले रुपये भी मुझे ही देती है और उस रक़म को मैं अपनी इच्छानुसार खर्च करती हूँ। बड़ी सरल है रेवती, बड़ी सरला। वह मुझे बहुत करती है। जितना मेरी माँ ने भी कभी नहीं किया।

जिस तरह रेवती लीला की प्रवृत्तियाँ पहचानती थी। उसी तरह लीला भी ध्यान रखती उसका कि रेवती धर्म-परायणा है। इसीलिए वह एकादशी, पूर्णिमा और तिथि-त्यौहारों को उसे जमुना-स्नान के लिए ले जाती। वह उसके व्रत वाले दिन उसके खाने-पीने की व्यवस्था स्वयं करती। जब वह अध्ययन में व्यस्त होती तो लीला भी उसका अनुकरण करती। अन्तर केवल इतना रहता कि रेवती पढ़ती हिन्दी में दर्शन-शास्त्र, कभी मनोविज्ञान और कभी-कभी पुराणों की कहानियाँ। रामायण, गीता उसके प्रिय ग्रन्थ थे। किन्तु लीला शौक़ीन थी अंग्रेजी-साहित्य पढ़ने की। वह अमेरिकन उपन्यास पढ़ती और कभी फ्रांसीसी लिट्रेचर से टकराती। शेक्सपियर, एलेक्जेण्डर ड्यूमा, जार्ज बर्नार्ड शॉ और टॉलस्टाय आदि उसके प्रिय लेखक थे।

इस प्रकार पुराना नगर उजड़ कर अब नये नगर की नींव पड़ी थी और उस नये नगर की नई कहानी थी, यह कि वहाँ तृप्ति थी, शान्ति थी, एक ओर ऋद्धि, दूसरी ओर सिद्धि। वहाँ जब सन्तोष साँस लेता तो मीठी-मीठी नींद आने लगती है। वहाँ जब स्नेह अपना गठ-बन्धन करता, तो कर्तव्य फूलकर हो जाता कुप्पा। वह कहता कि यह दया-धर्म का डेरा है। यह धरती नहीं स्वर्ग है। यह मनुष्य का आवास नहीं, यहाँ देवियाँ रहती हैं। धरती की बेटी, कुल-वधू, कुल-भामिनी।

१६

मनुष्य जब आत्मीयों से ऊब जाता है तो वह कहने लगता है कि मुझे एकान्त चाहिए। तुम सब लोग घर छोड़ दो या मैं ही यहाँ से चला जाऊँ। ऐसी ही परिस्थितियाँ गृह-कलह को जन्म देती हैं। संघर्ष होता है, क्षण-क्षण पर वाक्‌युद्ध। अपना-पराया लगने लगता है और एक दिन

जब मनुष्य रह जाता है अकेला, तो घर की दीवारें उससे पूछती हैं—क्यों, तुमने खाना खाया ? आज यहाँ रौनक़ नहीं, उदासी क्यों ? बाहर की चौखट उसे टोक-टोक देती कि मैं मैली नहीं हुई, मुझ पर किसी ने पैर नहीं रखे। आँगन कहता कि मैं सूना हूँ, मेरा श्रृंगार करो। तब आदमी घबड़ा जाता, वह कानों पर हाथ रखकर सोचता है। वह तकिये में सिर छिपाकर रोता है। वह ऊब-ऊबकर साँसें लेता है। उसकी गति जैसे भंग हो जाती है, उसकी बुद्धि जैसे भ्रष्ट।

अकेला अपशकुन है समाज में। क्योंकि समाज वह दुनिया है जहाँ खुशियों का मेला लगता है, हँसी के रंग-बिरंगे गुब्बारे उड़ते हैं। जहाँ बारात उठती है तो सभी पड़ोसी, आत्मीय, स्वजन साथ-साथ चलते हैं। ऐसे ही जब अर्थी उठती है तो मातम में भी वे ही लोग होते हैं। झगड़ा-झंझट होता है तो चार आदमी बीच-बचाव करते हैं और जब कोई यश की पिटारी खोलता है तो लोग बहुत खुश होते हैं कि अमुक यह बन गया, अमुक वह हो गया। वह बड़ा नेक है। इस प्रकार समाज से दूर रहकर कोई भी जीवित नहीं रह सकता। सो, बलराज ने समाज की ओर से एकदम मुँह ही मोड़ लिया था और अब अकेलापन उनको इस तरह अपने पंजों से नोंच रहा था, जैसे कबूतर को बाज। उन्हें कोई प्यारा था तो केवल एक; लेकिन वह स्वयं ही मुँह काला करके दुनिया के पर्दे में छिप गया था; उसका नाम राकेश था। वह कोढ़ और खाज ही नहीं, समाज के नाम पर कलंक था।

लेकिन बाहरी दुनिया, तेरी मोह की आँखें अंधी होती हैं। तेरा स्नेह कभी झूठ से सौदा ही नहीं करता। भाई हो या बाप, लड़का हो या स्त्री, जो जिसे अत्यधिक प्यार करता है, वह दुनिया को झूठा कहता है और उसे सच्चा बतलाता है। बलराज ने कभी सन्देह नहीं किया राकेश पर और न उसे ग़लत समझा। वे अब भी उसकी याद में ऐसे व्याकुल थे जैसे मणि के बिना सर्प। वे दिन याद करते, रात सोचते और फिर अंध-विश्वास की भी क़द्र कर मनौतियाँ मानते कि मेरा राकेश मिल जाय।

वह घर आ जाए। जमुना मैया में फूल बताशे चढ़ाऊँगा। गाय और बछिया पुजाऊँगा और भगवान् तुम्हारी कथा सुनूँगा। मैंने तयकर लिया है कि अब मैं ब्याह नहीं करूँगा। अपने राकेश को दूल्हा बनाऊँगा। उसी बहू आकर हमारी गोद में लाल देगी, तब यह कोठी सूनी नहीं रह एगी।

किन्तु मनुष्य जितना शान्ति पाने का प्रयत्न करता है, उतना ही वह लझता चला जाता है। मानव स्वभाव, मनुष्य गति मर्यादा से परे नहीं नुष्य की इच्छाएँ ही प्रधान नहीं, होनहार पहले। सावन में तलाक़ दी ो बलराज ने लीला को और अब माघ का महीना व्यतीत हो रहा था। क दिन गणतन्त्र-दिवस पर, छब्बीस जनवरी को, वे भी मन बहलाने के लए इण्डिया गेट गए। वहाँ उन्होंने तोपों की सलामी देखी। फौजों का ार्चिङ्ग। वहाँ राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री और विदेशी दूतावासों के लोग, यह ब लक्ष्य किया। उनका मन बहला और जब सात मील लम्बा जुलूस इण्डिया गेट से लालक़िले की ओर चला तो पागल बलराज भी चल दिए दल तमाशाई बन। वे कनॉट प्लेस तक चलते चले आए, थके ही नहीं। ेकिन यह क्या, उनका हँसता हुआ चेहरा एकदम बुझ गया। उनके ाथ-पैर फूल गए। वे एक जगह खड़े होकर रह गए। उन्होंने देखा कि ड़क के एक किनारे प्लाईमाउथ खड़ी है। उसके अगल-बगल दो चेहरे ाँक रहे हैं। एक प्रथमा थी, दूसरी द्वितीया। एक रेवती थी, दूसरी ीला। उस भीड़-भाड़ में कोई सवारी नहीं मिली तो बलराज पैदल ही रौलबाग़ चल दिए। वे पुरानी देहली नहीं आए। कोठी पर आकर वे ोचने लगे कि अब देहली का वह रंग नहीं रहा। मुझे यह शहर छोड़ना ड़ेगा। ठीक है कल ही मैं चल दूँ नैनीताल। महीने-दो-महीने रहूँगा। ारी चिन्ताएँ मिट जाएंगी।

इस तरह बलराज ने नैनीताल जाने की योजना बना ली। नौकरों को उनके काम पर नियुक्त कर और उत्तरदायित्व सौंप, वे अपने मुनीमों को भी आगाह करते गए कि मैं कुछ दिन नैनीताल रहूँगा। रेवती और

लीला को मनीऑर्डर प्रति मास उसी तरह भेजा जाएगा, जैसे जाता है और आय-व्यय की साप्ताहिक रिपोर्ट मेरे पास नैनीताल जाएगी। यहाँ का कोई नौकर नहीं जाएगा, मैं वहाँ रख लूंगा।

इस तरह बलराज नैनीताल आ गए। वे बड़े आदमी थे लक्ष्मी के पुत्र। स्टेशन पर ही होटलों के बैरे मिले और कोठियों के नौकर, बाबू कोठी चाहिए। हुजूर बँगले की ज़रूरत है। सरकार चलना है मॉडर्न होटल। कोई कहता कोठी एयर-कण्डीशन्ड है, सिर्फ़ दो सौ रुपया महीना और कोई कहता कि साहब क्या ज़माना है? नैनीताल की जवानी तो अंग्रेज़ों के साथ चली गई। एक-एक दिन का सौ-सौ रुपया किराया मिलता था कोठी का जब सीज़न चलता था। आज कल तो कोठी वाले भूखों मरते हैं भूखों। किरायेदार ही नहीं मिलते।

यद्यपि तराई के मैदानों में जाड़ा बुढ़ापे की ओर से जवानी की ओर बढ़ रहा था। फ़रवरी का महीना आरम्भ हो चला था; लेकिन पहाड़ी प्रदेश अब भी सर्दी की थाती को कलेजे से लगाए बैठे थे। छोटी-छोटी घाटियाँ बर्फ़ से ढँक जातीं, जब सवेरा होता और जब मचल जाता तूफ़ान; तो साइबेरिया की तरह बर्फ़ के सफ़ेद बुरादे की बरसात होती। लेकिन फिर भी मौसम अच्छा लगता। स्थान मन को मोहता और बलराज का मन लगता है। वे कहते कि सचमुच नैनीताल बहुत सुन्दर जगह है।

हालाँकि जो चहल-पहल अप्रैल, मई, जून और जुलाई के महीनों में रहती, उसका चतुर्थांश भी दृष्टिगोचर नहीं होता। मगर फिर भी बलराज प्रसन्न थे। उन्होंने तल्लीताल पर एक कोठी किराये पर ले ली।

तल्लीताल एक छोटी-मोटी झील का रूपक था, जिसमें सफ़ेद और रंग-बिरंगी बतखें तैरतीं, जिसके किनारे सारस के जोड़े घूमते नज़र आते; जिसमें साँझ समय होता नौका-विहार। शहर की जनता पर्यटन के लि[ए] आती। वह भ्रमण कर सुख पाती। ऐसा था तल्लीताल। जब सवेरे व[ह] सिन्दूरी सूरज उसकी जलराशि में झाँकता तो आबाल और वृद्ध सभी के मन का पुष्प खिल उठता। ऐसे ही साँझ को आती उस ताल प[र]

समें छोटी-छोटी डोंगियाँ चलतीं। काश्मीरी शिकारे जैसी किश्तियाँ भी खने को मिलतीं। पहाड़ी बालाएँ और पहाड़ी युवक। जी बाबू—बाबू ती, कहकर ग्राहक को खुशामद की डोर में बाँध लेते। दृश्य बड़ा मनो-रम होता। क्या सुबह क्या शाम? बलराज का मन खूब लगता। वे तीला को भूल गए। रेवती भी उनके मन से बिसर गई। हाँ, एक याद रह गई तो वही अनुज की। वह जब टीस भरती, कलेजे को मसोसती तभी क्या दिन हो और क्या रात, वे घूमने निकल पड़ते?

बलराज ने एक बूढ़े पहाड़ी को नौकर रखा था, जो टूटी-फूटी हिन्दी बोलता। खाना वे होटल में खाते। कपड़े धोबी ले जाता। कभी-कभी रात बहुत हो जाती तो पहाड़ी उनकी प्रतीक्षा में रत दरवाज़े पर खड़ा मिलता। वे आते उससे सहानुभूति की बातें करते। वह बुजुर्ग भी अपनी स्वामीभक्ति की चादर पर खुशामद के फूल बिछा देता। दोनों सो जाते और सवेरे जब बलराज की आँख खुलती तो पहाड़ी उन्हें कमरों की सफ़ाई करता मिलता।

कभी-कभी बलराज चले जाते पहाड़ी लोगों की बस्ती में। यह दुनिया बड़ी रंगीन थी। छोटे-छोटे घर जिनकी छतें खपरैल की थीं, उन घरों के आगे नंगे-उघारे पहाड़ियों के शिशु खेलते। बलराज देखते कि खपरैलों पर फूलों की बेलें ही नहीं, लौकी, तोरई आदि सब्जियाँ भी लताओं में लगी हैं और बैठी हैं, पूरा शृंगार किये युवतियाँ। प्रौढ़ाएँ बैठी आपस में बातें कर रही हैं। किसी के हाथ सलाई चलाते, तो कोई स्वेटर न बुन मोतियों की माला बनाती। कोई दाल-चावल बीनती और कोई करती कसीदा। वह अपनी ओढ़नी पर रेशम के फूल काढ़ती।

बलराज को यह सब ऐसा लगता मानो यह छोटा-सा स्वर्ग हो। वे सोचते कि कितने सुखी हैं ये परिवार। दुःख और दरिद्रता की छाप इन पर स्पष्ट होते हुए भी ये अपने में पूर्ण हैं, अपने में सन्तुष्ट। ऐसा समाज, ऐसा घर और ऐसे परिवार हम पूँजीपतियों के क्यों नहीं? हममें ईर्ष्या है, द्वेष है, हममें प्रत्याशा है, हम में प्रलोभन है, हम पैसा खाते,

ैसा ही ओढ़ते और पैसा ही विछाते हैं। यह पैसा ही दुश्मन है आदमी का। यही हमारे भाई-चारे में खलल डालता है। यही इन्सान-को-इन्सान से जुदा करता है। मुझे सवक़ देते हैं ये पहाड़ी परिवार कि तुम यहीं सुखी रहोगे। तुम यहीं रहो। जहाँ शान्ति नहीं वहाँ जाकर क्या करोगे?

इस तरह दृढ़ निश्चय कर लिया वलराज ने कि वे निकट भविष्य में देहली नहीं जाएँगे, फिर कभी देखा जाएगा।

१७

वलराज को नैनीताल आए तीन महीने हो गए। अव गरमी का सीज़न चल रहा था। शहर में भीड़ वढ़ रही थी और वलराज को लग रहा था यह सदा-वहार है, यह मेला कभी खतम नहीं होगा। पूरे साल-भर लगा रहेगा। नैनीताल का जैसा था तल्लीताल उसी से जोड़ खाता मल्लीताल। दोनों ताल पास-ही-पास थे; लेकिन उनकी परिधि अलग-अलग। जव तल्लीताल पर भीड़ अधिक हो जाती तो वलराज मल्लीताल निकल जाते। वे घण्टों वैठे रहते जल में पैर डाले और सोचा करते कि राकेश पता नहीं कहाँ होगा। वह छिपा होगा पुलिस के डर से। इसीलिए कोई सूचना नहीं दी। क़ानून का भय मनुष्य के भय से वड़ा होता है। मनुष्य एक वार क्षमा कर देता है; लेकिन विधान रियायत नहीं करता। यह गुण दोपमय है, इसमें जितनी अच्छाइयाँ हैं, उतने ही अभाव भी। यह कभी-कभी इन्सान को गुमराह कर देता है—जैसे जव धोखे में किसी से कोई भूल हो जाती है। उसे माफ़ न कर सज़ा दी जाती है तो वही माफ़ी का तलवगार हो जाता है खिलाफ़। डाकू ऐसे ही वनते हैं। खूनी इसीलिए छिपे-छिपे घूमते हैं। होता यहाँ तक है कि मन में सुधार की भावना होने पर भी लोग सुधर नहीं पाते। वे आवाज़ उठाना चाहते हैं,

अपनी कहना चाहते हैं, लेकिन पहले क़ानून; इसीलिए सब गुड़-गोबर हो जाता है।

बलराज सोचते कि क़ानून के ही डर से राकेश मुझे नहीं मिल रहा है। यह उसका और मेरा दोनों का ही दुर्भाग्य है।

जब उत्तर प्रदेश और राजधानी देहली में बैशाख का सूरज आग उगलता तो नैनीताल में वही प्यारा-प्यारा लगता। वह जब सवेरे निकल आता तो लोगों का जैसे सौभाग्य उदय होता। उसकी विदाई के क्षण लोग समूह बनाते, तल्ली और मल्लीताल पर जुटते। वे उसे विदा करते। तब दिन की शेष बच रही आभा अपने में ओज भरती और कहती कि दिन का अन्तिम रूप मैं ही हूँ। मैं ही सृष्टि हूँ और अँधकार विनाश। प्रकाश पुंज रजनी चन्द्रिका का वह आभूषण है जो उसकी मर्यादा में चार चाँद लगाता है। ठीक सूरज की ही तरह नैनीताल का चाँद भी मुस्कराता हुआ निकलता। वह तल्लीताल के जल में लहरों के साथ अठ-खेलि करता। चाँद जल-राशि पर थिरक-थिरककर नाचता तो तारे भी आलोकित होते, उस नीर में और बिजली के बल्वों की परछाइयाँ भी काँपती, हिलती-डुलतीं। तब डोंगियों पर बैठे नागरिक पान कुचरते, कोई सिगरेट के कश लेते, कोई तराना गाता नया और कोई अलापता राग विरहा। दृश्य इतना सुन्दर होता कि बरबस ही मन अपनी ओर आकर्षित कर लेता। न अधिक ठण्डी और न गरम ऐसी डोलती पुरवाई धीरे-धीरे तो तरंग आ जाती और कभी-कभी बलराज भी शिकारे में सवार हो जाते। एक रात जब आकाश में पूर्णिमा का चाँद, चाँदी का फूल जैसा खिला था और राका की उजियाली फैल रही थी समस्त धरती पर। आकाश-पक्षी उड़ता हुआ गा रहा था—'पी कहाँ—पी कहाँ।' पास ही एक आधुनिक सज्जा से युक्त अर्वाचीन होटल था। वहाँ आर्केस्ट्रा बज रहा था जिसके स्वर ताल पर भी बुलन्द होते। बलराज सुनते और वे भी मन-ही-मन कहते कि आजा मेरे परदेशी पक्षी। राकेश तू कहाँ है। तुम्हारे लिए ही पंछी मैं परदेश आया हूँ।

"उफ़ राकेश !" वलराज के मुंह से सोचते-सोचते एक दीर्घ उच्छ्वास निकल पड़ी। फिर वह जैसे नदी के ज्वार में डूब-सा गया। उसने गरदन नीचे झुका ली। तभी पास बैठे एक युवक ने उसका कन्धा हिलाया। उसने सान्त्वनापूर्वक पूछा—"वड़ी लम्बी सांस ली आपने। किसी की याद आ गई थी क्या ?"

वलराज ने ऊपर दृष्टि उठाई। उसने देखा कि युवक की वड़ी-वड़ी मूंछे हैं। वह सिर पर झव्वेदार वड़े-वड़े वालों की टोपी दिए है। उसने ऐसी कमीज़ पहन रखी है जैसी पारसी समाज में व्यवहरित होती है। वह सफ़ेद पायजामा पहने है गुजराती ढंग का, जिसमें दोनों तरफ़ जेबें होती हैं। उसके एक हाथ में घड़ी है और दूसरे में कलकत्ते की चौरंगी वाज़ार में विकने वाला शीशम का लाल वेंत। ऐसी चटक और शीतल चाँदनी में भी उसने आँखों पर काला चश्मा चढ़ा रखा था। एक क्षरण वलराज ने उसे देखा। उसने आत्मीयता-भरी वारणी सुनी थी। इसीलिए सहानुभूति पाने की जिज्ञासा ले, वह धीरे से वोला—"याद ! नहीं मेरे भाई घाव हो गया था कलेजे में और जव वह नासूर वन गया तभी तो मैं यहाँ चला आया। मेरा एक भाई था राकेश पता नहीं कहाँ गया ?"

किश्ती धीरे-धीरे लहरों पर वह रही थी और माँझी गा रहा था अपनी पहाड़ी भाषा में कोई विरहा राग। उसका स्वर समवेद था। युवक ने दिलचस्पी ली, उसने वलराज से दूसरा प्रश्न किया—"क्यों ! चला क्यों गया आपका भाई ? कुछ काररण ज़रूर होगा।"

वलराज जैसे उस प्रश्न का उत्तर देने के लिए प्रस्तुत ही वैठे थे। वे तत्क्षरण ही दुखिया स्वर में कहने लगे—"वात क्या हुई, कुछ भी नहीं। रस्सी का साँप वना दिया लोगों ने। उसके ख़िलाफ़ झूठा इल्जाम लगा दिया। वह क़ानून के डर से भाग गया। मैं तो कहता हूँ कि वह आए और सफ़ाई दे तो इल्जाम अपना-सा मुंह लेकर रह जाएगा। कानून शरमा जाएगी। साँच को आँच नहीं होती, भाई।"

युवक अव वलराज के तनिक और निकट सरक आया। इस वार जो

उसने उसके कन्धे पर हाथ रखा तो एक घनिष्ट की तरह नहीं, आत्मीय और स्वजन बनकर। उसने सहानुभूति के घट-पर-घट उँड़ेले और फिर वैसे ही सांत्वना-भरी वाणी में बोला—"क्या इल्जाम था, बताएँगे आप। वैसे मुझे कोई हक़ तो नहीं। हो सकता है कि मैं आपके भाई की खोज कर सकूँ; आपको उसका कोई पता दे सकूँ। दुनिया का काम अकेले नहीं होता बड़े भाई। मुझे आपसे कुछ हमदर्दी-सी हो गई है, न जाने क्यों?"

"हमदर्दी! इन्सान से इन्सान को हो ही जाती है। यह दुनिया का दस्तूर है। मेरे घर में स्त्री का प्रावान्य हुआ, इसीलिए मैंने उसे तलाक़ दे दिया। यह मेरी दूसरी वाइफ़ लीला थी और पहली रेवती भी तलाक़ शुदा है। उन्हीं दोनों ने जाल रचा और इस तरह मेरा भाई मुझसे दूर हो गया। उस पर यह जुर्म है कि उसने एक डॉक्टर को कुछ रक़म दी कि वह मुझे जहर का इन्जेक्शन लगा दे; लेकिन सब झूठ है बिलकुल झूठ। उसके मुकदमे की पैरवी में मैं कुछ उठा नहीं रखूँगा—वह मिले तो।"

यह सब बलराज एक साँस में कह गए। युवक कुछ बोलने ही वाला था, तब तक वे पुनः कहने लगे—"मैं मुँह माँगा इनाम दूँ जो आकर मेरे भाई का पता दे। उस ऊपर वाले ने मुझे बेशुमार दौलत दी है। मैं…"

"तो लाइए इनाम, अभी दीजिए। मैं आपको आपका भाई लाकर देता हूँ।"

बलराज की बात बीच में ही काट युवक ने अपनी बात कह दी, जिससे वे अवाक् रह गए और उसकी ओर एकटक देखने लगे। उन्हें कुछ बोध हुआ कि इसकी आवाज़ राकेश से मिलती-जुलती है, लेकिन राकेश नहीं हो सकता, इसकी तो बड़ी-बड़ी मूँछे हैं। यह कोई पारसी युवक है। बलराज क्षणिक अन्तर्द्वन्द में ऐसे खोए कि उन्हें परिस्थिति का ज्ञान ही नहीं रहा। नाव किनारे लग रही थी। माँझी के हाथों में पतवार सधने लगे थे। युवक ने फिर अपनी बात दुहराई। इस बार उसका स्वर कुछ बदला-बदला नजर आया। शायद पहले वह गला दाबकर,

बोल रहा था। उसने कहा—"क्या दे रहे हैं इनाम आप। मैं राकेश को अभी आपके सामने पेश करता हूँ।"

"अधिक क्या कहूँ, मैं अपने प्राण दे सकता हूँ अगर कोई माँगे? चलो, मुझे ले चलो कहाँ है वह? वह मेरी छाया में आ जाए फिर उसे कोई डर नहीं।"

वलराज यह कहकर आतुर-से हो गए। दोनों नाव से नीचे उतरे और तभी झुक गया वह पारसी युवक वलराज के चरणों में। वह रोकर बोला—"मैंने आज जाना कि मेरा भाई मुझे कितना चाहता है। भैया, तुम्हारा अभागा राकेश सामने खड़ा है। क्या लीला भाभी को भी तलाक़ दे दी? यह तो आपने अच्छा नहीं किया।"

वलराज ने मेरा राकेश, मेरा भैया, कहकर युवक को गले से लगा लिया। वे रोने लगे। युवक सिसकियों ने भी उस रुदन से संगम किया। दोनों ऐसे वे-सुध हो गए कि नाव वाले को भी पैसे देना भूल गए। जब चेत हुआ तो मारे खुशी के वलराज ने दो रुपये की जगह उस माँझी को पाँच का नोट दे डाला।

वलराज अपने साथ राकेश को कोठी लाए। पूछने पर उसने अपनी कहानी इस तरह वतलाई कि भैया, ये घर में जो कुछ भी हुआ इसका कारण मैं नहीं, भाभी लीला है। ठीक रेवती की ही तरह उनकी भी निगाह वदली, उनमें भी फ़र्क़ आया। वे रीझ गई मेरे पुरुषत्व पर तो मैंने हाथ जोड़कर उनसे क्षमा चाही। इसीलिए वे पता करके रेवती से मिली। न जाने उन्हें कैसे सुराग लग गया। फिर जव वे एक से दो हो गई तो मकड़ी का जाला घना हो गया। षड्यन्त्र-पर-षड्यन्त्र, चाल-पर-चाल यह सव चलने लगा, आखिर कितना वड़ा रूपक वनाया दोनों ने कि डॉक्टर को रिश्वत दी। उनकी चाल कामयाव हो गई और मैं इस तरह फरार हूँ। यहाँ गोपी के नाम से मल्लीताल पर रहता हूँ। खर्चा चल जाता है क्योंकि पढ़ा-लिखा हूँ। परेशानी ज्यादा नहीं हुई। क्योंकि मेरे हाथ में हीरे की अँगूठी थी। उसके अलावा रोमर वाच भी, मैंने वेच दी यह साधारण

घड़ी है। जन्जीर भी बाज़ार चली गई। यहाँ मुझे लोग मास्टरजी
मास्टरजी कहते। मैं ट्यूशन पढ़ाता हूँ, क़रीब छः महीने हो गए। इस
पहले कई शहरों में भटका, होटलों में खूब पैसा खर्च किया। अन्त
यहाँ मेरा मन लग गया और यह जगह भी सुरक्षित थी। तुम कैसे आ
भैया, यहाँ कब से हो।"

राकेश की बातों का बलराज जवाब देना ही चाहते थे कि तब त
बूढ़ा पहाड़ी नौकर आ गया। वह पूछ रहा था कि खाना खा लिया
नहीं, बिस्तर लगाऊँ। तब बलराज को चेत हुआ। वे राकेश का हा
पकड़ कोठी से बाहर निकल पड़े। दोनों एक होटल पहुँचे। उस होट
में जैसे रंगीन जवानी मचल रही थी, आर्केस्ट्रा बज रहा था। सफ़ेद व
पहने बैरे इधर-से-उधर डोलते। छुरी और काँटे मेजों पर खटकते
चीनी की प्लेटों में चम्मच बजते और वातावरण इतना मोहक लगत
इतना आकर्षक मानो कोई बारात सजी हो और शहनाई के स्वर बुल
हो रहे हों।

१५

होटल में बलराज और राकेश की खूब बातें हुईं। बलराज ने बतल
कि उनका जी अब देहली से ऊब गया है। वे लीला और रेवती की व
से बहुत परेशान हैं और तीसरा बीच में पैदा हो गई शीला जो उ
पहली मँगेतर थी। उसने उसी रात मुझ पर अस्पताल में गोली चल
जिस दिन डॉक्टर वाली दुर्घटना हुई थी। क्या करूँ? इतना ल
फैलाव है कि समेटे से समेटा नहीं जा सकता। थोड़ी न बहुत ग्य
कोठियाँ हैं। सच तो यह है राकेश कि जिसकी आमदनी बहुत अ
होती है, वह हमेशा परेशान और हैरान ही रहता है। अब मैं ब्याह

करूँगा। खूब भर पाया और इस नतीजे पर पहुँचा कि व्याह एक वला है ज़िन्दगी की क़यामत। ये उच्च-शिक्षा प्राप्त लड़कियाँ नियन्त्रण तो जानती ही नहीं, लिहाज़ उनके पल्ले नहीं होती। हाँ! ख्वाहिशें उनकी वड़ी ज़वरदस्त होती हैं। कोई सीधी-सादी लड़की देख तुम्हारा व्याह करूँगा। वस वही मेरा संतोष होगा, वही मेरा सुख।

राकेश यह सव सुनता रहा। वह मन-ही-मन मगन होता रहा। उस रात वह अपने मकान में नहीं गया। वलराज के साथ कोठी में ही रहा। सवेरे दोनों भाई तल्लीताल पर घूमने गए। वहाँ एक पहाड़िन लड़की वेले के हार वेच रही थी। वलराज ने दो हार ख़रीदे और उन्हें राकेश के गले में डालते हुए प्रसन्न होकर वोले—"वस मैं यही चाहता हूँ राकेश, कि इस वेले के फूल की तरह ही तुम्हारी ज़िन्दगी महके। जव मैंने अपनी वरवादी की मंज़िल देख ली, तभी तो ज्ञान हुआ। अव मैं तुम्हारी ही दुनिया आवाद करूँगा, मुझे अपनी चिन्ता नहीं।"

राकेश को ऐसा लग रहा कि ईश्वर उस पर वहुत दयालु है। वह वलराज़ के साथ-ही-साथ लगा रहा, दोपहर का खाना भी दोनों ने एक उच्च-श्रेणी के भोजनालय में खाया। मन वहलाने के लिए वलराज ने शतरंज की चौपड़ और मोहरे ख़रीदे। तीसरे पहर दोनों शतरंज खेलने वैठे तो साँझ हो गई। फिर आ गए वे मल्लीताल पर। दोनों एक डोंगी पर सवार हुए। नाव चल पड़ी और हल्के-फुल्के पतवार पानी में छप छप वजने लगे। गोल थाली जैसा चाँद लरजने लगा उस तालाव की हिलती-डुलती काया में। लहरों ने अपना नृत्य आरम्भ किया। एक नाव पर वाँसुरी वज रही थी। धुन चल रही थी—"पंछी और परदेशी दोनों नहीं किसी के मीत, विरहनी रो-रोकर गाये सारी उमरिया वीत। पंछी और परदेशी......।" और ऐसे ही एक रेख-उठान युवक तट पर वैठा आलाप रहा था—"जाना देश पराये ओ पंछी वावरिया।"

समीपवर्ती होटल का आर्केस्ट्रा नई धुनें छेड़ रहा था। कहीं किसी के मुख में विगुल दवा था। कहीं कोई हंसी के गुव्वारे फोड़ रहा था।

कहीं दम्पति कन्धे-से-कन्धा मिलाए बैठे अपनी प्रणय-पूर्ण गुफ़्तगू क
रहे थे। कहीं आगन्तुक का हाथ पकड़ कोई कह रहा था—"हलो
मिस्टर! हाऊ आर यू। आओ, आज बहुत देर कर दी।"

ठण्डी हवा गातों को छू, प्राणों से कह रही थी कि तुम भी अपने म
की वीन बजाओ। देखो मन अपने आप ही नाचने लगेगा। अरे मेल
क्यों लगता है? शादी-ब्याह में जश्न क्यों मनाया जाता है? सब आनन्द
के लिए, मनोरंजन के लिए। ज़िन्दगी जीने के लिए है। वह सोचने, दुख
करने और बरबाद होने के लिए नहीं। ऐसे मौसम में एकाएक बलराज का
एक हाथ उठा और वह पीठ थप-थपाने लगा राकेश की। उनकी वाणी
वाचाल हुई। स्वर निकला स्नेह से पूर्ण—"अच्छा राकेश अब तुम्हें यहां
पुलिस का डर तो नहीं, यह बहुत अच्छा है। जगह सुन्दर है, अब मैंने
देहली को तिलांजलि दे दी है और सोचता हूँ कि दस-पाँच दिन में ही
कोठी खरीद लूंगा। किराये की जगह में न तो नींद आती है और न
मिलता है। कल ही दलालों से मिलो, सौदे की बातचीत करो।"

राकेश चुपचाप सुनता गया। वह तथ्य-पर-तथ्य दुह लेना चाहता
था, किन्तु बलराज बीच-बीच में उसे बोलने के लिए बाध्य करते। तब वह
हूँ-हाँ कह कर टाल देता। इस अवसर पर उसके मन में तेजी के साथ
बिजली की तरह विचार दौड़े। उसने अपना मत एक समझदार की
तरह नहीं, सलाहकार की भी भाँति नहीं, उस नादान शिशु की तरह प्रगट
किया, जो खिलौना सामने देख कर मचल जाता है और माँ-बाप उसकी
ज़िद पूरी करते हैं। वह बोला—"भैया, देहली में तो हम लोग पैदा
हुए, वहीं पले, इतने बड़े हुए। मुक़द्दर होता है किसी-किसी का। किसी
को परदेश ही फलता है अपना देश नहीं। ग्यारह कोठियाँ तो वहाँ, बार-
हवीं आप खरीदने जा रहे हैं, मेरा तो मन है कि छोड़ो नैनीताल, हम लोग
बम्बई चलें और देहली की दस कोठियाँ बेच दी जाएँ, सिर्फ़ करौलबाग़
वाली को छोड़ कर। बम्बई में समुद्र के तट पर एक आलीशान कोठी
खरीदी जाए। वह शहर है, वहाँ न लीला आएगी और न रेवती। शीला

वेचारी तो खुद ही गर्दिश में है। नैनीताल में कोठी खरीदना तो मेरी समझ में नहीं आता।"

"तो न आये भाई। मैं तेरी राय के खिलाफ कब हूँ। अच्छा तेरा मन है तो तुझे बम्बई में ही कोठी खरीद दूँगा; लेकिन देहली की रियासत वेचने वाली बात मेरी समझ में नहीं आती। उस पर सोचना पड़ेगा उसके लिए मैं अभी कुछ भी नहीं बतला सकता।"

ब्लराज ने यह बात राकेश के चेहरे पर लक्ष्य करके कही और राकेश, वह ऐसी जिज्ञासु मुद्रा ले, कुछ और सुनने के लिए आतुर बैठा था। उसने अपना मुँह नहीं खोला तभी वलराज फिर कहने लगे—"मुझे करना ही क्या है? न कुछ लाया हूँ और न अपने साथ ले जाऊँगा। सब-कुछ तुम्हारा ही है राकेश। चाहे आज ले लो चाहे कल। इस बन्दे को कुछ नहीं चाहिए। इसने दुनिया का स्वाद चख लिया। इसे सब कड़वा और खट्टा ही नजर आया।"

राकेश गद्-गद् हो रहा था, वलराज कहते ही जा रहे थे। नाव एक वृत्ति पूरा कर चुकी थी। वह किनारे से लगी तभी तालाव का जल ज़ोर से हिला और ऊँचा उठ कूल से टकराया। दोनों नीचे आए वहाँ हरी घास थी। उस चाँदनी में ऐसा लगता जैसे तालाव ने हरी चादर ओढ़ ली हो। दोनों धीरे-धीरे मार्ग तय करने लगे। उनके पाँव सधे हुए पड़ते, वे करीने से क़दम-क़दम उठते। उनमें अधिकांश तो मौन पल रहा था। दोनों जैसे कुछ सोच रहे थे। कभी वलराज टोक देते। चलो कुछ जलपान कर लें। काफी पीने की इच्छा है या दूध। किन्तु राकेश हर बार सिर हिला देता कि नहीं-नहीं। उसे जो स्वर्गीय सुख मिलने जा रहा था, उसकी उसे अनुभूति हो रही थी। वह मन-ही-मन रंगीन सपने देख रहा था। उसके मानस-जगत में इन्द्र-धनुष बन रहा था। जिसमें सात रंग थे, सातों चटक और खूब निखरते हुए।

वलराज के साथ उनकी ही कोठी में रहने लगा। लिवास वह
नता। उसकी वैसी ही वड़ी-वड़ी मूंछें थीं। दोनों भाइयों में इस
सी सम्मति थी, मालूम होता था कि सुमति दोनों के हाथ विक
शान्ति दोनों में समा गई है। उनके सम्मुख एक सोने का हिरण
योग मुस्करा रहा था। उनकी आँखों के आगे एक रंगीन पर्द
हा था।

लराज जब राकेश की वातों पर विचार करते तो वे गहन अन्त
डूव जाते। वे सोचते कि हाँ, देहली में अधिक फैलाव अच्छ
रहने, ठहरने और आने-जाने के लिए एक कोठी काफी है। वम्व
वड़ा शहर है। वह टोकियो, न्यूयार्क और लन्दन की श्रेणी
है। दस कोठियाँ वेच दूँ और एक वहुत वड़ी वहाँ खरीदूँ। कोठ
के काम आएगी, रुपया किसी काम में लगा दूंगा। जव ज़िन्द
लसिला आरम्भ ही में विगड़ जाता है तो वह अन्त तक न
ा। जव दाम्पत्य-जीवन सुख की अपेक्षा अभिशाप वन जाता है
जाती है ज़िन्दगी इन्सान की। सपने आए और उन सपनों
भी वजे। रेवती इतनी नीच निकली कि उसने राकेश पर ही डो
लीला इतनी दुष्ट कि उसने मुझ पर ही कीचड़ उछाला और शी
राक्षसी। ओह! वह विवाह का वीभत्स दृश्य यह मैंने देखा।

लराज ने एक दिन सोचा, दो दिन सोचा, तीसरे दिन भी उन
क्रम रहा और चौथे दिन निश्चयात्मक ढँग से वे अपने को पू
कर राकेश से वोले—"मैंने तय कर लिया है कि देहली की कोठि
वेच दूँ। तुम तो चल नहीं सकते। करौलवाग़ वाली कोठी
। वाक़ी रियासत खत्म कर देना ही अच्छा है। अव हम
ही रहेंगे। वम्वई महानगरी है।

राकेश ने यह सुना तो वह प्रसन्न हो उठा। वह बोला—मैंने तो पहले ही कहा था भैया, कि जब देहली में रहना नहीं तो वहाँ की रियासत रखकर क्या होगा ? अच्छा जाओ दो-चार दिन में यह काम करके चले आओ। फिर हम लोग बम्बई ही चलेंगे। ऐसा लगता है कि जैसे हमारे संस्कार हमें वहाँ बुला रहे हैं।"

"संस्कार ही तो प्रधान होते हैं राकेश। नसीब आदमी से दो क़दम आगे चलता है और जब तक जहाँ का अन्न-जल बदा होता है, आदमी उस धरती पर टिकता है। सब संयोग होता है भाई और संयोग की छाया में ही आदमी का भाग्य बसता है। अच्छा तो तय रहा मैं कल सवेरे ही चला जाऊँगा।"

यह कह बलराज राकेश के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। वह पहले से ही सहमत बैठा था। उसके समर्थन का पुट भी बड़ा प्रभावशाली था, बलराज हँस दिए। फिर जब वे चले तो उन्होंने भाई का मुँह चूम लिया।

बलराज देहली आए तो कोठी की दीवालें रो रही थीं। वहाँ का हर कोना-कोना कह रहा था कि क्यों रे निर्मोही, तुझे मेरा मोह नहीं, तू मुझे छोड़कर क्यों चला गया ? तू मन में कुचक्र लेकर आया है, तू बुजुर्गों के हाड़ बेचेगा। जा तुझे कभी शान्ति नहीं मिलेगी। तू ज़िन्दगी-भर परेशान रहेगा।

बलराज ने दलालों को बुलाया, कोठियों के सौदे की बात हुई। दूसरे दिन ही तीन कोठियाँ नीलाम हो गईं। तीसरे दिन और बिक गईं तीन। अब रह गईं चार, वे एक युवती ने खरीदीं जिसका नाम प्रभा था।

इस तरह बलराज को देहली में लगभग दो हफ़्ते लग गए। सभी कोठियों की रजिस्ट्री कर सभी की पूरी-पूरी रक़म वसूल कर वे जब नैनीताल चले तो बहुत प्रसन्न थे कि इस तरह वे अपने भाई की इच्छा पूरी कर सके। वे जिस समय राकेश के सम्मुख पहुंचे। उस समय वह बैठा एक पुस्तक पढ़ रहा था, जिसका नाम था 'बम्बई महानगरी का सचित्र दिग्दर्शन।' बल-

राज ने जाते ही अपने अनुज को बाहों में भर लिया। वे उसकी बलाएँ ले मुँह चूम धीरे-धीरे कहने लगे—"जो तू चाहता था भैया, वह मैं कर आया। अब बम्बई की तैयारी है ना। नैनीताल में इतने दिन रहे, तुमने कभी नैना देवी के दर्शन किए। चलो आज नैना देवी चलें। ये वही नैना देवी हैं, राकेश जिसका आल्हा में उल्लेख मिलता है। आल्हा की पत्नी सुनमा इसी नैनागढ़ की राजकुमारी थी। आज मैं नैना माता के सामने यह भीख माँगूंगा कि मेरे राकेश का व्याह हो जाए और मेरी अनुजा की गोद में लाल खेले, तो मैं आकर माता को सोने का छत्र चढ़ाऊँगा। लोग कहते हैं कि देवी-देवता कुछ नहीं; लेकिन यह नास्तिकों की भाषा है। आस्तिक आस्था पर जाता है और उसका केन्द्र विन्दु होता है एक धर्म। धर्म मर्यादा का वह अंग है जो प्रतिष्ठा को जन्म देता है। प्रतिष्ठा प्राणों से प्यारी होती है। जब आदमी यश की दुनिया में विचरता है। चल राकेश, आज नैना देवी चलें।"

राकेश ने भाई के हाथ पैर धोये फिर विधिवत् उसे स्नान करवाया। इसके बाद उसने होटल से खाना स्वयं मँगवाया और जब बलराज खा-पीकर बैठे तो वह उनके पैर दबाने बैठा। तीसरे पहर दोनों भाई गये नैनादेवी के मन्दिर में। वहाँ जब बलराज ने मनौती मानी तो उनके आँसू बहे। किन्तु मुस्कराता रहा राकेश। तब वह सोच रहा था कि बम्बई में रानी बाग़ है इतना बड़ा ज़िन्दा और मुरदा, जैसा अजायबघर हिन्दुस्तान में नहीं। बम्बई में हैंगिग गार्डन है। वहीं जुहू है, वहीं चौपाटी। होटल ताजमहल, दुनिया में एक नमूना है। दादर का पुल एक कहानी है। पोरीबन्दर स्टेशन जिसे विक्टोरिया-टर्मिनेस कहते हैं, एशिया के स्टेशनों में बेजोड़ है। बम्बई का फिल्म-उद्योग हॉलीवुड से टक्कर लेता है। वहाँ की रईसत लन्दन के निवासियों से तुलना करती है। वहाँ की अमीरी न्यूयार्क से होड़ लेती है। वहाँ की चमक-दमक पेरिस को मात करती है। पेकिंग उसके सामने शर्माता है और मास्को ठहरा नास्तिक। उसकी चर्चा तो है; लेकिन वह दुनिया के समाज से बहिष्कृत है। रंगीन

नगरी है इटली की रोम; लेकिन बम्बई इस बीसवीं सदी की रानी है, वही काया है और वही माया है और वही सोने की चिड़िया है।

नैना देवी सिंह के वाहन पर सवार थी। पत्थर की फ़र्श, पत्थर की छत और पत्थर की ही दीवारें। घण्टा टँगा था सवा-सौ मन का जिसे सौ आदमी भी मिलकर उतार नहीं सकते; लेकिन टुनटुनाता था केवल अकेला ही। सो बलराज टन-टन कर रहे थे। मन्दिर गूँज रहा था और देवी की आभा बोल रही थी—"धर्मम् संघम् गच्छामि—संघम् शरणं गच्छामि। तमसो मा ज्योतिर्गमय: शान्तिम् शरणाम् गच्छामि।"

बलराज जब मन्दिर से बाहर आए तो उन्होंने मंगतों को दान बाँटा। रास्ते में वे पुलकते और विहँसते आये। फिर जब नैनीताल की कोठी छोड़ी तो उस बूढ़े पहाड़ी नौकर को वे दस हज़ार रुपये का बीयरर चैक दे आए। दोनों बम्बई के लिये रवाना हो गए। तब राकेश प्रसन्न था। उसकी मुद्रा मन्द-स्मृति बिखेरती और बलराज थे चिन्तनशील कि ज़िन्दगी कहाँ हँसती और कहाँ पर रोती है।

२०

जब मेल ट्रेन बम्बई के विक्टोरिया-टर्मिनेस स्टेशन पर आकर रुकी तो राकेश ने सन्तोष की साँस ली और बलराज मुस्कराए। वे बोले—"ले पगले तेरी बम्बई आ गई, अब ले चल, कहाँ ले चलेगा मुझे। वाह कितना सुन्दर स्टेशन, ऐसा तो मैंने ज़िन्दगी में कभी देखा ही नहीं। चल राकेश कुली आ गए सामान उतरवा।"

"चुप भी रहो भैया। तुम्हें बहुत बोलने की आदत हो गई है। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे? यह वैभव की नगरी है, यहाँ गम्भीरता का मूल्य आँका जाता है।"

राकेश के मुँह से यह सुन बलराज ऐसे मुस्कराए मानों उन्हें
की निधि मिल गई हो। उनका भाई अब उनसे भी अधिक समझदा
गया है और चाहिए क्या ? वे पालतू तोते की तरह बर्थ पर चुप
बैठ गए। सामान उतर गया। कुली प्लेट-फार्म पर पहुँच गया, तब र
ने फिर एक बार भाई को सजग किया। वह बोला—कैसे हो भैया
उतरो, तुम तो यहाँ आकर सुध-बुध ही भूल गए ? जब शहर देखोगे
तो शायद तुम्हारी आँखें ही फट जाएँगी।"

"अरे ! चल-चल मैं प्यार का काजिल अपने साथ लाया हूँ।
फटी आँखों में रोशनी आ जायगी। चन्द्रमा कुछ नहीं, जो कुछ है स
जिसे राकेश कहते हैं। चल जल्दी उतर, अब तू मुझे सिखाने लगा।
मेरी जिम्मेदारी खत्म। चाहे स्याह कर चाहे सफ़ेद। भाई और ल
जब बराबर का हो जाता है तो उसी की बुद्धि पर चलना पड़ता
चल-चल।"

बलराज ने जब यह कहा तो राकेश धीरे-से मुस्करा दिया। स
से बाहर आ दोनों भाई एक होटल में ठहरे। यह ईरानी होटल
दादर में स्थिति। यहाँ मँहगा और सस्ता दोनों तरह का खाना वि
था। एक सप्ताह तक दोनों भाई बम्बई घूमे। उसके बाद मकान
दलालों से मिले। फिर मैरिन-ड्राइव पर खरीदी गई एक बड़ी-सी कं
पच्चासी लाख की और बलराज ने शुरू कर दिया हीरे जवाहराती
व्यापार। अमेरिका के सौदागर आते, उसके यहाँ महमान बनकर रह
ईरान के खान आते। ऐसे ही लन्दन के दक़ियानूसी और फ़ान्स के पु
सौदागर। खूब काम होता। देश के कोने-कोने से जौहरी आते।
दिन एक युवती सौदागर आई, तब राकेश कोठी में नहीं था। वह
केसरिया रंग की जरी की साड़ी पहनकर आई थी उसका मूल्य लग
दो हजार था। उसके कानों में पन्ना के टॉप्स थे, जो पाँच हजार से
के नहीं। उसके गले में थी पोखराज की माला लगभग पच्चीस ह
की और उसके हाथ में हीरे की अँगूठी, वह भी लगभग पाँच हज़ार

वह जो घड़ी बाँधे थी उसका डायल मूँगे की कीमती धातु से बना था। उसमें एक लचक थी। उसमें थी सुन्दरता, जैसी पूर्णिमा के चाँद में होती है। उसका पर्स बेहद क़ीमती था। उस पर हीरे-मोतियों का काम हो रहा था और उसके अन्दर थे सौ-सौ के दो-सौ नोट। वह जब आई तो बलराज नीचे से ऊपर तक उसे देखते ही रह गए।

युवती बोली—"हलो मिस्टर बलराज, हाऊ आर यू। मैं कुछ ख़रीदने आई हूँ। क्या बढ़िया क़िस्म के हीरे होंगे ?"

"हीरे, कम-से-कम कितनी क़ीमत के।"

युवती सुनते ही बोल उठी—"पाँच हज़ार से कम क़ीमत का हीरा कोयला होता है, दस हज़ार का मुलम्मा, पन्द्रह हज़ार का नक़ली सोना, हीरा बीस हज़ार से कम नहीं होता, जो असली हीरा कहा जाता है। लाइए, निकालिए, है आपके पास।"

"जी नहीं। मैं इतने मँहगे हीरे नहीं बेचता। मैं इतना बड़ा आदमी नहीं।" पोखराज ले लीजिए, हज़ार पन्द्रह सौ का मिल जाएगा, पन्ना दे दूं, नीलम देख लो। सच्चे मोती भी मेरे पास बहुत क़ीमती हैं। क्या दिखलाऊँ।

"क्या दिखलाएँगे आप, है भी आपके पास कुछ। आप तो बहुत छोटी बात करते हैं। चलिए मेरे साथ मैं आपको जन्नत दिखलाऊँ। मेरा नाम बसन्ती है, मैं लाखों की नहीं करोड़ों की स्वामिनी हूँ। बस नमस्ते, समझ लिया कि आप छोटी क़िस्म के दूकानदार हैं।"

यह कहती हुई मदिरा की प्याली-सी छलकती हुई, बसन्ती जल्दी-जल्दी चल दी, तब बलराज उठे, उसके पीछे भागे। वे बोले—"आइ बेग ! माई पारडेन सर ! मैडम, हाऊ लकी यू आर। आई लाइक यू। आइये बैठिए। मुझे आपसे सौदे की बहुत सहूलियत मिलेगी, मैंने जान लिया।"

इस पर इतराती, बलखाती बसन्ती मूविंग-चेयर पर जाकर बैठ गई। कुर्सी इधर घूमती, उधर घूमती, जैसे उस कमरे के मध्य कोई

अप्सरा नृत्य करती। यद्यपि राकेश अभी नहीं आया था, लेकिन फिर भी बलराज ने मैडम वसन्ती का स्वागत किया। डिनर टेबिल पर बढ़िया-बढ़िया व्यंजन सजाये गए। राजसी भोज भी जिसके सामने मात खाते। खाते-खाते एक बार वसन्ती ने देखा बलराज को। दोनों की दृष्टि मिल गई। आँखें चार हो गईं और उस नेत्रोन्मिलन ने ही दिया आकर्षण को जन्म। बलराज के मुँह से एक ठण्डी आह निकली और तभी बसन्ती मुस्करा दी।

इसके बाद बलराज वसन्ती के साथ-ही-साथ उसकी कोठी दादर आए और चलते-चलते वे कह गए कि वसन्ती तुम जादू हो। वह जादू क्या जो किसी के सिर पर चढ़कर न बोले? दोनों ने उस रात होटल ताजमहल में खाना खाया। दोनों एक क्लब में गए। दोनों ने अंग्रेजी नाच नाचा। बसन्ती अपनी कोठी आई और जब बलराज आधी रात को कोठी पहुंचे तो राकेश चकराया। उसने पूछा कि भैया कहाँ गए थे। तो उस दिन बलराज ने पहली बार भाई से झूठ बोला कि एक खान-दानी लड़की आ गई थी, वह करोड़पति आसामी है। उसी के साथ चला गया। वह ऊँची क़िस्म के हीरे खरीदेगी। बड़ा फ़ायदा है, लड़की बहुत समझदार है।

लेकिन राकेश को सन्तोष नहीं हुआ, वह सोचने लगा कि भैया लड़की के पीछे चले गए। इन्हें पैसे का लालच सवार हो गया है। कहीं बम्बई अपना रंग तो नहीं दिखला रही है। यहाँ आकर बूढ़ा भी जवान हो जाता है।

राकेश चिन्ता के अथाह सागर में गोते लगा रहा था। नींद उससे रूठ गई थी। उसने जो परिवर्तन देखा था भाई में, उसकी कल्पना स्वप्न में भी नहीं की थी। वह यही सोच-सोचकर हैरान था कि न जाने किस समय मनुष्य के विचार बदल जायँ, कुछ भी कहा नहीं जा सकता। वसन्ती—लड़की—करोड़पति आसामी, यह सब क्या है? शायद यह रंगीन दुनिया का रंगीन ही धोखा है।

"...और बलराज, उनकी भी आँखों में नींद नहीं थी। वे वसन्ती को ही अपने सामने देख रहे थे। वे याद कर रहे थे होटल ताजमहल का वह दृश्य जहाँ वसन्ती के साथ भोजन किया था। उन्हें उस क्लब की भी याद आई। जहाँ वे पाश्चात्य प्रणाली का नाच नाचे थे। उन्हें दादर की वह कोठी भी भुलाये न भूली, जहाँ वसन्ती उन्हें अपने साथ ले गई थी। अलख सवेरे जब वे तनिक झपके तब उन्हें स्वप्न में भी वही रूप-राशि दिखलाई दी, जो हीरे-मोतियों के गहने पहने थी। आह ! वसन्ती सचमुच तुम कितनी सुन्दर हो रूपसी, रूप की खान। मैं तुम्हारी खूब-सूरती की दाद देता हूँ।

सवेरा हुआ। हीरे-जवाहरातों के कुछ व्यापारी आये, सौदा हुआ। आज राकेश कोठी में ही रहा। वह कहीं नहीं गया। तीसरे पहर फिर वसन्ती आई। उस समय उसकी आँखों पर काला चश्मा चढ़ा था। आते ही वह बलराज से बोली—"क्या मँगवाये आपने ? मुझे बीस-बीस हज़ार की क़ीमत के पाँच हीरे चाहिएँ।"

"कहाँ मैडम, अभी तो तुम कल ही आई थीं। मँगवा दूंगा और कुछ...।"

अभी बलराज इतना ही कह पाए थे कि वसन्ती तुनककर खड़ी हो गई। वह जाने का आयोजन कर व्यस्त स्वर में बोली—"ना बाबा ना, मैं जाती हूँ, दूसरे जौहरी के यहाँ। मालूम होता है कि आप नए दुकानदार हैं, आपको हीरे-मोतियों की परख नहीं।"

बलराज सकते की हालत में आ गए। वे उठकर वसन्ती के पीछे भागे, राकेश यह सब देखता रहा। दोनों में लगभग पाँच मिनट बातें हुईं और फिर बलराज राकेश से कुछ कहे बिना ही वसन्ती के साथ चल दिये। दोनों मैरिनड्राइव से समुद्र के किनारे-किनारे जुहू आए, वहाँ वसन्ती बोली—"पंछी परदेस नहीं जाता। उसका बसेरा साथ रहता है। तुमने तीन-तीन घोंसले बनाए; लेकिन तुम्हें सिर छिपाने की जगह न मिली और मैंने तो नीड़ की आशा ही नहीं की। देखो पंछी परदेश आ

गया है और वह अपना जोड़ा लेकर ही जाएगा। दो दिन की मुलाक़ात में ही, तुम मेरे बन गए। मैं तुमसे सिविल मैरिज नहीं, माँगलिक रूप से ब्याह करूँगी। मैं बिलकुल अकेली हूँ। मेरे कोई नहीं और साफ़ बात तो है यह कि अब दुनिया बसाने को जी चाहता है।"

बलराज पालतू जानवर की तरह बसन्ती के साथ-साथ चल रहे थे। उस दिन वह खूब घूमी उनके साथ। हुआ यह कि बलराज आधी रात को ही घर आए। उस दिन राकेश ने उनसे कुछ नहीं पूछा। वे खुद ही सफ़ाई देने लगे कि वही करोड़पति लड़की आई थी, तुम तो थे। बड़ा लाभ रहेगा, अगर वह हमसे साझा कर ले। उसके पास बहुत सम्पदा है। हज़ार को तो वह कोई चीज ही नहीं समझती। लाखों से बातें करती है।

तीसरे दिन भी बसन्ती आई। चौथे दिन भी वह देर तक कोठी में । पाँचवें दिन वह एक विशेष आयोजन लेकर आई, हैंगिग गार्डन का। यह सब होता रहा, बलराज और बसन्ती का आकर्षण चलता और राकेश मन-ही-मन सुलगता रहा कि यह लक्षण अच्छे नहीं। ..म होता है कि भैया बसन्ती से ब्याह कर लेंगे। आखिर यह बसन्ती ौन ? यह कहाँ से आ गई? दादर में उसकी कोठी है। वह बीस- । हज़ार के पाँच हीरे खरीदना चाहती है। उसके तन-बदन पर हीरे ाहरातों के ही गहने लदे रहते हैं। अकेली है बिलकुल। राजकुमारियाँ उसके सामने शर्मा जायँ। फिर भला भैया क्या वस्तु ठहरे? आदमी ो जल्दी फ़िसल जाता है।

२१

जिस युवती ने देहली में बलराज की चार कोठियाँ खरीदी थीं उसका म प्रभा था। वह भूतपूर्व प्रेयसी थी राकेश की। प्रभा बी० ए० थी माँ-

बाप की इकलौती। उसकी कोठी दरियागंज में थी। राकेश और उसका स्वाभाविक आकर्षण बढ़ा, और बढ़ता चला गया। बलराज को कुछ भी नहीं ज्ञात, क्योंकि वे राकेश को दूध का धोया ही समझते थे। प्रभा और राकेश में परस्पर ब्याह की बातें हुईं। प्रभा की शर्त थी कि वह घर-जमाई बन कर रहे और राकेश ने वह शर्त करली थी मंजूर; लेकिन अपनी शर्त पेश कर दी कि वह घर-जमाई उसी हालत में बन सकता है जबकि प्रभा के बाप अपनी सारी वसीयत मेरे नाम कर दें।

प्रभा के बाप ने यह बात मानली। तय यह हुआ कि बलराज से बात की जायगी; लेकिन इसके पहले ही भण्डा फूट गया और राकेश के षड्यंत्र का पता प्रभा को चल गया कि अगर राकेश को मुझसे प्रेम है तो फिर शर्त रखने की ज़रूरत क्या? यह सब उसकी चाल है। वह मुझे नहीं मेरी दौलत को चाहता है और एक दिन प्रभा ने अपने कानों सुना होटल गेलार्ड में, जहाँ आर्केस्ट्रा बज रहा था, युवतियाँ नृत्य कर रही थीं। प्रभा जिस कुर्सी पर बैठी थी उससे तनिक परे था राकेश। वह एक दूसरे युवक के गले में बाँहें डाल उससे गुफ़्तगू कर रहा था। युवक मित्र ने उसका मज़ाक उड़ाया था कि जाओ यार तुम भी कोई आदमी हो, घर-जमाई बन कर रहोगे। इस पर राकेश ने होठों पर उँगली रखी, युवक को सावधान किया, फिर धीरे से बोला—"चुप यार पास ही बैठी है, चौंक जायगी। तुम जिगरी दोस्त हो इसलिए बतला रहा हूँ। राकेश कच्ची गोलियाँ नहीं खेलता, उसका निशाना अचूक होता है। मैं ऐसा बेवकूफ़ नहीं जो घर-जमाई बनूं। मैं गुलाम बनूं और औरत मुझ पर हुक़ूमत करे। ब्याह होने के बाद जहाँ वसीयत मेरे नाम हुई, मैं प्रभा को पागल क़रार कर दूंगा। बस फिर सब माल अपना ही समझो।"

दोस्त हँसा, उसने राकेश की पीठ ठोंकी और प्रभा अब भी वैसे ही बैठी थी, मानो वह सर्वथा अनभिज्ञ हो।

इस तरह राकेश और प्रभा का ब्याह नहीं हो सका। बलराज के कानों तक यह बात पहुँची ही नहीं। प्रभा को राकेश की वास्तविकता

मालूम थी कि वह बलराज के टुकड़ों पर पल रहा है। उसने उससे सच्चा प्यार किया। उसने उस पर विश्वास किया था; लेकिन जब राकेश का चरित्र उसकी दृष्टि में बिलकुल गिर गया तो वह उससे नफ़रत करने लगी और सोचने लगी कि राकेश मैं तुमसे बदला ज़रूर लूंगी। मैं भी बड़े बाप की बेटी हूँ।

और सचमुच प्रभा के बाप दीवान दौलतराम अतुल सम्पदा के स्वामी थे। उनकी भी कई एक कोठियाँ थीं देहली में। उनके घर में माया-ही-माया भरी थी। शेयर-बाज़ार और सट्टा उन्हें हमेशा लाभप्रद ही सिद्ध होता था। वे घुड़-दौड़ के भी शौक़ीन थे। एक दिन वे चालीस हज़ार जीते, उनका घोड़ा अव्वल रहा था। वे पत्नी और पुत्री को यह खुश-खबरी सुनाने के लिए जल्दी-जल्दी घर भागे। सामने ही मिल गई प्रभा. वे उसे वक्ष से लगा, केवल इतना ही कह पाए कि आज 'नौरंग' ने चालीस हज़ार......।

प्रभा सन्नाटे में आ गई, दौलतराम खड़े से गिर पड़े। उनकी आँखें खुली थीं, वे निर्जीव से हो गए थे। उसने जल्दी से बाप को उठाया; लेकिन दौलतराम जा चुके थे। वह उनकी लाश थी जो भारी हो गई थी। प्रभा चीखी, वह ज़ोर से चिल्लाई—"पिताजी, माँ-माँ देखो, पिताजी को क्या हो गया है?"

माँ ऊपर थी वह घबड़ाकर नीचे आई। उसने पति की हालत देखी तो समझ गई कि उनकी हृदय-गति रुक गई है। दोनों बार-बार शव को हिलातीं, छाती पीट-पीट कर रोतीं। दौलतराम की खुशी का पैग़ाम उनकी मौत का निमन्त्रण लेकर आया था, सो देकर चला गया। उसके कुछ दिन बाद ही पति शोक में पत्नी भी स्वर्ग सिधार गई, और इस तरह प्रभा अकेली रह गई।

प्रभा इतनी सुन्दर थी जैसे स्वर्ग की अप्सरा। उसका रंग मोती के मानिन्द था। उसकी आभा कंचन सदृश। उसकी द्युति कमनीय थी। उसका लोच-लाज का लुभावना प्रतीक, उसकी गति मराल थी, वह

हंसिनी थी। वह युवती नहीं, स्वर्ग की परी थी। वह अपने में पूर्ण थी और इस तरह प्रभा सचमुच अद्वितीय सुन्दरी थी।

प्रभा साधारण लिवास में नहीं रहती। वह क़ीमती पोशाक पहनती, आभूषण वह वदल-वदल कर धारण करती। कभी पोखराज की पहुँची उसके हाथ में होती तो नीलम के वाजूवन्द, हीरे की करधनी जव वह कमर में पहनती तो पन्ने का हार उसकी शोभा में चार चाँद लगा देता। साड़ियाँ वह दिन में कई वार वदलती। मोटरें थीं उसके पास तीन। पिता के समय की पुरानी फोर्ड कार। फिर एम्वेसडर का नया मॉडेल और अव तो लेली थी उसने स्ट्रीट-ब्रेकर। वह अकेली थी उसके नौकर-चाकर अनेक। वह रानी थी अपनी दुनिया की। वह व्याह करने के पक्ष में नहीं वरन् उसके ख़िलाफ़ थी। मौक़ा हाथ आया, जव वलराज की छः कोठियाँ विक चुकीं तो उसने जाकर खरीद लीं, शेष चार। उसके वाद ही सी० आई० डी० की तरह वलराज के पीछे लगी रही। वह गुप्त रूप से उसके साथ-साथ नैनीताल गई। वहाँ उसने राकेश को देखा। दोनों की योजना सुनी। वह वम्वई तक गई, एक किराये के होटल में रही। जव मैरिन ड्राइव पर कोठी खरीद ली गई तो वह देहली वापस लौटी। घर आकर उसने यह निश्चित किया कि यह मौक़ा उपयुक्त है, वलराज ने हीरे-जवाहरातों का व्यापार शुरू कर दिया है। अव मैं जाकर उसे छलूंगी, मौक़ा पाकर मुट्ठी में ले आऊँगी। मैं रचूंगी उसके साथ व्याह का ढोंग और जव वह मेरे वन्धन में पूरा-पूरा वंध जायगा तो कान पकड़ कर कहूँगी राकेश से कि चल निकल वाहर हो, तेरा यहाँ कुछ भी नहीं।

प्रभा एक निश्चित ध्येय लेकर वम्बई पहुँची। उसने पहले दो-चार दिन खूव छान-वीन की। फिर उसने दादर में एक कोठी किराये पर ली, जिसका किराया इक्कीस सौ रुपया मासिक था। वह विलकुल निश्चिन्त थी। वह जानती थी कि वलराज मोटी वुद्धि का आदमी है और जव मोटी मुर्गी जाल में फँस जाती है तो छोटी मुर्गी अपने-आप भागी चली आती

है। देखती हूँ मैं कि वह कितना चतुर और चालाक है। कौआ अधिक सयाना होता है इसीलिए विष्ठा खाता है। चोर चोरी करता है इसीलिए उसका जिन्दगी-भर मुँह काला रहता है और जो आग से खेलता है उसकी जिन्दगी तो खाक होती ही है। जो दूसरे को धोखा देता है, वह छला जाता है भाग्य के द्वारा। नसीब उसका साथ नहीं देता है। बुरा-बुरा है और भला-भला है। दुनिया किसी की नहीं, वह सत्य की है, धर्म की है और अस्तित्व की।

इस तरह प्रभा अपनी योजना में सफल और सफल होती जा रही थी। उसकी प्रसन्नता का ओर-छोर नहीं था। उसने बलराज को अपना भक्त बना लिया था। वह उसके पीछे-पीछे घूमता था। बलराज जब सौ का ोट निकालता तो वह कहती नहीं डार्लिंग मुझे खर्च करने दो। आखिर ्स दौलत का क्या होगा ?

बम्बई की सुनहली साँझ, जब चौपाटी पर लाखों की भीड़ जुड़ती, सफ़ेद सूरज लाल होता, फिर पीला होते-होते अस्ताचल की गोद में जाता तो वह बलराज के साथ रेत पर बैठ तारगुड़ा खाती, नारियल का पानी पीती। चिक्की वाले बोलियाँ लगाते। लाई गुड़ वाले भी इधर-उधर मँडराते। वह सोचती कि है तो यह बहुत शुभ, मगर बलराज मेरी समता का नहीं, वह अधेड़ है और अधेड़ के साथ ज़िन्दगी जोड़ी नहीं जा सकती। क्या करूँ? इससे ब्याह कर लूँ। शायद करना ही पड़ेगा।

कभी-कभी परिस्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो जाती हैं कि मनुष्य को कुछ काम करने के लिए बाध्य होना पड़ता है जो उसके मन के विपरीत होता है। जिसमें अच्छाइयाँ कम और बुराइयाँ अधिक होती हैं। यदि मैं यह राह नहीं चली तो बदला कैसे ले पाऊँगी। यदि मैंने बलराज से ब्याह नहीं किया तो राकेश को नीचा कैसे दिखलाऊँगी। करना पड़ेगा सब, जब आदमी बदला लेने चलता है तो उसे काँटों का हार पहनना पड़ता है। काँटे चुभते हैं, टीस होती है और तभी प्रतिशोध की भावना बलवती होकर कहती है कि जीवट से काम लो, आगे बढ़ो। बदला, बदला नहीं

मौत और जिन्दगी का खेल होता है।

सो प्रभा अपने में अडिग थी, उस पाषाण की तरह जो पर्वत की तलहटी में होता है। जिसे खोदने के लिए, जिसे हटाने के लिए पूरी-पूरी ताक़त की ज़रूरत पड़ती है। पहाड़, पहाड़ होता है, वह राई और माटी का ढेर नहीं। पत्थर काटे नहीं कटता, वह उठाए नहीं उठता। यही उसकी विशेषता होती है और ऐसे ही जब आदमी हो जाता है दृढ़-प्रतिज्ञ, तो कोई भी उसके विचार नहीं बदल सकता। उसे उसके रास्ते से मोड़ नहीं सकता। वह निश्चित पथ पर ऐसा बढ़ता चला जाता है, जैसे पहाड़ों से निकली हुई नदियाँ समुद्र की ओर। प्रभा भी उसी श्रेणी में आती। वह किसी से सलाह नहीं लेती और न किसी से कुछ कहती। वह अपने निश्चय पर चलती। उसी के बल-बूते पर आगे बढ़ती। यह उसका नारीत्व नहीं, उसका जीवट नहीं, उसके साहस का प्रतीक था। वह अबला होकर भी सबला थी। वह अकेली होकर भी शक्ति से भरपूर थी। वह अपने में अद्वितीय थी। वह नारी एक पहेली नहीं बल्कि उदाहरण थी।

२२

समुद्र तटवर्तीय नगर न गरम होते हैं न ठंडे। वहाँ का मौसम अनुकूल रहता है। गर्मियों में अधिक गरमी नहीं पड़ती और न जाड़ों में कलेजा कँपा देने वाली सर्दी। बरसात वहाँ की इतनी प्यारी होती है कि रिम-झिम-रिमझिम बूँदें गिरती हैं। काले-गोरे बादल दौड़ते और थोड़ी देर बाद ही आकाश हो जाता निरभ्र। बम्बई ऐसी ही नगरी थी। सभी ऋतुओं ने उससे सन्धि कर ली थी। जेठ का महीना बीता ही था, आषाढ़ का आर्द्रा नक्षत्र बरस रहा था। जब आकाश में काले बादलों की उमड़-घुमड़ मचती तो लोग प्यासी आँखें उठा-उठाकर देखते और कहते कि पानी बर-

सने ही वाला है। अभी तरी हो जायगी, आज कुछ गरमी अधिक थी।

मैरिनड्राइव की कोठी की छत पर छोटी-बड़ी बूंदे नृत्य कर रही थीं। शीतल झखोरे भरती हुई वायु उनसे आलिंगन करती। यह प्रकृति का खेल था जो इन्सानों की धरती पर खेला जा रहा था और छत के नीचे खुली खिड़की से बाहर हाथ पसार वसन्ती बलराज से कह रही थी—"कितना सलोना मौसम है। मेरा मन तो ऐसी बरसात में घूमने को करता है। दादर में जितना शोर-गुल है मैरिनड्राइव पर उतनी ही शान्ति। यह समुद्र का किनारा है और वह शहर का मध्यस्थल। डियर आओ चलें। हम लोग नंगे पैरों समुद्र में छप्-छप् करेंगे, जल-क्रीड़ा। नीचे पानी ऊपर पानी बीच में धरती और इन सबके बीच टँगी पतंग-सी हवा।"

तीसरा पहर हुआ था, तभी सूरज को असित बादलों ने नजर-बन्द कर लिया और इसके बाद हवा भी हो गई एकदम बन्द। खूब कसकर उमस हुई। फिर बूंदों की बारात आई। धरती उसे प्यार करने लगी, वह उसे चूमने लगी। वर्षा शुरू होने से कुछ पहले ही बसन्ती आ गई थी बलराज के घर। आज राकेश एक आवश्यक काम से कल्याण गया था। वह भी तीसरे पहर गया और अब तक नहीं लौटा। रात ही तक उसके आने की सम्भावना थी। अब साँझ के छः बज रहे थे; लेकिन लगता कि धरती पर रात उतर आई है। बलराज ने वसन्ती के साथ घूमने जाना उचित नहीं समझा। क्योंकि वह जानता था कि राकेश कुछ चौंक गया है। मुझे जल्दी ही वसन्ती से विवाह कर लेना चाहिए, वरना यह मौक़ा हाथ से निकल जायगा। वे बोले—"नहीं वसन्ती नहीं, बूंद-पानी में बाहर कहाँ चलोगी। आओ हम दोनों यहीं 'रॉक एण्ड रॉल' डॉन्स करें।"

बस फिर चलने लगा, 'रॉक एण्ड रॉल' नृत्य का दौर। वसन्ती धीरे-धीरे, जब वह नृत्य-प्रणाली खत्म हुई, तो गाने लगी—"हम शमा तुम परवाने, आजा रे सँवरिया।"

बलराज मुग्ध-नाग की तरह धीरे-धीरे झूमने लगे और वसन्ती की रागिनी अनवरत रूप से चलती रही। देर तक इस तरह नृत्य और

संगीत चला। फिर वलराज ने अपना प्रस्ताव वसन्ती के सम्मुख रख, और देकर उससे यह कहा—"अब जल्दी ही हम लोगों को व्याह कर लेना चाहिए। मेरा भाई है ना, वह तुम्हें देखकर चौंकता है। तो कल किसी पंडित से चलकर मुहूर्त पूछ लिया जाय। तुम्हारी क्या राय है?"

"जो श्रीमान् की, हुजूर की, औरत की राय भी कोई राय होती है।"

यह कहकर वसन्ती खूब ठठाकर हंसी। उस रात वह चली गई। सवेरे पंडित से मुहूर्त पूछा गया। आषाढ़ सुदी सप्तमी की लगन ठहरी। अब व्याह के केवल नौ दिन शेष रह गए थे।

एक दिन वलराज ने राकेश से कहा चलो राकेश अपनी भाभी के लिए व्याह का जोड़ा तो खरीद लाओ। बुढ़ापे में मुझे भी सनक सवार हुई। क्या करूं, वेटे जव मन कावू नहीं पाता तो किसी वन्धन में वंधने के लिए मजबूर होना पड़ता है। हाँ! कपड़े वहुत क़ीमती ही खरीदे जाएंगे। गहने हम-तुम क्या देंगे उसे? वह तो हीरे-मोतियों की रानी है। वह रानी ही नहीं, तुम सही मानो राकेश, धन-कुवेर की वेटी है। चलो सव सामान तुम्हें अपनी ही पसन्द का खरीदना है।

राकेश में इतना साहस नहीं था कि वह मुंह खोलकर कहता कि भैया तुम व्याह मत करो। वह ठगा-सा उनके साथ चल दिया। दोनों वाज़ार आए खूव ख़रीददारी हुई। एक लाख पेंतीस हज़ार के सव कपड़े-गहने खरीदे गए। राकेश रास्ते-भर मन-ही-मन घुटता और जलता भुंनता चला आया कि भैया मन-मानी करने लगे। यह नई वात है, अव यह व्याह मेरे लिए एक चुनौती है, रेवती मूर्ख थी, उसे मैंने सहज ही घर से निकाल वाहर किया और लीला नहले पर दहला, वड़ी मुश्किल से उससे पीछा छूटा; लेकिन यह वसन्ती मुझे तो लगता है कि इतनी खतरनाक है कि आते ही मुझे कान पकड़ निकाल वाहर करेगी। यह वम्वई और देहली घूमनेवाली स्त्री नहीं, यह पेरिस और लन्दन की सैर करेगी।

इस तरह कुढ़ता और सोचता रहा राकेश। आखिर व्याह का दिन आ गया। मैरिनड्राइव से एक वहुत ही वृहत् वारात

साज-सँवार की प्रतीक, चार-चार वैण्डों से युक्त, इतनी लम्बी वारात चली कि हीरे-जवाहरातों के व्यापारियों में से कोई भी शेष नहीं रहा, जिसने उसमें भाग नहीं लिया हो। दादर पर वसन्ती की कोठी विजली के रंग बिरंगे वल्वों से अपना शृंगार कर मुस्करा रही थी। नौवत वहाँ भी बज रही थी। शहनाई अलग अपने स्वर प्रसारित करने में व्यस्त थी। द्वार-चार की रस्म पूरी हुई। थोड़ी देर वाद दूल्हा लग्न-मण्डप में आया। वसन्ती के साथ वलराज का गठ-बन्धन हुआ। दोनों ने विधिवत् वेदी पर हवन किया और प्रभा की ओर से आये थे कुछ मेज़वान। उन सबने सफ़ेद कपड़े पहन रखे थे। राकेश को सब लोग गोपी-गोपी कहकर पुकारते। वह भाँवरों पर वैठा पैसे खर्च कर रहा था।

पण्डित के आदेश पर वधू वेदी से उठी। उसके आगे-आगे वर चला और भाँवरें पड़ने लगीं। एक भाँवर पड़ी तो वलराज फूले न समाये। [illegible]नरी का नाम सुनते ही राकेश के विच्छू ने डंक मार दिया और तीसरी [illegible]री होते-होते वधू ने देखा मेज़वानों की ओर। वस सफ़ेद चोले उतर गए, उनके अन्दर पुलिस की वर्दियाँ झाँकने लगीं। पुलिस इंस्पेक्टर ने पिस्तौल निकाल ली, वह राकेश से वोला—"हेंण्डस-अप मिस्टर राकेश। आप गोपी वनकर अब तक हम लोगों को धोखा देते रहे। आप देहली से बम्बई आये। आखिर पकड़े ही गये।"

सामने पिस्तौल की नली देख राकेश हक्का-वक्का रह गया। उसने दोनों हाथ उठा दिये। वलराज पर जैसे अचानक वज्रपात हो गया। वे खड़े न रहकर गिर पड़े। पण्डित की हो गई वोलती वन्द और वसन्ती ने खोल दिया गठ-बन्धन। वह राकेश और वलराज की ओर एक विजय-पूर्ण दृष्टि डाल व्यंगात्मक स्वर में वोली—"मैं वसन्ती नहीं प्रभा हूँ, लो करमा उतर गया, अब पहचान लो यह व्याह नहीं होगा। क्योंकि मैंने जो योजना वनाई थी, उससे सहज दूसरी योजना हाथ आ गई।

पुलिस अधिकारी मुस्करा रहे थे और राकेश के हाथों में हथकड़ियाँ भर दी गई थीं। वलराज धीरे-धीरे उठकर वैठे। वे खड़े होने का उपक्रम

कर, दरोग़ा से कुछ कहने ही जा रहे थे कि तब तंक प्रभा फिर उस
मुद्रा और उसी जोश में बोलने लगी—"परसों मैं एक ज़रूरी काम
हवाई जहाज़ द्वारा देहली गई, तो मुझे एक सहेली मिली, वह भी करोल
बाग़ में ही रहती है। हम दोनों यूनीवर्सिटी में साथ-ही-साथ पढ़ती थीं
मैंने उसे अपनी योजना बताई कि मैं राकेश से बदला लेने के लि
बलराज से व्याह कर रही हूँ। व्याह होते ही मैं उससे कहूँगी कि तुम घर
जमाई बनकर नहीं रह सकते; लेकिन अब मेरे ग़ुलाम बनकर रहो
इस तरह मैं बदला ले लूँगी अपने प्यार का और मेरे कलेजे की आ
बुझ जायगी, तो सहेली बोली कि राकेश है कहाँ, उसका पता हो तो
तुम्हें सहज तरीका बतलाऊं। मैं उसी दिन पहचान गई थी राकेश को
जब मेरिनड्राइव तुम्हारी कोठी पर गई, लेकिन मैंने जिक्र नहीं किया
मुझे क्या पता उसके नाम वारण्ट है? वह फ़रार है। भला हो बेचारी
विमला का, जिसने मुझे यह राज़ बतलाया। वहाँ से आते ही मैं पुलिस
स्टेशन गई। वहाँ अपनी पूरी-पूरी रिपोर्ट लिखवाई। दिल्ली की पुलिस
ने तार द्वारा यहाँ सूचना दी, वैसे ही मैं भी एरोप्लेन से आ गई। यह
मेरे मेज़बान हैं, तुम्हारी खातिर करने के लिए ले जा रहे है राकेश को
जाओ एक ज़िच तो दो आगे फिर देखा जायगा।"

प्रभा की बातें समाप्त होते ही उसका शुक्रिया अदाकर बन्दी राकेश
को पुलिस लेकर चल दी। मामला संगीन देख पण्डित उठकर भाग गया
उस कोठी के भारी-भरकम प्रांगण में सन्नाटा हो गया। बलराज अब भी
बुत बने खड़े थे। उन्हें प्रभा पर बेहद क्रोध आ रहा था। वे कुछ कड़ुए
और तीखे स्वर में उससे कहना ही चाहते थे कि तब तक प्रभा ने उन्हें
स्वयं डाँटा, वह फटकार कर बोली—"दो-दो व्याह किये और किसी
न हुए। मैं ऐसी मूर्ख नहीं। जाइये अपना रास्ता नापिये और फिर
कभी मत आइयेगा। मैंने बदला ले लिया। मेरी छाती ठण्डी हो गई
मैंने देख लिया प्यार कि तुम भाई को कितना चाहते हो। उसका एक
भी व्याह न कर आप साहब खूब सीढ़ी-पर-सीढ़ी चढ़े चले

हो। चलिए, जाइये, हमेशा-हमेशा के लिए नमस्ते।"

वलराज ने ज़िन्दगी में यह पहली हार खाई थी, जब वे नारी के व
में आये थे। यह भूल उनकी भूल ही नहीं, ज़िन्दगी की एक करारी चो
थी। वे कुछ नहीं वोले, चुपचाप चल दिये। क्योंकि राग और रोमांस
उन्हें कुछ दिन के लिए पागल-जैसा वना दिया था।

रुकिये एक मिनट। अपना तोहफ़ा भी लेते जाइये।"

जाते हुए वलराज को इस तरह टोका प्रभा ने। वलराज ठिठक गये
उसने जल्दी से व्याह का जोड़ा उतारा और गहने आदि। वह सब सामा
उनके हाथों में थमा, हेय स्वर में बोली—"यह सब मेरे लिए कुछ भ
नहीं, मैं पराई वस्तुएँ मिट्टी समझती हूँ। हाँ! अगर तुम्हें यह लाल
हो कि व्याह में मेरा वहुत खर्च हो गया, नुकसान हो गया तो दिल
छोटा करो, वताओ मैं उतने का चैक दे दूं।"

अव वलराज की ढीली देह पर जैसे हज़ारों हण्टर पड़ गये। वे वो
नहीं पाये। धीरे-धीरे चल दिये। वे दादर से मैरिनड्राइव की ओ
पैदल ही जा रहे थे।

२३

कोठी आकर वलराज को शान्ति नहीं मिली। वे सीधे पुलिस था
पहुँचे। तव रात जवान हो चुकी थी और आधी नगरी सो रही थी
हर विभाग के काम में जैसे एक शिथिलता-सी आ गई थी। राकेश हवा
लात में वन्द था; लेकिन पहरे के सन्तरी ने उन्हें मिलने नहीं दिया
थाना इन्चार्ज उस समय निद्रा देवी की गोदी में थे। अतः किसी अधि
कारी ने ठीक तरह वात नहीं की और असिस्टेण्ट ने तो साफ़-साफ़ क
दिया कि वहुत पुराना और वड़ा संगीन मामला है। ऐसे मुकद्दमों व

ाई में भी देर लगती है और वात कहते तो ज़मानत हो ही नहीं
ती। फिर केस देहली का है, मुलज़िम देहली भेजा जायगा, वहीं
द्दमा चलेगा।

वलराज ठगे से चले आये। वे सोचने लगे कि मुकद्दमा शुरू होते ही
; देहली पहुँच जाना चाहिये। इसके पहले मैं सवेरे ही चल दूं देहली।
ानत के लिए ज़मीन-आसमान के कुलावे एक कर दूं। वहाँ मेरा ज़ोर
यह नया शहर है। आह प्रभा! तूने किस जन्म का वदला लिया।
ुझे रूप की रानी समझता था; लेकिन तू काली नागिन निकली।
ा डसा, ऐसा डसा क़ातिल, कि ज़िन्दा ही मुझे मार डाला और मेरी
हिनी वाँह तोड़ दी।

जिस मेल ट्रेन से वन्दी राकेश पुलिस की हिरासत में देहली जा
ा था। उसी ट्रेन पर थे सवार वलराज। वे वड़े-वड़े आँसुओं से रो रहे
। देहली आ पुलिस मुलज़िम को कोतवाली ले गई और वलराज ने आ
: रखा करौलवाग़ की कोठी में।

कोतवाली से राकेश का चालान जेल भेज दिया गया। जव कोत-
ली में दाल नहीं गली तो वलराज ने अदालत की खाक छानी; लेकिन
मानत नहीं हुई, नहीं हुई। वे विवश वम्वई लौट आये काम-काज देखने
लिए। क्योंकि मुकद्दमा शुरू होने में अभी देर थी।

राकेश का मुकद्दमा आरम्भ हो गया था। केस सेशन सुपुर्द हुआ
ा। वलराज दो दिन पहले ही देहली आ गये थे। उन्होंने चार वड़े-वड़े
कील किये। डॉक्टर वेचारा एक ओर कठघरे में खड़ा था, दूसरी ओर
था वन्दी राकेश। सुवूत पक्ष की ओर से पुलिस थी। जूरी भी मुकद्दमा
सुन रहे थे। मुकद्दमा सुनने की शौकीन जनता वेञ्चों पर वैठी थी। हाल
खचा-खच भरा था। सेशन जज न्याय-मूर्ति वना
सुन रहा था। उसके चेहरे पर गम्भीरता थी। ज

बलराज के चेहरे पर झाँक रहे थे हैरानी के भाव। पुलिस-पक्ष की ओर से सुबूत में लीला पेश हुई। उसके बाद रेवती के भी बयान हुए। डॉक्टर से जब यह पूछा गया कि तुम पर यह इल्ज़ाम है तुम इसे क़बूल करते हो तो उसने सच्चाई का आइना सामने रख दिया। जज प्रभावित हुआ उसके बयानों से। जो जिस पद पर आसीन होता है तो उसमें वैसी ही क्षमता, वैसा ही प्रभुत्व और वैसी ही शक्ति, पता नहीं कहाँ से आ जाती है। इसीलिए दुनिया पद की क़द्र करती है। अपराधी सामने आया नहीं कि न्यायकर्ता तथ्य पर पहुँच जाता है। गुनाहों-भरा चेहरा अपने पर हवाइयाँ उड़ाता है, बगलें झाँकता है। वह सहारा ढूंढ़ता है; क्योंकि कमज़ोर होता है और जो सच्चा दर्पण होता है वह सामने-ही-सामने बना रहता है। उसे न टूटने का डर होता है न फूटने का। वह अटूट होता है, सत्य उसका प्रतीक बन जाता है।

इसी तरह जब राकेश के बयान हुए और उसने कहा कि यह अभियोग सरासर झूठा है, मैं निर्दोष हूँ। मैंने डॉक्टर को रिश्वत नहीं दी तो न्याय-मूर्ति तनिक मुस्कराई और पुनः गम्भीर हो गई। राकेश के बयान जारी रहे। वह कहता रहा कि यह सब षड्यन्त्र मेरी दोनों भाभियों का है। डॉक्टर क़सूरवार है। इसने घूस ली और मेरे भाई के ज़हर का इन्जेक्शन लगाने जा रहा था।

हाल में ऐसी खामोशी छाई थी कि यदि सुई भी गिरे तो फ़र्श पर अपनी ध्वनि करे। किसी में कौतूहल था, किसी में जिज्ञासु-भाव प्रबल और प्रबलतम हो रहे थे। कोई अपनी हार पर पछता रहा था और कोई जीत पर हंस रहा था। लेकिन वह हँसी भी थी नीरव। केवल राकेश बोल रहा था और सब ओर सन्नाटा था।

दूसरे दिन जिरह की तारीख थी। बलराज के वकील सरकारी वकील को अपने तर्कों से हरा नहीं पाये। डॉक्टर की तरफ से भी दो वकील खड़े हुए थे। वे भी सच्चाई के समर्थन में थे। उनके सच्चे तर्कों ने झूठे तर्कों से संघर्ष किया। बलराज के वकील उनसे हार गये। वे

लीला और रेवती को भी अपने बयानों से मोड़ नहीं पाये। फिर हुई तीसरे दिन बहस। उसके बाद सफ़ाई के गवाह गुज़रे। पांचवा दिन निर्णय का था। जूरियों ने अपना-अपना मत व्यक्त कर दिया था और जजमेण्ट लिखा जा रहा था, वह जैसे ही टाइप होकर आया, हाल में जैसे मौत का दृश्य छा गया।

फ़ैसला इस तरह सुनाया गया कि मुलज़िम राकेश पर एक साथ दो जुर्म हैं। पहला रिश्वत देना, दूसरा पुलिस की हिरासत से जबरदस्ती भाग निकलना। वह ही गुनहगार है, वही जिम्मेदार है बलराज को मरवाने के षड्यन्त्र का। अतः अदालत उसे पाँच साल का कठोर कारावास देती है।

फ़ैसला सुनते ही बलराज रोने लगे। राकेश भी खड़ा न रह सका, चक्कर खाकर गिर पड़ा और जज आगे कहने लगा कि डॉक्टर यद्यपि पूरा-पूरा गुनहगार नहीं है; लेकिन फिर भी वह बहुत बड़ा अपराध करने जा रहा था किसी की जान लेने का। अदालत उसे माफ़ नहीं कर सकती। हाँ! कड़ी सजा न देकर साधारण दण्ड दिया जाता है। उसके चिकित्सा-सम्बन्धी सभी अधिकार अवरुद्ध किये जाते हैं, आगामी पाँच वर्षों तक।

डॉक्टर के भी होश फ़ाख़्ता हो गये, उसके नीचे का फ़र्श हिलने लगा। उसका सिर घूमने लगा और तभी उठ गया जज अपनी कुर्सी से। हॉल में चख-चख मच गई और शोर-गुल का बाजार गर्म हो गया।

मारे शोक के बलराज कई दिन तक कोठी से बाहर नहीं निकले। उसके बाद उन्हें चेत आया। उन्होंने दौड़-धूपकर राकेश की ज़मानत करवाई। ज़मानत मंजूर हुई उच्च न्यायालय से। लेकिन दुर्भाग्य बलराज अपील हार गये और राकेश पुनः जेल का बन्दी बन गया। इसके बाद जब बलराज ने सुप्रीम-कोर्ट की शरण लेनी चाही तो लोगों ने उन्हें समझाया, वकीलों ने अपनी राय दी कि इस मुकद्दमे में छूटने की किंचित् मात्र भी गुंजाइश नहीं। सुप्रीम-कोर्ट जाने से लाभ नहीं

शीला का भी मुकद्दमा सेशन कोर्ट में शुरू हुआ। उसकी तरफ से पैरवी उसके दफ़्तर की अध्यक्षा कर रही थी। वह उस पर बहुत दयालु थीं। उसने एक पुराना एडवोकेट उस मुकद्दमे पर नियुक्त किया था। जिसका शुल्क उसने माँगा था एक हजार और अध्यक्षा महोदया ने उसको पेशगी पाँच-सौ रुपया चुका दिया था। पहले दिन सुबूत की साक्षियाँ हुईं, फिर शीला से भी जवाब-तलब हुआ तो उसने जीवट के साथ अपने वही बयान दिये जो कोतवाली पुलिस में दिये थे।

बलराज उन दिनों देहली में ही थे। उन्हें भी रोज़ अदालत जाना पड़ता। बहस, जिरह और सफ़ाई सभी-कुछ होने के बाद अन्तिम दिन निर्णय का आया। न्यायाधीश ने लीला को क्षमा कर दिया, उसे साफ़-साफ़ छोड़ दिया। वह उदार प्रकृति का था। सच्चाई का ऐसा क़ायल कि क़ानून से पृथक् उसका अलग सिद्धान्त था कि अपराधी अगर पहला ही अपराध करता है, फिर वह उसे स्वीकार कर लेता है और माफ़ी माँगता है कि अब भविष्य में ऐसा नहीं करेगा, तो उसे एक मौक़ा ज़रूर देना चाहिये।

शीला जब हॉल से बाहर आई तो बलराज उसे लॉन में मिले। वे मुँह घुमाकर चले जाना चाहते थे, लेकिन तब तक शीला सामने आ गई। वह व्यंग-पूर्वक मुस्कराती हुई बोली—"नमस्ते।"

बलराज ने उस नमस्ते का जवाब नहीं दिया। उन्हें जैसे किसी ने बरछी-सी मार दी। वे रास्ते-भर यही सोचते आये कि एक अदालत राकेश को पाँच साल की सजा देती है और दूसरी शीला को साफ़ छोड़ देती है। यह अपना-अपना भाग्य है या और कुछ। शायद जब अशुभ-ग्रह राशि पर आते हैं तभी विधाता वाम हो जाता है। ये मेरी गर्दिश के दिन हैं और शायद राकेश के भाग्य का चक्र पकड़ लिया है गति ने। यह सब ग्रहों का फेर ही है। पैसा कुछ भी काम नहीं आता है, जब आदमी समय के चक्कर में फँस जाता है।

बलराज बम्बई ज़रूर आ गये थे; लेकिन उनका मन न तो कोठी में लगता और नहीं व्यापार-धन्धे में ही। सोते-जागते, उठते-बैठते उन्हें राकेश की याद आया करती। लगातार कई-कई रातें कोरी निकल जातीं। वे सो नहीं पाते। तब उन्हें स्लीपिंग टेबलेट लेनी पड़ती या फिर नींद लाने की कोई अन्य दवा। वे सो जाते बस इतनी ही देर निश्चिन्त रहते। इस तरह धीरे-धीरे वे दुख को भुलाने के लिए मदिरा का पान करने लगे और उनका ग़म ग़लत होने लगा।

प्रभा को गुप्त सूत्रों से यह पता चल चुका था कि बलराज नित्य जब रात को घूमकर कोठी आते तो वे नशे में होते हैं और कभी कभी उनका नशा बेक़ाबू हो जाता है। अतः कहीं कुछ अनिष्ट न हो जाय। वह रात को जाती और दूर खड़ी देखती रहती कि बलराज सीधे ठीक घर पहुँच गये या नहीं। वह राकेश की धर्म-पत्नी थी और उसकी विधवा हो चुकी थी। अतः बलराज का उत्तरदायित्व वह अपने सिर पर समझती थी।

नहीं खुलेगा, न तुम अन्दर से वाहर निकलोगे। मैं कल दिन में खबर लूंगी
उसके पहले तुम्हें वाहर आने की जरूरत नहीं। फिर वह चलते-चल
कुछ कह गई चौकीदार के कान में, जिससे पहले तो वह शरमाया, फि
मुस्कराया। प्रभा चली गई, उसने वलराज को एक कौंच पर लिटा दिया
तदुपरांत स्वयं सो गया नीचे विछे कारपेट पर।

जब रात थोड़ी-सी शेष रह गई तो वलराज की आँखें खुलीं। उन
नशा उतर चुका था। उनका हलक प्यास से बुरी तरह सूख रहा था
उनके सिर में दर्द हो रहा था और उनके पेट में हो रही थी हल्की-हल्
पीड़ा। यह सब नशे का प्रभाव था। उनकी दृष्टि पहले छत पर गई
यह छत कैसी? इस पर तो तैल-चित्र वने हैं? ये दीवारें वार्निश
हैं; इन पर भी चित्र शोभा पा रहे हैं। यह नई जगह कैसी? क्या य
मेरी कोठी नहीं। अरे! कारपेट पर यह कौन सो रहा है? यह
नौकर नहीं। वे घवड़ाए उठकर वैठे और सचमुच उन्होंने प्रभा
कोठी का यह कमरा कभी नहीं देखा था।

जब वलराज की समझ में कुछ भी नहीं आया तो वे सोते हु
चौकीदार को जगाते हुए बोले—"ऐ! तुम कौन हो? यहाँ कैसे ले
हो? लाओ पानी दो मुझे प्यास लगी है। मैंने ये सब दरवाज़े खोले
कोई खुलते ही नहीं। क्या वाहर से वन्द हैं? ऐ! उठो। मुझे पा
दो।"

चौकीदार आँखें तिल-मिलाता हुआ उठा। वह विनयी-स्वर में अति
नम्र होकर वोला—"हुज़ूर आपका तावेदार हूँ, कमरा वाहर से वन्द है
हम और आप कोई निकल नहीं सकते। पानी अभी लाया सरकार
मुझसे यह मत पूछो कि मैं कौन हूँ और आप कहाँ हैं।"

पीतल के जल-पात्र में से गिलास भरकर चौकीदार ले आया। फि
वह वोला। पेशाव और टट्टी जाने की हाजत हो तो हुज़ूर सामने
यूरिनल (पेशाव-घर) में चले जायँ। उसमें वाथ-रूम भी है।

वलराज जव पानी पी चुके तो उन्हें वड़ी ज़ोर का गुस्सा आया

वे चिल्लाकर बोले—"अरे नालायक़ पहले यह बता कि मैं हूं कहाँ ? मुझे यहाँ कौन लाया ? यह कमरा किसका है ? तू किसका नौकर है ?"

"हुजूर सिर्फ़ आपका तावेदार हूँ। मैं किसी का नौकर नहीं। मेरे मालिक का नाम बलराज है।"

चौकीदार की यह बात सुन बलराज को और भी गुस्सा आया। वे बोले—"तू मेरा नौकर है। मुझे उल्लू बनाता है क्या ? किवाड़ें खोल मैं बाहर जाऊँगा।"

चौकीदार इसपर मन-ही-मन मुस्कराया। किन्तु प्रगट में वह दीन वाणी में बोला—"मुझसे तो किवाड़ें नहीं खुलते, सरकार आप आज-माइश कर लीजिये।"

"मैं कर तो चुका बेवकूफ़, अगर किवाड़ें खुलते तो तुझे जगाता ही कौन ? मैं तो गोल्डन-बार गया था, वहाँ से मुझे यहाँ कौन लाया ? यह कौनसी जगह है किसका मकान है, किवाड़ें क्यों बन्द हैं ? तू बोलेगा नहीं तो मैं तेरा गला दबा दूंगा।"

बलराज अभी इतना ही कह पाये थे कि नौकर ने उनके आगे गर-दन झुका दी। फिर वह दण्ड सहने के लिए प्रस्तुत-सा होता हुआ बोला—"गला न दबाइए सरकार, मेरा सिर क़लम कर लीजिये, लेकिन मैं सिर्फ़ इतना ही जानता हूँ कि मैं आपका नौकर हूँ और इस जगह लाकर हम दोनों क़ैद कर लिए गये हैं।"

सवेरा हो गया। उस कमरे के रोशनदानों से सूरज की रोशनी अन्दर आने लगी। अब बलराज सिर पर हाथ रखकर बैठ गये। दिन का पहला पहर बीता, दूसरा भी लग गया। घड़ी ने ठीक दस बजाये।

ठीक तभी कमरे का दरवाज़ा खुला और नीले नाईलोन की साड़ी में लिपटी एक युवती ने उसमें प्रवेश किया। आते ही वह बोली, बलराज की ओर उन्मुख हो—"तो आप मेरे घर कैसे आगये ? आप यहाँ कैसे ? खैर कोई बात नहीं, मैं मेहमान का स्वागत करूँगी।"

बलराज ने देखा कि वह प्रभा थी। उनकी भौहों में बल पड़ गये।

वह उठकर जैसे ही जाने लगे वैसे ही नौकर ने बाहर जा कुण्डी बन्द करदी। तब प्रभा बोली—"वसन्ती ने आपको धोखा दिया। मैं प्रभा निकली; लेकिन मेरी तीन सहेलियाँ मौजूद हैं इस समय कोठी में। मैं जाती हूँ वे आकर आपका स्वागत करेंगी।"

यह कहने के बाद प्रभा ने नौकर को आवाज़ दी, किवाड़ें खुले। वह बाहर निकल गई। फिर थोड़ी देर बाद कुण्डी खुली, एक युवती मुँह पर घूंघट डाले थी। वह दोनों हाथों में चाय की ट्रे पकड़े थी। उसने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। ट्रे मेज़ पर रख दी और फिर उसने घूंघट खोल दिया। यह क्या यह तो रेवती है? बलराज बुरी तरह से चौंक गए। यह यहाँ कहाँ से आ गई? वे उठकर भागे; लेकिन दरवाज़े सभी बन्द मिले, तो पुनः आ कौंच पर बैठ गये।

तब रेवती बोली—"चाय पीजिये, मैं डालती हूँ।" रेवती ने चाय कप में डाली। बलराज धीरे-धीरे सिप करने लगे। वे सोच रहे थे यह चालाकी कि जैसे ही यह कमरे के बाहर निकलेगी मैं भी उसके पीछे जल्दी से खिसक जाऊँगा। इसीलिये उससे कुछ भी नहीं पूछा कि मुझे यहाँ क्यों और किस तरह लाया गया? किन्तु रेवती जिस दरवाज़े से आई थी उससे न जा जल्दी से दूसरे दरवाजे से निकल गई। बलराज खिसयाये के खिसयाये ही रह गये। वे कमरे में अकेले कमर पर दोनों हाथ बाँधे इधर-उधर घूम रहे थे। उतने में ही तीसरा दरवाज़ा खुला, इस कमरे में सब मिलाकर सात दरवाज़े थे।

दरवाज़ा खुला और खुलते ही फ़ौरन बन्द होगया। बलराज ने देखा कि रेशमी तन्जेब की हरी साड़ी पहने, मुंह पर लम्बा सा घूंघट डाले एक स्त्री मूर्ति उनकी ओर आ रही है। उसकी साड़ी में सुनहला गोटा बार्डर में टँक रहा था। रुपहले और सुनहले फूल, साड़ी भर में जड़े थे। उसके पैरों में पाजेब थीं। उसके हाथों में नीलम की पहुँचियाँ। वह बाँयी अनामिका में जो अगूंठी पहने थी, उसमें हीरा चम-चम कर रहा था। वह मराल गति से धीरे-धीरे आगे बढ़ी। उसके हाथ में सोने की

तश्तरी थी, जिसमें गंगा-जमुनी का काम हो रहा था। उस तश्तरी में पान के बीड़े थे। उनमें चाँदी के वर्क लगे थे। उसी में रखी थी छोटी इलायची, सुपारी के दोहरे, लोंग और सोंफ आदि। उसने तश्तरी लाकर बलराज के सामने प्रस्तुत कर दी।

बलराज चिढ़े हुए तो थे ही, उन्होंने उधर से उपेक्षा पूर्वक मुँह घुमा लिया और मन-ही-मन सोचने लगे कि यह सुन्दरी है कौन ? लगता है जैसे महलों की रानी हो। लेकिन तब तक तश्तरी बलराज के आगे-आगे घूमने लगी। वे जिधर मुँह घुमाते, तश्तरी उधर ही घूमती। आखिर हैरान हो बलराज ने उठा लिए पान के दो बीड़े। फिर वे मुँह खोल गिलौरी दाब कौंच पर आकर बैठ गए। तभी घूँघट उठा, उस सुन्दरी का बलराज देखते ही रह गए वह लीला थी।

"तुम ! तुम क्यों आई हो यहाँ ? चली जाओ। यह सब क्या है। रेवती भी यहाँ, तुमभी यहाँ। पूरा खानदान-का-खानदान आ गया।

अभी बलराज इतना ही कह पाए थे कि लीला तनिक मुस्कराकर बोल उठी, अब तो कुछ शिकायत नहीं मुझसे। तबियत तो नाशाद नहीं। सुना है तुम्हारा भाई जेल में चक्की पीस रहा है। क्या यह सही है ? और वह बसन्ती कौन है, जिससे तुम ब्याह कर रहे थे ? खूब चकमा दिया उसने।"

बलराज कुछ भी नहीं बोले। वे जल-भुँज गये। तब लीला जाने का आयोजन कर पुनः मुस्कराई और धीरे से बोली—"मैं जानती हूँ कि मेरी बातों का तुम्हारे पास जबाब नहीं। अच्छा, जाती हूँ, प्रभा की तीसरी सहेली तुम्हारा स्वागत करने आ रही है। कहीं उस पर भी डोरे न डाल देना। क्योंकि आजकल तुम्हें रोमांस खूब सूझा है।"

यह कह लीला जिस दरवाज़े से आई थी, उसकी ओर न जा, एक अन्य दरवाज़े से बाहर हो गई। शायद यह उसकी पहले की जानकारी होगी कि इधर से आना है और उधर से जाना है।

बलराज मन-ही-मन खीझ उठे कि आखिर यह मामला क्या है ? [illegible]

वाज़ा खुलता है, आने वाला दूसरे से चला जाता है। रेवती आ ग
ला भी जले पर नमक छिड़क गई। तीसरी सहेली कौन हो सकती है
ृ वह क्या लेकर आती है? मैं उसका हाथ पकड़ लूँगा और उसी
थ कमरे से वाहर हो जाऊँगा। अभी वे ऐसा सोच ही रहे थे कि र
कि पीछे का दरवाज़ा खुला।

वलराज ने देखा कि एक केसरिया जार्जेट की साड़ी में लिपटी तीस
हेला कमरे में प्रवेश कर रही है। किवाड़ें उसके आते ही वन्द हो गई
तके हाथ में लाल रंग के मखमल में लिपटी एक पोटली है। उसके म
 भी घूंघट है। वे चुप-चाप कौंच पर वैठ गये, और प्रतीक्षा करने ल
 देखें ये क्या लाई है?

स्त्री-मूर्ति वलराज के निकट आ गई, और वह भी उनके वरावर
ंच पर वैठ गई। जव वे सरकने लगे तो वह भी सरकने लगी। वे उठक
ड़े हुए तो वह भी उठकर खड़ी हो गई, और इस तरह वे कमरे में भार
ागे घूमने लगे। वह भी उनके साथ लगी रही, और जव हार मान
क कुर्सी पर वैठे तो उसने पोटली खोली। उस पोटली में एक वहुत
वसूरत आईना था, जो सोने-चाँदी के फ्रेम से मढ़ा था। जिस प
ाव का गुलावी फूल वना था और हरी पत्तियाँ। उन दोनों के ऊप
द्र-धनुषी रंगों में लिखा था ओइम् (ॐ)।

शीशा वलराज के सामने था। वे उसमें अपना मुँह देखने लगे
ी खुल गया घूंघट आगन्तुका का। वलराज चौंके ही नहीं, जैसे सपन
ने लगे। ऐं! शीला यह भी आ गई यहाँ। वे ज़ोर से चिल्लाए—
े सव क्या मजाक है? तुम लोगों ने मुझे उल्लू वना रखा
ा?"

"उल्लू नहीं सरकार, आईना लाई हूँ। तनिक इसमें अपनी सूरत देख
जिये।"

"क्यों क्या हो गया है मुझे? मैंने कोई हत्या की है। मैंने कुछ भी
ीं किया। मैं पापी नहीं। मैं जानता हूँ कि यह सव शरारत प्रभा की

है। चली जाओ शीला, अगर पिस्तौल होता तो मैं तुम्हें अभी शूट कर देता।"

"ईश्वर गंजे को नाखून ही नहीं देता। यह क्यों भूल जाते हो कि तुम हमारी गिरफ़्त में हो ? देख लिया चेहरा। ले जाऊँ शीशा। बेचारा आइना भी शरमा गया होगा, तुम्हें देखकर। तुम आदमी नहीं, आदमी के नाम पर भी कुछ नहीं। तुम वह इन्सान हो जो पराई आँखों से देखते, दूसरे कानों से सुनते हो। जाओ, मैं तो धिक्कारने आई थी। धिक्कार लिया, अब जाती हूँ।"

यह कह शीला तेज़ी के साथ आगे बढ़ी। बलराज ने उसकी साड़ी का पल्लू पकड़ लिया। लेकिन खूब, वह पल्लू उनके हाथ में ही फटकर रह गया। दरवाज़ा फटाक से बन्द हो गया। वे अन्दर रह गए और शीला बाहर निकल गई।

विवश बलराज किवाड़ों पर हाथ पीटने लगे। वे आवाज़ भी देते। जोर-जोर से पुकारते—"खोलो, खोलते क्यों नहीं ? तुम लोगों ने मुझे बन्द क्यों कर रखा है ? खोलो, किवाड़ें खोलो; वरना मैं खूब चिल्लाऊँगा। हल्ला मचाऊँगा।"

लेकिन किवाड़ नहीं खुले, बलराज चीखते चिल्लाते रहे। हाँ, बाहर कई नारियों की खिल-खिल आवाज़ अवश्य सुनाई दी। उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

२५

जब राकेश को सज़ा हो गई। शीला भी अपने मुकद्दमे से मुक्त हो गई तो प्रभा ने सोची एक युक्ति, कि रेवती, लीला और शीला, तीनों को [illegible] लाया जाय। यही वह मौक़ा है जबकि बलराज के हाथ कमज़ोर हैं।

जहाँ तक बने परमार्थ करना चाहिये। दूसरे की सेवा करना, मनुष्य का यही धर्म है। यदि मेरे द्वारा उन तीनों का भला हो सकता है तो क्यों न करूँ! नेकी करने के लिए पूछा नहीं जाता है। क़दम उठ जाता है।

इस तरह प्रभा देहली पहुँची। वह रेवती और लीला से मिली। शीला का भी उसने पता किया, वह बाबर रोड पर रहती थी। उसने तीनों को समझाया और अपनी योजना बतलाई कि वह उन सब को अपने साथ बम्बई ले जायगी। वहाँ बलराज को विवश कर उनसे सबको अंगीकार करवायगी। वह अपना कर्तव्य पूरा करना चाहती है। तीनों सहमत हो गई। तीनों ही उसके साथ बम्बई चल दीं। प्रभा फिर बम्बई आ अवसर की खोज में रहने लगी कि कौन-सा मौक़ा मिले? और मैं बलराज को आड़े हाथों लूँ। कैसे वहाँ तक जाने का सिलसिला बनाऊँ? मैं स्वयं जाऊँ या लीला और रेवती आदि को भेजूँ।

प्रभा इस तरह योजना पर योजना बनाती। लेकिन कोई भी कहानी अपने संक्षेप में पूरी नहीं उतर पाती। कहीं अर्द्ध-विराम लगकर रह जाता, तो कहीं प्रश्न-सूचक चिन्ह। पूर्ण विराम आने ही नहीं पाता और कहानी का ढाँचा बदल जाता; लेकिन जब उसे यह पता चला कि बलराज पीने लगे हैं तो वह नित्य रात को उनकी देखभाल के लिए मैरिन ड्राइव जाने लगी। फिर उन्हें ले आई कमरे में तो उसकी योजना अपने आप ही बन गई। उसने बलराज की तीनों पत्नियों को उनके सम्मुख पेशकर दिया, और नौकरों को यह इजाज़त दे दी कि जिस दरवाजे से कोई अन्दर जायगा। ठीक उसी के सामने वाला दरवाज़ा खोल दिया जायगा। इसीलिए बलराज बाहर नहीं निकल पाये। उनकी पत्नियाँ आई और चली गई।

थोड़ी देर बाद कमरे के दो दरवाजे खुल गये और खुले के खुले ही रहे। उन पर खड़े हो गये दो नौकर, दोनों के हाथों में भरी हुई पिस्तौलें थीं। बलराज की जान सूख गई। वे हक्का-बक्का हो कौंच पर लेट गये। तभी प्रभा, लीला, रेवती और शीला चारों आकर

'। उसकी भी तलाक़ वापस लेता हूँ। वह भी मेरे सिर-आँखों पर रहेगी
ौर तीसरी शीला जो मेरी सबसे पहली मँगेतर थी, मैं उसके साथ भी
दिक-रूप से व्याह करूँगा, उसे अँगीकार करूँगा। उसके अलावा
ाकेश का मैं करता हूँ आज से बहिष्कार। वह न मेरे साथ रहेगा
ौर न मैं उसे कोई पैसा दूंगा।"

जब बलराज यह लिख चुके तब शीला ने उसके मत्थे से पिस्तौल
ी नली हटा ली और प्रभा ने बजाई ताली, दोनों नौकरों की भी पिस्तौलें
ुक गईं। तभी काले चोगे पहने दो वकीलों ने कमरे में प्रवेश किया।
िखी लिखा पढ़ी हुई, वकीलों ने तस्दीक़ की। अनुबन्ध पत्र प्रभा ने
पने अधिकार में किया। वकील चले गये। लीला, रेवती और शीला
ीनों कमरे से बाहर हो गईं। प्रभा भी चल दी मुँह-फेरकर। नौकर
ट गये और बन्द हो गये कमरे के दरवाज़े। वे फिर नहीं खुले, नहीं
ुले।

बलराज बुझे से कौंच पर पड़े रहे। रात को उनके सामने जब
ोजन की थाली आई तो वे नौकर से बोले—"प्रभा से जाकर कह दो
क अगर वह दे सकती है तो मुझे थोड़ा-सा ज़हर भेज दे। मुझे पानी
ी प्यास नहीं, अन्न की भूख नहीं। बस मुझे चाह रह गई तो विष की।
े जाओ, मैं इस थाली की ओर देखना भी नहीं चाहता। इसमें किसी
ा खून है, किसी के अरमानों की बोटियाँ। ले जाओ दुष्टो, मेरे सामने
ो दूर हो जाओ।"

नौकर थाली लेकर चले गये और प्रभा पर उसकी तनिक भी प्रति-
क्रिया नहीं हुई। रात को दूसरे पहर में उसने दूध भेजा, बलराज ने
से भी वापिस कर दिया।

सवेरे प्रभा स्वयं चाय की ट्रे लेकर उनके सामने उपस्थित हुई।
ह अत्यन्त साधारण ढंग से बोली—"आप तो बड़े हैं, आपकी बुद्धि
रिपक्व हो चली है। बड़े अफ़सोस की बात है, फिर भी आप गुस्सा करते
। लीजिये चाय पीजिये। शायद आपको नहीं मालूम कि कल रात

को आपने भोजन नहीं किया। आपकी तीनों पत्नियाँ पानी पीकर लेट रहीं। मैंने भी कल निराहार ही रखा। लीजिये, चाय पीजिये, आपको राकेश की क़सम।"

इस पर बलराज प्रभा का मुँह देखने लगे। उनकी आँखें भर आईं। वे बोले कुछ नहीं, कप होठों से लगा लिया और तभी उसे चाय में आने लगी उन्हें एक आकृति नज़र, जिसके हाथों में हथकड़ियाँ थीं और पुलिस के सिपाही जिसे लिये जा रहे थे। "राकेश" ज़ोर से उनके मुँह से निकला कप और प्लेट दोनों छूट पड़े। वे उठ कर पागल से भागे, चाय कारपेट पर गिर गई। किन्तु दरवाजे बन्द थे। नज़र-बन्द बाहर नहीं जा सका।

प्रभा ने जब यह परिस्थिति देखी तो वह चुप-चाप उठ कर चल दी। उसके छूते ही किवाड़ें खुल गईं; वह बाहर निकल गई और विक्षिप्त की नाईं बलराज उस कमरे की दीवार पर सिर पटकने लगे और जब उसका बस नहीं चला तो बच्चों की तरह रोने लगे। इस तरह सवेरे से साँझ हो गई और फिर उस कमरे में कोई नहीं आया।

२६

तीन दिन हो गए, बलराज उस कमरे की क़ैद से मुक्त नहीं हुए। चौथे दिन जब उनसे नहीं रहा गया तो वे प्रभा के सम्मुख गिड़-गिड़ाकर बोले—"मेरा जी ऊबता है इस कमरे में। मुझसे अब यहाँ नहीं रहा जाता मुझे जाने दो प्रभा, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ।

"छी-छी, बड़े होकर आप ऐसा कहते हैं। हाथ मु
कोई तक़लीफ़ है, स्वयं अपने आप ही क्रोध करते हैं।
पीते, कभी नाश्ता वापस कर देते हैं, कभी रूठ जाते हैं

क़ैद नहीं आपका घर है। मैं सेविका हूँ।"

यह कह प्रभा ने बलराज को अपनी ओर मोड़ा। तब वे संयत हो आए थे, उन्हें कुछ-कुछ शान्ति मिली थी।

कमरा वातानुकूलित था, वह महलों की सज्जा को मात देता था। प्रभा मौन थी। बलराज के गिर रहे थे, टप-टप आँसू। वे अवरुद्ध कण्ठ से प्रभा की ओर दयनीय दृष्टि से देख, धीरे-धीरे बोले—"मुझे मेरी कोठी जाने दो प्रभा, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? तुम मेरे पीछे हाथ धोकर क्यों पड़ी हो?" "एक छोटी-सी मिन्नत है, एक छोटी-सी आरज़ू। बस आप एक काम और कर दीजिये फिर यहाँ से चले जाइये।"

प्रभा के मुंह से यह सुनते ही बलराज तत्क्षण ही बोल उठे—"क्या।"

"यही कि आप अपनी सारी वसीयत अपनी तीनों पत्नियों के नाम कर दीजिये और उसके साथ यह भी लिख दीजिये कि राकेश का मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं, वह मेरा कोई नहीं। मैं उसका पूरा-पूरा बहिष्कार करता हूँ।"

यह कह प्रभा बलराज के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी और बलराज को जैसे आगया गश। वे बैठे ही-बैठे हिलने लगे। तभी ताली बजी प्रभा की खूब ज़ोर से। दोनों दरवाज़े खुल गए, उन पर वे ही नौकर आ गये, जिनके हाथों में सीधी तनी पिस्तौलें थीं। अब प्रभा बोली, सख़्त होकर—"होश में आइये मिस्टर, अपने को सँभालिये। क्या कोरामीन का एक डोज़ दूं या दूसरा इन्तज़ाम करूँ। अरे! लीला, रेवती, शीला कहाँ हो। चलो काग़ज़ लाओ, पैड लाओ, पेन श्रीमान् जी को दो। आज दूसरा एग्रीमेन्ट होगा।"

लीला पैड ले आई, रेवती काग़ज़ और शीला पेन खोल बलराज के हाथ में देती हुई बोली—लीजिये, लिखिये, यह देहली नहीं बम्बई है। यहाँ अदना भी अफ़लातून बन जाता है।

बलराज की समझ में कुछ भी नहीं आया। वे इस रिहर्सल से सहम

गये। तभी प्रभा कठोर हो गई, पत्थर की तरह। वह तेज़ गले से बोली—"लिखिये कि मैं अपनी सारी वसीयत अपनी तीनों पत्नियों के नाम करता हूँ। मैं बलराज, मेरी पहली पत्नी रेवती, दूसरी लीला और तीसरी शीला। मुझसे राकेश का कोई सम्बन्ध नहीं, वह मेरा कोई नहीं। मैं उसका पूरा-पूरा बहिष्कार करता हूँ।"

बलराज चुपचाप सिर झुकाये लिखते चले गये। फिर वकील आये काले चोगेधारी। तस्दीक़ हुई और जब सब लोग चले गये तो प्रभा बोली—"अब आप जा सकते हैं जहाँ आपका मन हो। कमरे के सभी दरवाज़े खुले हैं।"

बलराज भागे और ऐसे भागे कि दादर से लेकर दौड़ते-दौड़ते मैरिन ड्राइव में ही जाकर साँस ली। वे हाँफते-हाँफते जीने की सीढ़ियाँ चढ़ किसी तरह अपने कमरे में पहुँचे। नौकर लोग अवाक् थे। वे उनसे पूछना चाहते थे कि आप इतने दिन कहाँ रहे; लेकिन तब तक कमरे के किवाड़ अन्दर से बन्द हो गये और कोई मजबूर रोने लगा अन्दर सिसक-सिसक कर। उसकी सिसकियाँ भृत्यों से कह रही थीं कि मालिक ग़मग़ीन है, वह ग़म में मुब्तिला है। जब ग़म के घूंट पिये जाते हैं या ग़म ही पोषक-तत्व बनता है, तब इन्सान हो जाता है बावला और उसे पागल की संज्ञा दी जाने लगती है।

कमरे के अन्दर बलराज रो रहे थे। बाहर नौकर अपनी हार्दिक सहानुभूति से उनके आँसू पोंछने का उपक्रम कर रहे थे। वे सोच रहे थे कि बड़े आदमियों की ज़िन्दगी ऐसी ही होती है। वे एक आँख से हँसते हैं तो दूसरी से रोते हैं। जिसके पास पैसा होता है, भैया उसका सुख-चैन सभी छिन जाता है और जब चैन नहीं तो जीने का मज़ा नहीं। जब सुख नहीं तो ज़िन्दगी का स्वाद नहीं, जब शान्ति नहीं तो आंखों में नींद भला कैसे आ सकती है?

२७

बलराज को इतने से ही मुक्ति नहीं मिल गई। उन्हें जीवन-संघर्ष से जूझना पड़ा। लगभग एक सप्ताह वे एकांकी रहे, फिर उनके एकान्त में आ गई प्रभा। वह उन्हें अपने साथ अदालत ले गई। लीला और रेवती को उनके गले बाँधा। तलाक़ वापस ली बलराज ने। उनकी दोनों पत्नियाँ मैरिन ड्राइव की कोठी में आ गईं।

···और ऐसे ही उसी सप्ताह शीला के साथ बलराज का व्याह हुआ। वह भी रहने लगी वहीं। अब बलराज को ऐसा लगता कि यह कोठी नहीं एक दुनिया है। इस दुनिया में चौरस्ता नहीं, तीन मोड़ हैं और तीन कितने अशुभ हैं, कितने निंद्य। चार मिलते हैं तो चौपट और तीन कहलाते हैं तिकड़म। लगता है मुझे बम्बई छोड़ देनी ही पड़ेगी।

प्रभा से बलराज की तीनों पत्नियों ने बहुत आग्रह किया कि वह भी आकर उनके साथ रहे; किन्तु प्रभा किसी का औदार्य नहीं चाहती थी। उसने सेवा करना सीखा था, सेवा लेना नहीं, कहीं पर भी स्वाभिमान को धक्का न लगे, कहीं कोई उँगली न उठा दे, कहीं ज़माना टोक न दे। उसे इन सब बातों का अत्यधिक ध्यान रहता। वह मर्यादा को नहीं भूलती, समय की चाल को भी पहचानती और दूरदर्शिता तो उसके अंग-अंग में भरी थी। वह दादर में ही रही। हाँ, कभी-कभी उन तीनों के पास अवश्य हो आती।

समय की धार वह रही थी। सेकिण्ड मिनट कहलाते और मिनट--घण्टे। घण्टे ही पहर बन जाते। उसके बाद दिन और रात, फिर सप्ताह का समय गुज़रता, पन्द्रह दिन का पखवारा भी आता और चला जाता। महीना पैर करके चल देता और लोग कहते कि यह साल बीत गया। इस तरह एक साल व्यतीत हो गया, दूसरा भी आरम्भ हुआ। रेवती तथा लीला ने पहले तो कॉलेज से छुट्टी ली थी। फिर जब उनकी तलाक़

रद्द हो गई तो दोनों ने देहली जाकर त्याग-पत्र दे दिया। [illegible] बँगला छोड़ दिया गया और लीला की प्लाइ-माउथ कार [illegible] बम्बई।

प्रभा महीने में दो-चार दिन के लिए देहली अवश्य जाती। अधि-कांश वह बम्बई में ही रहती और अकेली। दिन बीत रहे थे, वह प्रतीक्षा कर रही थी किसी की। तीन साल बीत गए। चौथा लगते ही वह सोचने लगी कि अब राकेश को छूटने में अधिक दिन नहीं। [illegible] ही साल की तो हुई थी।

…और जब चौथा वर्ष भी सिर पर पाँव रखकर चला गया तो [illegible] दिन जेल में राकेश से उसके भाग्य ने कहा कि राकेश देखो, आँखें खोलो, तुम्हारे सामने एक चक्र नाच रहा है। यही भाग्य-चक्र है। तुम्हारा भाग्य अभी बदला नहीं। तुम्हें दुख-पर-दुख झेलने हैं। कमर कसे तैयार रहो। परिस्थितियाँ मनुष्य को कान पकड़ उसे अपने साथ ले चलती हैं। परम्परा की कड़ियाँ जब बजती हैं तो तक़दीर की जंजीर [illegible] उठती है। ऐसे ही जब भाग्य बदलता है तो मनुष्य देवता बन जाता है और देवता मनुष्य। इन्सान पशु से भी अधम हो जाता है। वह नार-कीय कहलाता है। दुनिया के दो दरवाज़े हैं। बीच में भेद की दीवार खड़ी है, जो स्वर्ग और नर्क को अलग-अलग करती है।

परिस्थितियाँ जब आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ और ऊपर-नीचे, [illegible] कि मनुष्य के इर्द-गिर्द घूमती हैं तो घबरा जाता है इन्सान। वह सोचने लगता है कि एक समस्या हो तो सुलझाऊँ। यहाँ तो [illegible] रोना है। क्या रोने, सोचने और दुख करने के लिए [illegible] मिलती है क्या संघर्ष करने के लिए ही मनुष्य का जन्म होता है? [illegible] होता है यह सब? इसलिए कि मनुष्य की इच्छाएँ [illegible] जब माह-पूस की कड़ाके की सर्दी पड़ती है तो आदमी [illegible] है। वह उसे प्यार करता है। बड़ा आराम चाहता है। [illegible] मोह करता है। स्त्रियाँ भी छोड़ देती हैं राम-स्मरण कि [illegible]

जाये और गरमी आये। आज तो कलेजा काँपा जा रहा है किन्तु ज
जेठ की धूप खूब चिलकती, लू खूब गरम-गरम झकोरे भरती, रात
होती उमस, पसीना धार बनकर बहता, तो जाड़े में गर्मी को निमन्त्र
देने वाले लोग मुँह फाड़-फाड़कर कहने लगते हैं कि कहाँ से आ गई य
निगोड़ी गरमी। आदमी झुलसा जा रहा है। अब तो पानी बरसे, तभ
चैन मिलेगी।

...और जब आती है बरसात। भादों की काली अँधेरी रातें होतीं
पानी की झड़ी लगती, चार-चार छः-छः दिन तक नहीं रुकती तो लो
बरसात को भी गालियाँ देते। उसे भी बुरा कहने लगते हैं। इस तर
यह सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य अपने प्रति स्वयं स्थिर नहीं। वह मा
का बुत ही नहीं, एक कठ-पुतला है। कठ-पुतला नाचता है। दुनिया तमाश
देखती है। ऐसे ही शुरू होती है इन्सान की जिन्दगी। वह अपनी जीव
कहानी का प्रमुख पात्र बनकर दुनिया के रंग-मंच पर आता है। खिला
खेलता है हार और जीत के दो तोहफ़े उसके सामने होते हैं। किन्तु अ
में यवनिका पतित होती है और ड्राप-सीन होते ही लोग कहने लगते
कि अमुक आदमी बहुत भला था। अरे वह मर गया, चलो अच्छा हुअ
बहुत बुरा आदमी था।

मनुष्य की परिभाषा कुछ नहीं, परिस्थितियाँ भी प्रगति और पत
की सूचक होती हैं। जिन्दगी की भी कोई कहानी नहीं। संसार व
भी दुखड़ा नहीं। दुख और सुख का भी कोई पचड़ा नहीं, क़ीमत
एक वस्तु की—वही है हीरा, वही सोना, वही चाँदी। समय वह ध
है जिसे हम किसी भी तराजू पर तोल नहीं सकते। जिसके लिए हमा
पास माप और दण्ड नहीं, जो सबका साथी है किसी का दुश्मन नहीं
जिन्दगी का एक क्षण भी व्यर्थ चला जाता है, तो मनुष्य पीछे र
जाता

राकेश ने समय का मूल्य कभी नहीं आंका। किन्तु जब जेल व
चहार-दीवारी में बन्द हुआ, तो उसे बोध हुआ, समय का अस्तित्व

समय अमूल्य निधि है, आदमी इसका जितना सदुपयोग कर सके, उतना-
अच्छा है। अब उसको छूटने में चन्द ही महीने शेष रह गये थे। देहली
वह अम्वाला की सेन्ट्रल जेल में भेज दिया गया था। एक रात उसे नी
नहीं आई। उसे घर की याद सता रही थी कि भैया बलराज कैसे होंगे
प्रभा ने उनकी नाक में दम कर रखा होगा। जाने वे देहली में हैं
बम्बई में ? बहुत दिन इस बन्दीगृह में रहा, अब जी चाहता है कि आ
ही सींखचे तोड़कर बाहर निकल जाऊँ। लोग कैसे काटते हैं सजा
जिन्हें दस-दस और बीस-बीस साल की होती है। यह नियम बदलता क
नहीं ? बदले कैसे, आदमी जो करता है ? लीला और रेवती वे तो दो
देहली में ही होंगी। देहली क्या छूटी, हम लोग लगातार मुसीबतों
चक्कर में आते गये ? अब याद आती है पुरानी बात कि, 'परदेस कले
नरेशन की, जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।'

उस रात राकेश की उलझन बढ़ी, दूसरे दिन भी वह शान्ति न
हुई। वह सोचता ही रहा। अतीत की स्मृतियों ने उससे अटूट नाता जो
लिया। भूले-बिसरे चित्र उसकी आँखों के सम्मुख चल-चित्र की तरह नाच
लगे। कनाट-सर्किल में वह लीला के साथ पर्यटन कर रहा था। प्ला
माउथ पर बैठ वह कुतुबमीनार गया था। ऐ ! कितनी बड़ी भूल। उस
डॉक्टर को रिश्वत दी। कैसा विश्वासघात ? उसने भाई को ही मरवा
की कोशिश की। फिर वह डरा, पुलिस नहीं क़ानून से—राकेश से गो
बना। नैनीताल आया। वाहरे ! लायक़ भाई तूने वहाँ भी मुझे ग
से लगा लिया। बम्बई मुझे नहीं फली। वह चमक-दमक की दुनियाँ
कौड़ी की है। हर चमक के पीछे अंधेरा है। हर दिये के नीचे भी व
अन्धकार। और आदमी देखता है कि चिराग़ तले अँधेरा है; फिर
उसकी आँखें नहीं खुलती हैं। हर खुशी खरीदी हुई होती है, हर सुख म
का हर काम एक कसौटी है, यहीं से तो नेकी और बदी के फल मिल
हैं। मैंने बदी के फल चखे, नेकी की राह चलने की कभी सोची ही नहीं
ठोकर लगी, आँखें खुलीं; शायद जेल से बाहर जाकर अपने को कु

बदल सकूं। बस दिन अब पंख लगाकर उड़ जाएँ। रातें आएँ और चली जाएँ। मैं अपने भैया से मिलूं। वे ही मेरी माँ हैं, वे ही मेरे बाप।

इधर राकेश इस तरह उलझन में पड़ा था और उधर बलराज चुपचाप एक दिन कोठी से कहीं चले गये। वे फिर लौटे नहीं। उनकी तलाश भी हुई। वे न देहली में मिले और न बम्बई में। धीरे-धीरे छः महीने बीत गये।

२८

वह दिन आ गया। जब राकेश जेल के फाटक से बाहर निकला। वह . रहा था और बड़ी आशा-उल्लास लिए इधर-उधर देख रहा था कि .५। जरूर आये होंगे। अन्य बन्दियों के परिवार वाले उनसे गले मिल रहे थे। सभी हंसते-हँसते वहाँ से जा रहे थे। वह बुझा-सा खड़ा था उसकी आशा मृतप्राय हो चली थी, उल्लास ने शोक का चोला पहन उसके मर्म को ललकारा कि चल अभागे, तू अपने को भाग्यशाली समझता है तुझे लेने कोई नहीं आया।

तब राकेश धीरे-धीरे चला। अम्बाला में उसका एक मित्र था। वह उसी के घर गया। उसने उससे कुछ रुपये माँगे बम्बई पहुँचने के लिए दोस्त साफ़ मुकर गया। उसने कहा कि भैया मैं ऐसी दोस्ती नहीं करता तब वह बाज़ार में भटका। कई शरीफ़ लोगों से मिला। उनको अपना हाल बतलाया। आखिर एक बूढ़ी पंजाबिन को आ गई दया। उसने उसे बम्बई का टिकट खरीद दिया।

विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पर उतर राकेश पैदल ही मैरिन ड्राइव की ओर चला। उसके कपड़े अस्त-व्यस्त थे। उसकी दाढ़ी बढ़ रही थी। वह किसी तरह कोठी तक पहुँचा। कई दिन का भूखा था। जी

की सीढ़ियाँ नहीं चढ़ पाया, थककर बैठ गया। जैसे-तैसे ऊपर पहुँचा। जिस कमरे में बलराज बैठते-उठते थे।

किन्तु यह क्या! वहाँ बलराज नहीं? आदमक़द आईने के सामने खड़ी थी लीला। वह अपने बाल सँवार रही थी। रेवती एक ओर बैठी रामायण पढ़ती नज़र आई तो दूसरी ओर कौंच पर बैठी शीला प्रभा से बातें कर रही थी। राकेश-चौंका और ऐसा चौंका कि जिसका नाम नहीं। वह घूमकर जाने लगा। वैसे ही उस पर प्रभा की दृष्टि पड़ गई।

प्रभा ने राकेश को पहिचाना। वह लीला से बोली—"भाभी का देवर आ गया है। चलो कोई आरती उतारो, कोई मुँह मीठा कराओ। अरे! रेवती बैठी क्यों हो, जल्दी से पद पखारो?"

अब सबकी सब चौंक गईं। वे सब देखने लगीं राकेश को और राकेश किसी से कुछ भी न कह और कुछ भी न पूछ, धीरे-धीरे वहाँ से जाने लगा। तब तक सामने पड़ गया पुराना नौकर, उससे उसने पूछ दिया—"भैया कहाँ हैं, मुझे पहिचाना, मैं राकेश हूँ।"

"बलराज बाबू तो कहीं रूठकर चले गये, आज क़रीब-क़रीब साल हो रहा है। न कोई झगड़ा हुआ न किसी से कहा सुनी। वे चले ही गये, न जाने क्यों? आओ बैठो बबुआ, बहुत दुबले हो गए हो। मैं······।"

अभी नौकर इतना ही कह पाया था कि प्रभा उठकर खड़ी हो गई। वह तेज़ गले से बोली—"ऐ! बबुआ के बच्चे इधर आ। हालांकि! मैं तुम्हारी मालकिन नहीं। अभी-अभी आई हूं और चली जाऊंगी; लेकिन तू इस दुश्मन को घर में नहीं रख सकता। इससे बात नहीं कर सकता। मेरी बात न लीला काटेगी, न शीला और रेवती बहन भी जो मैं कहूँगी, वही करेगी। पकड़े खड़ा रह, इसे छोड़ना मत। मैं अभी आई, अभी बतलाती हूँ कि तुझे क्या करना है?"

नौकर सहम गया। राकेश को भी ज़मीन-आसमान नज़र आ गया, और इधर प्रभा ने कर दिया पुलिस को टेलीफ़ोन। फिर वह आ गई, उसने लीला और शीला दोनों को उसके समक्ष नियुक्त कर दिया, कि वह

कहीं चला न जाय, जो सारा खेल बिगड़ जाय।

थोड़ी देर बाद पुलिस आ गई। तब प्रभा ने इन्सपेक्टर से यह कहा, कि इस राकेश से हम सबको जान-माल का खतरा है। इससे बलराज से कोई मतलब नहीं। यह कोठी क्यों आया? बलराज की तीनों पत्नियों ने भी प्रभा की बात का समर्थन किया, और पुलिस इसी बुनियाद पर राकेश को बन्दी बना वहाँ से ले चली।

यह था विचित्र संयोग और भाग्य का खेल। भूखा जहाँ जाता है, वहाँ वह भूखा ही रहता है और प्यासा जब पानी चाहता है तो उसे एक भी बूंद नहीं मिलता। इसी तरह जब नसीब करवट बदलता है तो फूलों की सेज काँटों की हो जाती है, ज़माना दोस्त नहीं रहता, वह दुश्मन बन जाता है। कितनी दयनीय स्थिति में राकेश अम्बाले से बम्बई तक आया था। किस तरह साहस बटोर वह जीने की सीढ़ियाँ चढ़ा। क्या सोचा। और क्या हो गया? पक्षी अपने नीड़ में आया था; लेकिन घोंसले पर दूसरे पक्षियों का अधिकार हो चुका था।

चारों स्त्रियाँ खड़ी ऊपर से देख रही थीं। राकेश पुलिस के साथ जा रहा था। ऐसा लगता कि अब उसकी ज़िन्दगी में क़ैद-ही-क़ैद लिखी है। वह चल नहीं पाता, उसके पैर नहीं उठते। फिर भी डर था पुलिस का, मरता क्या न करता? किसी तरह वह जैसे-तैसे चल रहा था। आखिर प्यास से गला सूखा, उसे चक्कर आ गया, वह गिर पड़ा। तब पुलिस के सिपाहियों ने दया दिखलाई। उसे मिट्टी के हुण्डे में लाकर जल पिलाया। उसके मुंह पर पानी के छींटे मारे। उसकी आँखें खुलीं, चेतना जागी और वह फिर चलने लगा।

राकेश सोच रहा था कि जिस वैभव की नगरी बम्बई में मैं सुख और समृद्धि समेटने आया था, वहाँ खाक भी पल्ले न पड़ी। अपने-पराये हो गये, सगे बिछुड़ गये। क़ानून बन्दिश-पर-बन्दिश ला रहा है। बेदर्द ज़माना हँस रहा है। पुरुष कुछ भी नहीं रहा इस युग में, नारी-प्रधान हो चली है। जहाँ देखो वहीं—'लेडीज़-फर्स्ट' अब प्रभा का

ज़माना है। रेवती और लीला की चढ़ बनी है। देखो तो उसका कौतुक शीला भी बम्बई आ गई।

जिस समय राकेश थाने के दरवाज़े पर पहुँचा, ठीक तभी वहाँ का घण्टा बजा। अन्दर कोई फ़रयादी रो रहा था, वह रिपोर्ट लिखवा रहा था। सामने ही था पुरुष बन्दीगृह, जिसमें दो-तीन भाग्य के मारे छोटा-सा मुँह लिए खड़े थे। स्त्री बन्दीगृह खाली था, उसमें भी मोटा-सा ताला झूल रहा था। राकेश के पैर एकदम ठिठके, वह सोचने लगा कि मुझे भी इसी हवालात में बन्द होना है।

२९

बलराज होते तो दौड़-धूप करते। राकेश निस्सहाय-सा हवालात के सीखचों में बन्द था। सवेरे से लेकर रात तक कई पुरुष आये, बन्द हुए, कई की ज़मानत हो गई। वे अपने घर गये और राकेश, उसने बिताई रात वहीं। पहले पहर में उसे एक पाव भर पूड़ियाँ मिली थीं, उससे कुछ आहार हुआ। रात बीती, सवेरे आठ बजते-बजते उसका चालान जेल भेज दिया गया। उस पर कोई जुर्म नहीं था और न कोई मुकद्दमा चलना था। हाँ! उसके खिलाफ़ जो रिपोर्ट प्रभा, रेवती, लीला और शीला आदि ने लिखवाई थी। उसी की बुनियाद पर उसकी ज़मानत और मुचलके होने थे।

कौन करता राकेश की ज़मानत? बम्बई में उसे कौन जानता था? कौन था ऐसा विश्वास-पात्र, जो उसके मुचलकों पर अपने हस्ताक्षर करता? एक साल की अवधि थी मुचलकों की। इस बीच राकेश से सम्बन्धित अगर कोई घटना घटी तो वह जुर्म का पूरा-पूरा हक़दार होगा, उस पर मुकद्दमा चलेगा।

इस तरह जेल की हवालात में बन्द था राकेश। जेल की रोटियाँ खाते-खाते वह ऊब गया था और वे ही अब भी उसके सामने आतीं तो वह रो देता। वह कहता मन-ही-मन कि प्रभा तुमने किस जन्म का बदला लिया है? क्या जब प्यार घृणा में बदल जाता है तो आदमी-आदमी का दुश्मन बन जाता है तुम्हारी तरह? नहीं यह मनुष्य का धर्म नहीं। यह तो मेरी नीचता है और नीचता पर आदमी जब उतर आता है तो वह सब कर सकता है। सोते में गला काट सकता है, जहर दे सकता है।

राकेश दिन-रात आँसू बहाया करता। उसका चेहरा पीला पड़ गया था। उसकी दाढ़ी बेतरतीब बढ़ी थी। वह ऐसा लग रहा था, मानों कोई पागल हो या टी० बी० का मरीज़। वह अपनी क़िस्मत को नहीं झींकता। दुनिया को दोष नहीं देता, वह कहता यह सब है समय-चक्र। कहावत है कि 'पुरुष बली नहीं होत है समय होत बलवान, भिल्लन लूटी गोपिका वे अर्जुन वे ही बान।'

बलराज ऊब गये थे अपनी नारकीय ज़िन्दगी से, इसीलिये उन्होंने कोठी छोड़ दी और आख़िर करते भी क्या? जब घर में नारी का आधिपत्य होता है तो पुरुष का अस्तित्व ऐसा लोप हो जाता है जैसे अमावस की रात में चाँद। फिर एक स्त्री का अदल हो तो भी ग़नीमत वहाँ पर तीन-तीन की हुक़ूमत चलती और चौथी थी बैरिस्टर जिसका नाम था प्रभा। रही बची कमी वह आकर पूरी कर देती। बलराज के हाथ कट गये थे, उनके पैर जैसे लूले हो गये थे। उनके अधिकार सो गये थे। उस जीव की तरह जो जीवित तो होता है; लेकिन उसमें हरकत नहीं होती।

लीला कहती कि देखो जी मेरे साथ मोती बाग़ चलो। मुझे साड़ियाँ ख़रीदनी हैं। क्या तुम मेरा शौक भूल गये? बेचारे बलराज जब ख़रीदे हुए ग़ुलाम की तरह पत्नी के साथ बाज़ार जाते तो वह भाँति-भाँति की

ओर महँगी साड़ियाँ खरीदती। बिल बलराज चुकाते। लादते फिरते साड़ियों के डिब्बे, उन्हें कार पर रखते। तो वे मन-ही-मन कहते कि धिक्कार है मेरी ज़िन्दगी को। कई ब्याह करके मैं तो नर्क में पड़ गया।

शीला कहती कि न कभी घूमने चलो, न कभी फिरने। आखिर मेरी भी उमंगें हैं, मेरा भी मन है। मुझे एलीफैन्टा ले चलो। रानी बाग मैंने आज तक नहीं देखा। सुना है कि वह बहुत बड़ा अजायब घर है। नित्य चला करो सवेरे-शाम जुहू, कभी चौपाटी। एक कार से काम नहीं चलता। प्लाइमाउथ न सही, मुझे कोई सस्ता माडेल ही खरीद दो।

इस तरह बलराज खिचे-खिचे फिरते। वे सब की फरमाइशें पूरी करते। शीला के लिए भी उन्होंने खरीद दी एम्बेस्डरकार। तभी एक दिन रेवती बोली कि बम्बई है तो बहुत बड़ा शहर; लेकिन मैं इस कोठी के अलावा और कुछ जानती ही नहीं। मुम्बा देवी रोज़ चला करो, यहीं है योगेश्वरी की गुफा, जो पाण्डवों ने पहाड़ फोड़कर बनाई थी। नासिक भी कोई दूर नहीं। वहाँ सीता की रसोई है और वहीं से कुछ आगे है पंचवटी, जहाँ भगवान् राम ने बारह वर्ष पर्णकुटी में बिताये थे। मुझे यह तीर्थ करवा दो, मुझे वहाँ ले चलो।

इसीलिए ऊब गये बलराज और वे कोठी से चुप-चाप एक दिन चले गये। वे बम्बई से पूना आये और एक किराये का मकान लेकर रहने लगे। वे पूजन-भजन में समय बिताते। कभी-कभी घूम-फिर आते। होटल में भोजन कभी नहीं करते, स्वयं अपने हाथ से बनाते। उन्होंने कर लिया था तय कि अब वे अमीरी की जिन्दगी नहीं, सादा जीवन बिताएँगे, जो सुख सादगी में है वह रईसी में नहीं। अब मैं न देहली जाऊँगा और न बम्बई। हाँ! एक चिन्ता राकेश की है कि उसका क्या होगा? उसे बहिष्कृत करा दिया गया है मेरे द्वारा; लेकिन फिर भी हाथी चाहे दुबला हो जाय, वह हाथी ही कहा जाता है। मैं अपने साथ लगभग पाँच लाख की पूँजी लाया हूँ। एक लाख मेरी ज़िन्दगी भर के लिए काफ़ी है।

और चार लाख में बना दूंगा राकेश का भविष्य। वह मेरा भाई है, इसे मैंने गोद में खिलाया है।

बम्बई महानगरी के सम्मुख पूना का कुछ भी अस्तित्व नहीं, वह छोटा शहर है। वहाँ शान्ति है, बम्बई जैसा शोर-गुल नहीं। बलराज का मन खूब लगता। अब उन्होंने जीवन-पर्यन्त पूना में ही रहने की ठान ली थी। एक रात वे सोते से चौंक पड़े। उन्होंने एक भयानक सपना देखा था कि राकेश जेल से छूट आया है, उसके कपड़े फटे हैं, उसकी दाढ़ी बढ़ी है। वह बम्बई आया तो मैरिन-ड्राइव की कोठी में उसे किसी ने घुसने नहीं दिया और प्रभा ने शरारत की, उसे फिर पकड़वा दिया। आज-कल वह जेल में है। वह खूब रो रहा है। राकेश ! मैं आ गया राकेश। इस तरह चिल्लाने लगे बलराज। वे उठकर बैठ गये। उस रात फिर उन्हें नींद नहीं आई। सवेरे भी वे उसी सपने के प्रति सोचते रहे। फिर जब मन नहीं माना तो दोपहर होते-होते पूना से बम्बई के लिए रवाना हो गये। यह था उनका भ्रातृ-प्रेम, जो उन्हें निश्चय से अनिश्चय की ओर लिए जा रहा था।

बलराज जब बम्बई पहुँचे तो गुप्त रूप से उन्होंने पता लगाया। वे चोर-बाज़ार गये। वहाँ से एक लम्बी दाढ़ी खरीदी। लाल रंग की एक तुर्की टोपी, काली टसर की अचकन और चूड़ीदार पायजामा। पैरों में नखलउआ जूते डाले। जो लाल थे, जिन पर सुनहले और रुपहले कलाबत्तू का काम हो रहा था। इस तरह वे बन गये मिरज़ा साहिब। मुँह में पान की गिलौरी दाबी। दाहिने हाथ में सुलेमानी अँगूठी पहनी चाँदी की, जिस पर फ़िरोजा जड़ रहा था। हाथ में ली एक छड़ी, जिसकी मूंठ गोल थी, वह चाँदी से मँढ़ रही थी। तो इस तरह मिरज़ा साहिब मैरिन-ड्राइव की कोठी पर पहुँचे। वहाँ लीला ने व्यापार की बाग-डोर अपने हाथ में ले रखी थी। हीरा, जवाहरातों का

व्यापार अब भी चल रहा था। लीला एक्सपर्ट थी एकाउन्ट में, वह
जोड़ टाइपिस्ट थी हिन्दी, इंगलिश दोनों में और रेवती थी सौ सा
पहले की नारी। उसके लिए राम भगवान् थे, कृष्ण भगवान्। मिर
साहिब पहुँचे, लीला ने उनका स्वागत किया। वे बोले कि मैं निजा
हैदराबाद से आया हूँ। पन्ने के कुछ टुकड़े हैं सौदा करना है, मुझे रु
चाहिए। लीजिये, देखिये, परखिये। आजकल बलराज भाई नहीं रह
यहाँ। उनका छोटा भाई राकेश वह तो बहुत ही बढ़िया आदमी था
राकेश होता तो मैं और सौदा करता। मेरे पास हीरे की कनी है। कु
नीलम के टुकड़े। पुखराज बेशुमार हैं। मैं पैरिस होटल में ठहरा हूँ
जानती होंगी आप।

"लाख, दो लाख का नहीं, आप करोड़ों की बात कीजिये। पह
इसी कोठी में पाँच हजार का हीरा बिकता था, आज बीस, पच्ची
हजार से कम का मिलेगा ही नहीं। जो दस-बीस हजार लेकर आत
है, वह यहाँ से वापस जाता है। कम-से-कम दो लाख, चार या पाँ
लाख, उसका सौदा कीजिये। यहाँ सोना-चाँदी नहीं बिकता, जो गरीबों
के लिए एक बहुत बड़ी दौलत है। यहाँ ऊँचे तबके के हीरे-जवाहरातों
का व्यापार होता है। मिरज़ा साहिब कितनी रक़म लाये हैं आप। य
बतलाइये, बाद में सौदा कीजिये।...और राकेश, वह तो गया। जैसे ही
जेल से छूटकर आया, प्रभा बहन ने फिर उसे जेल में ठूँस दिया। बल
राज निकम्मा था, मूर्ख! वह दुम दबाकर भाग गया।...और होत
भी है ऐसा, हर पैसे वाले बुद्धू होते हैं। हाँ! निकालिये पन्ने के टुकड़े
कितने के हैं। आप कमज़ोर आसामी मालूम होते हैं। अगर लाख से
नीचे हैं तो दूसरी दूकान देख लीजिये।"

मिरज़ा साहिब हँसे। वे बोले—"बम्बई टूटे पैसों की [illegible]
की एक नगरी है। माफ़ कीजिये, यह न्यूयार्क नहीं, यह लन्दन नहीं, [illegible]
पैरिस का बाज़ार नहीं, न बर्लिन की मण्डी। मैं [illegible]
जितनी आप चाहती हैं। खुदा हाफिज़ अल्लाह-[illegible]

क़द जमा किये, राकेश की ज़मानत के। फिर परवाना बना। राकेश
ल से रिहा हुआ।

बलराज जेल के फाटक पर टैक्सी लिए भाई का इन्तज़ार करते ही
ह गए। उनकी योजना थी कि वे उसे सीधे पूना ले जाएँगे। दोनों
ाई वहीं रहेंगे। वहीं कोई काम करेंगे। इनकी दृष्टि में नारी एक चिन-
ारी थी, जो कभी शोला बनती और कभी दहकता अंगार। जो ज़िन्दगी
ो खाक करती और कभी उसी को बहाल। वे खीझ रहे थे प्रभा पर।
न-ही-मन वे कोस रहे थे अपनी तीनों पत्नियों को। वे भगवान् से दुआ
ाँग रहे थे राकेश के लिए। वे उसकी ज़िन्दगी के स्वर्ग का सपना देख
हे थे। वे प्रतीक्षा में रत थे कि राकेश अब आया, तब आया।

किन्तु राकेश कारागार से बाहर निकलते ही आगे न जा पीछे लौटा।
ह दूसरे रास्ते से पैदल ही चला गया। वह नहीं चाहता था कि अपने
ज़मानतगीर से मिले। उसे मालूम था कि उसके भाई बलराज ने ही
किसी आदमी को भेजा है, जिसने उसकी ज़मानत की है। इस तरह
बलराज भैया फाटक पर ज़रूर मिलेंगे।

राकेश चल दिया। उसने पीछे घूमकर भी नहीं देखा। उसकी आँखों
से मोह दूर हो चुका था। उसका मन विरक्ति से भर गया था। वह
अकेला भी नहीं रहना चाहता था। जिस स्वार्थ को उसने ज़िन्दगी-भर
प्यार किया। कलेजे से लगाकर रखा। वह स्वार्थ ही साँप बन गया।
उसने उसकी शान्ति को डस लिया और जब मनुष्य की शान्ति छिन
जाती है, वह बेदर्द हो जाता है, तो वह पागल कहलाता है। वह
अपने आपे में नहीं रहता। दुनिया को पराई समझने लगता है।

राकेश चलता गया। वह पहुँचा समुद्र के तट पर, जहाँ लहरें एक-
दूसरे से कह रही थीं कि ज़िन्दगी कुछ नहीं एक छोटा-सा सपना है।
सपना मोम का मोती है और मोम का मोती क्षण-भंगुर है। फिर क्षण-
भंगुर इन्सान का क्या अस्तित्व? वह एक जीव है जो रोज़ पैदा होता
है और रोज़ मरता है।

खड़े रहे बलराज। वे रास्ता देखते ही रह गये। फाटक के सामने सन्नाटा हो गया। केवल सन्तरी अपने बूट से चर्र-मर्र कर रहा था। बलराज सोचने लगे आखिर हुआ क्या ? क्या राकेश छूटा नहीं। वे साहस कर दफ़्तर में गये। वहाँ पता किया तो ज्ञात हुआ कि राकेश नाम का हवालाती मुल्ज़िम छूट चुका है।

"ऐं, छूट चुका है तो गया कहाँ ?" यह कहते हुए बलराज माथे पर हाथ रख दफ़्तर से बाहर निकल आये। वे जब फाटक पर पहुँचे तो उनका सिर झुक रहा था, आँखें मुंद रही थीं और उनके पैर हो गये थे भारी एक-एक मन के, वे उठाये नहीं उठ रहे थे।

३१

मनुष्य में जब प्रतिशोध की भावना बलवती हो जाती है तो वह बदले पर बदला लेता चला जाता है। वह सोच ही नहीं पाता कि बदला जीत नहीं आदमी की सबसे बड़ी हार है। हर बदला लेने वाला तुच्छ होता है, हेय होता है। जो सुख क्षमा में है वह दण्ड में नहीं। क्षमा मनुष्य का निर्माण करती है। अपराध और दण्ड उसके मुंह में बग़ावत का बिगुल लगा देते हैं। तभी तो आदमी की भावनाएँ विद्रोही हो जाती हैं। प्रभा में भी परिवर्तन आया। उसने अपने प्रति सोचा और अपनी ज़िन्दगी के लिए, तो उसे मिली एक इकाई जिसका समाज में कोई अर्थ नहीं। वह अकेली है और ज़िन्दगी-भर अकेली ही रहेगी, यह भी कोई ज़िन्दगी है।

एक तथ्य और है, जो सोचता है कि धन से दुनिया जीती जा सकती है, धन से बड़ा कोई नहीं, आदमी उसका दास है। किन्तु
पर भी असफल हो जाता है इन्सान।
किन्तु पल्ले पड़ती है खाक। वह जो सो

अलाउद्दीन खिलजी चित्तौड़ पर इसलिए चढ़ा था—रानी पद्मिनी क
हस्तगत करने के लिए। यवन-सम्राट् के पास असीम सैन्य-शक्ति थी
उनका निश्चय था कि राजपूत हार जायंगे और पद्मिनी सुल्तान को मि
जायगी। तो हुआ यह अवश्य कि राजपूत हारे। किले का फाटक खु
गया। भीतर जौहर की रस्म पूरी हुई। दुर्ग में एक चिड़िया भी न
रह गई। अलाउद्दीन को रानी पद्मिनी नहीं मिली, उसके बदले में मि
राख। ऐसे ही प्रभा ने सोचा था कि मैं बलराज की रियासत खरीद लूं
तो राकेश मेरे पैरों पर आकर गिरे। फिर जब वह बाजी हार गई
दूसरा दाव खेला कि मैं वसन्ती बनकर बलराज से व्याह कर लूं अ
कान पकड़ कर राकेश को कोठी से बाहर निकाल दूं। मगर वह खे
अधूरा ही रह गया। राकेश गिरफ्तार हो गया। मुकद्दमा चला, उस
सजा काटी, फिर भी प्रभा का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसने आते
उसे फिर पुलिस की हिरासत में दे दिया और हाय-हाय उसका क्रोध
नल फिर भी भड़के का भड़का ही रहा। बलराज ज़मानत करने अ
तो उसने अदालत में काग़ज़ात पेश कर दिये और फिर जब उसे ली
द्वारा यह मालूम हुआ कि राकेश ग़ायब हो चुका है, ज़मानत करने
बाद तो उसमें एक परिवर्तन आया। वह सोचने लगी कि पुरुष को प्य
से जीता जा सकता है। अहम् और सत्ता से नहीं। प्यार की दीव
कभी गिरती नहीं, कभी ढहती नहीं और ज़बरदस्ती के मीनार ढह ज
हैं, इस तरह जैसे किले में तोप लगती हो, बुर्ज उड़ जाते हों और आ
मण कर्ता सहज ही प्रवेश पा जाता हो उस दुर्ग में। जैसे मोहम्मद श
एक बुजदिल बादशाह था। वह रंगीला कहलाता था। भेड़ चराने वा
नादिरशाह उस पर चढ़ आया। वह शाहजहाँ का तख्त-ताऊस उठा
गया मयूर-सिंहासन। वही कोहिनूर हीरा ले गया। मुसलमान ने
मुसलमान की गरदन काटी।

प्रभा यह सोचती कि मैंने जो कुछ किया उसका नतीजा कुछ
नहीं मिला। जिन्दगी प्यासी ही रही और उसकी साँसें अधूरी। क

राकेश को मैं पा सकती तो दुनिया का दुख-दर्द भूल जाती; लेकिन भू
कैसे ? जिसने दर्द दिया है उसने दवा तो दी ही नहीं। जिसने प्या
किया है उसने निर्वाह नहीं किया। ज़िन्दगी एक आँख हँसती है औ
दूसरी से रोती। मैंने सौ खेल-खेले; लेकिन राकेश मेरे क़ाबू में नहीं आया
स्त्री चलती है डाल-डाल, तो पुरुष पात-पात। यह मैंने अब जाना।

काश मेरे जीवन की बगिया में भी वसन्त-बहार आये, वहाँ मन व
कोयल बोले 'कुहू-कुहू'। वहाँ सदाबहार के फूल खिलें। सदा सुहागि
की बेल मुस्कराये। वहाँ रात में प्रभात जागे। वहाँ ज़िन्दगी अपना मो
माँगे। वहाँ कामनाएँ कुण्ठा के कान पकड़े, वहाँ लालसाएँ इच्छाओं व
घर-बमके। वहाँ ज़िन्दगी का एक ही तथ्य था कि प्यार के लिए मरें
प्यार के लिए ही जिओ। वहाँ दुख का नाम निशान न हो, सुख की ह
हाट लगती हो और ज़िन्दगी मुस्करा रही हो ऐसे, जैसे शबनम के मोत
जो हरी दूब पर चाँदी जैसे लगते हैं।

३२

प्रभा का जब जी घर में नहीं लगा तो वह सिनेमा भागी। जहाँ खे
लग रहा था बहुत ही पुराना 'प्यार की जीत' जिसमें भूतपूर्व अभिने
सुरैया नायिका थी, जो कोकिल कण्ठी थी, प्रसिद्ध नर्तकी। जिसने गाय
था गीत 'ओ दूर जाने वाले वायदा न भूल जाना, रातें हुईं अंधेरी तु
चाँद बनकर आना।' जो अभिनेत्री थी अपने युग की, जो नृत्य पारंगत
ही नहीं, संगीत की रानी थी, अभिनय की पुतली, वह अभिनेत्री सुरैय
थी, जो आज भी बेजोड़ है, अद्वितीय थी। आज तो केवल झाँकी है औ
फ़िल्म-उद्योग एक मीठा धोखा।

प्रभा का मन फ़िल्म जगत् से नहीं भरा। वह रोशनी की राह देखत

रही। वह ज़िन्दगी की झलक चाहती ही रही; लेकिन वहाँ अँधेरा मिला

प्रभा जो चाहती थी कि शान्ति का समुद्र उसके सम्मुख लहराए उसमें सन्तोष की लहरें उठें, उसमें सुख की किश्तियाँ चलें, उस समृद्धि ज्वार लेकर आये, उसमें वास्तविकता स्पष्ट उभर आये। उ खारे पानी में सच्चे मोती तैरें और उन मोतियों में आव हो जो दुनिय को मात कर दे। दुनिया यह सबकी है और किसी की नहीं; यह ए धोखा है, यह एक कसौटी। यह उसकी है जो इसका नहीं। इस दुनिय में विना पानी की धार बहती है, जिसमें वड़े इन्सान वहते हैं, जो राज और रंक कहलाते हैं। जो अहम् का घूंट पीते हैं, वे मिट जाते हैं जो तुच्छ बनकर चलते हैं। वह श्रेणी पाते हैं तो अपने को भूल जाते हैं। दुनिय उन्हीं का भोजन करती है जो अपने को कुछ नहीं समझते। दुनिया उन्हें को सिर आँखों पर रखती है। दुनिया वह रेखा है जो कभी मिटती नहीं ज़िन्दगी की साँसों से संगम करती है। और संगम होता है, तीर्थ-स्थल जैसे प्रयाग, जहाँ त्रिवेणी लहराती है।

(दुनिया एक गोल दायरा है। आदि और अन्त दोनों उसी में निहित हैं। दुनिया, दुनिया है। आदमी रंग-मंच का एक खिलाड़ी, जो हारता है, जीतता है, जो रोता है और हँसता है। जो कहता है ज़िन्दगी एक दुख है और जो कहता है ज़िन्दगी सुख की खान है। स्मृति की रेखाएँ जब प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगती हैं तो आभा मस्तिष्क के बुलन्द दरवाज़े पर खड़ी हो पुकार-पुकार कर कहती है कि इन्सान यही है, इन्सानियत यही है, जिन्दगी कुछ नहीं, वह आदमी की एक छोटी-सी कहानी है।)

तो कहानी है राकेश। वही तो मेरी ज़िन्दगी का सर्वस्व है। मैंने उसे कितना दुख दिया, कितना छला और ठगा। भला कहीं पुरुष नारी से हारता है। नारी होती है अविवेक। उसकी संज्ञा पत्थर होती है वह चेतन होते हुए भी जड़ होती है। उसका मर्म-स्थल होता है ज्ञान शून्य। वह एक पहेली होती है जिसे पुरुष सारी जिन्दगी बूझता रहता है। काश ज़िन्दगी मुझे सज़ा दे। मुझे प्रायश्चित करने का मौक़ा दे

प्रायश्चित ही परिवर्धन होता है। प्रायश्चित ही पराकाष्ठा। प्रायश्चित
मनुष्य का सर्वस्व होता है और उसी के गर्त में छिपी रहती है एक क्षं
रेखा। रेखा ही स्त्री-लिंग होती है। वह पुरुषत्व के सामने झुकती है

प्रभा में विरक्ति जागी। उसमें ज्ञान उत्पन्न हुआ, तभी तो वन
वह भोली मानवीया। जिसे मध्य-वर्ग की नारी कहते हैं और f
कुल-ललना। कुल-ललना ही कुल-वधू बनती है और कुल-वधू ही
भामिनी। कुल-भामिनी ही कुल की मर्यादा होती है और मर्यादा हं
है एक कहानी, जो कही नहीं जाती, जो सुनी नहीं जाती और व्यवहार
लाई जाती है। (व्यवहार समाज की वह प्रणाली है जो एक से दूसरे
जोड़ती है। उसी सूत्र को कहते हैं सम्बन्ध और सूत्र होता है एक प
धागा जो कभी टूटता नहीं; कभी मुड़ता नहीं। उसके मिश्रण में प
और ज़िन्दगी मिली रहती है। जो इन्सान की हक़ीकत होती है अ
हक़ीकत ही होती है यथार्थ जिसे हम सच्चाई का दर्पण कहते हैं। द
क्या है एक आलोक ? मन समझाने की वस्तु। जिसके मन में बदी ह
है, वे ही आईने में मुँह देखते हैं। आईना कुछ नहीं है, जो कुछ है
का शीशा। जब सच्चे मोतियों की माला टूट जाती है जो झूठे मो
अपने आप ही बिखर जाते हैं और ऐसे ही होती है ज़िन्दगी, जो क
हँसती है तो कभी रोती।) जो कभी स्वर्ग के पैर छूती है तो धरती
माथा चूमती है। जो जीवट को गले लगाती है और कायरता से कह
है दूर-दूर। आह ज़िन्दगी ! आह तेरा अस्तित्व ! अरे ! तेरी कहानं
तू उसकी है जो तेरी नहीं। तू मौत की भी परिचायक नहीं, तू
कसौटी है जिस पर इन्सान कभी पूरा नहीं उतर पाता।)

आदमी की ज़िन्दगी क्या है ? एक ख्वाब। कहीं वह मातम मना
है, कहीं खुशी के गीत गाता है। कहीं कन्धे पर अर्थी रखता है तो क
कन्धे पर डोली। कहीं सुहाग की चूड़ियाँ टूटती हैं तो कहीं कफ़न वे
पर लिपटता है। कहीं अपने पराये की बाज़ार लगती है तो कहीं ज़िन्द
साँसें भरती है। ओह ! उफ़ ! अब क्या करूँ।

राकेश सोचता कि प्रभा जो मेरे लिये कभी जीवन-संज्ञा थी। आज विष की गाँठ बन गई। उसने मुझे ही नहीं, मेरे भैया बलराज ... नेस्त-नाबूद किया। उनकी राहें आसान हो गईं और मैं जंजाल में पड़ गया। स्त्री क्या नहीं कर सकती? वह पुरुष को सूली चढ़वा सकती है और उसी की उपासना करती है। जैसे राजा लाये थे कटा हुआ तरबूज़। उनके गुरु ने कहा था कि आज तुम स्त्री की परीक्षा लो, उससे कहना कि मैं एक आदमी का सिर काट कर लाया हूँ और इसी से यह टप-टप ख़ून चू रहा है। पड़ौसिन आई तो रानी ने कहा कि कहना नहीं बहन मेरे राजा अपने दुश्मन का सिर काट लाये जो छींके पर टंगा है। देखती नहीं, ख़ून पानी बन गया, वही तो धीरे-धीरे टपक रहा है। पडोसिन दौड़ी गई सम्राट् के यहाँ और उससे कहा कि अमुक राजा ने एक क़त्ल किया है, धड़ का पता नहीं, सिर से ख़ून चू रहा है। कुमुक आ गई। चोब नगाड़ों पर घनघोर गुंजारें हुईं। महल घेर लिया गया और वह सिर उतारा गया छींके से, जिससे ख़ून टपक रहा था; लेकिन वह तरबूज़ का आधा टुकड़ा था। राजा ने कहा कि यह दुश्मन का सर नहीं, यह तो फल है। तभी रानी बोली कि पहला मूर्ख मेरा पति, जिसने मुझे धोखा दिया। दूसरी मूर्ख मेरी पड़ौसिन, जिसे मैंने यह भेद बताया और तीसरे मूर्ख आप जो, किले पर एक दम चढ़ आये, मैंने आपकी परीक्षा ली थी आप सम्राट् नहीं, बहुत ही गये बीते हैं। आप में ज्ञान नहीं, आपके दिमाग़ की नसें बहुत मोटी हैं। आप दूसरे के कानों से सुनते हैं, पराई आँखों से देखते हैं। ऐसा राजा राज्य नहीं कर सकता। ऐसा ही था प्रभा का हाल। वह दुनिया को प्रमाण में रख कर आगे बढ़ना चाहती थी, लेकिन प्रमाण वह विद्या है जो हर एक की थाती नहीं होती।

ख़ूब रोई प्रभा, उसने दिन-रात एक कर दिया। उसकी आँखें लाल हो गईं। आख़िर वह गई बलराज के पास और उनसे रो-रोकर बोली—"मुझे माफ़ कर दो दादा। मैंने आपको बहुत कष्ट दिया, मेरा राकेश

हाँ है, मुझे उसके पैरों की धूल चाहिये और कुछ नहीं। वह कहाँ चला
या। आपको उसका कुछ पता है?"

"चली जा नालायक़ यहाँ से। आग में घी डालने आई है। जख्म
र नमक छिड़कने। तेरे पास पैसा है पैसा ही ओढ़, पैसा ही बिछा। तू
सन्नी ही नहीं, तू बहार बन, तू मुझे ही नहीं, दुनिया को धोखा दे। तू
ाखों से खेल, हजारों से नहीं। क्यों आई है यहाँ? फ़ौरन दूर हो जा।
ं तुझे फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहता।"

जब बलराज ने यह कहा तो प्रभा फूट-फूटकर रोने लगी। उसने
ाकड़ लिए उनके दोनों पाँव और रोते-रोते बोली—"मुझे माफ़ कर दो
ैया, मुझमें बदले की भावना जागी थी। मैंने भर पाया। मैं राकेश
के बिना रह नहीं सकती, जी नहीं सकती, वही तो मेरी ज़िन्दगी की
ाँस है।"

"साँस! दुष्टे साँस! कैसे कहती है राकेश तेरी साँस है? कहाँ
गई वे नीलम की पहुँचियाँ? वे बीस-बीस हज़ार के हीरे। तू अदालत
में चढ़कर बोली। तूने मुझे पिस्तौल दिखलाई, तूने मुझे क़ैद किया, मन-
माना लिखवाया। आज क्यों रोती है? बस समझ ले बिना पुरुष के
स्त्री सर्वथा अधूरी है। चबा ले हीरे पन्ने। फाँक ले मोती, जवाहरात।
ये सब काम नहीं आते। काम आती है ज़िन्दगी, जो नेकी-बदी की कहानी
लिख जाती है। शाहजहाँ दुनिया का बेजोड़ बादशाह था, जिसके खज़ाने
में इतने रत्न और जवाहरात थे कि जिसके गिनने में चौदह वर्ग से कम
नहीं लगते; लेकिन क़ैद ने उसे कुछ भी नहीं दिया। उसे जीने की सज़ा
यह मिली, जब उसने अर्ज़ की अपने बेटे शहनशाह आलमगीर से कि
मुझे पीने के लिए ठन्डा पानी मिले, गरम पानी पिया नहीं जाता। तो
औरंगजेब ने ख़त का जवाब यह लिखा कि अभी हुज़ूर के दिमाग़ से बाद-
शाहत की बू गई नहीं। जिस स्याही से ख़त लिखा है, उसी को पीकर प्यास
बुझा लो। ठीक यही गति होगी तेरी। प्रभा जिस समय तू मरेगी, तेरे मुँह
में एक बूँद पानी डालने वाला कोई नहीं होगा। जा, चली जा यहाँ से।

मैं तेरी कुछ भी मदद नहीं कर सकता। तूने राकेश को मुझसे जुदा किया। मैं तेरी सूरत भी नहीं देखना चाहता।"

प्रभा चली आई, वह रास्ते भर सिसकती रही। जब वह अपनी कोठी आई, तो उसे याद आये यूनीवर्सिटी के वे दिन, जब राकेश कार लिए उसकी प्रतीक्षा करता हुआ मिलता। जब दोनों गोल्चा में साथ-साथ चल-चित्र देखते थे। जब वे पिकनिक पर जाते थे, शहर से बाहर। तनिक भी सिर में दर्द हो जाता तो राकेश दवा लेने दौड़ता। वह ज़रा अनमना होता तो प्रभा की जान सूख जाती।

प्रभा उस दिन रोती ही रही। रात को भी उसने करवटें बदलीं। कोरी आँखों से सवेरा कर दिया। वह निकली ही नहीं कोठी से; एक, दो, और तीन दिन हो गये। फिर चौथे दिन सवार हुई यह धुन कि मैं राकेश को खोजूं, उसका पता करूँ। वह मिलेगा क्यों नहीं ? खोजने से तो भगवान् भी मिल जाते हैं। कहाँ देखूं ? कहाँ ढूंढ़ूं ? बम्बई छोटा शहर नहीं। क्या यहीं होगा वह ? कहीं बाहर तो नहीं चला गया। समुद्र के तट पर जाऊं। ज़िन्दगी से हारे हुये लोग वहीं जाकर साँस लेते हैं। कहीं मलाबार या किसी टापू में तो नहीं चला गया वह। जब आदमी अपनों से मुंह मोड़ता है तो उसे ज़िन्दगी का मोह नहीं रह जाता।

इस तरह चल दी प्रभा। वह विसमा रोड के समुद्र पर पहुँची। उसने जुहू और चौपाटी के भी किनारे देखे। वह मछुओं की बस्ती में गई। देर तक नावें देखती रही, उसने खूब घूमी बम्बई किन्तु राकेश का कहीं भी पता नहीं चला। आखिर हो गई वह निराश और हाथ पर हाथ रखकर बैठ रही। वह अपने में जितनी सजग थी, उतनी ही अधीर हो गई। वह जितनी ही वाक्पटु थी उतनी ही मौन हो गई। वह जितना जीवट पाले थी, उतना ही नैराश्य से भर गई। वह बुझ गई। वह ज़िन्दा ही मर गई।...और होता भी क्यों न ? पुराना प्यार उमड़ा था जो। हृदय उसका था प्यार पराया। तभी तो पानी में आग लग गई थी। और प्रभा देखते-ही-देखते ग़म की पुतली बन गई। वह न कुछ खाती, न कुछ

पीती। उसका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिर रहा था। उसके हृदय में कचोटन थी पर मन में एक मसोस। उसमें विरह राग जागा था। वह अर्द्ध-विक्षिप्त हो रही थी। जो लोहे की नारी थी अब मोम हो रही थी।

३३

बम्बई का दादर मोहल्ला जितना प्रसिद्ध है। उससे कहीं अधिक ख्याति अर्जित की है, दादर पुल ने। इस पुल की एक नहीं अनेक कहानियाँ हैं। यहाँ जो दृश्य देखने को मिलते हैं, वे चौंकाते ही नहीं, प्रभाव छोड़ते हैं। नंगे उघारे बच्चे इधर-से-उधर डोलते हैं। कोढ़ी, अपाहिज और मँगते आपस में लड़ते हैं। कहीं सड़े फल विकते हैं, तो कहीं खोमचे पर मक्खियाँ भिन-भिनाती हैं। कहीं कोई जेबकतरा खड़ा सतर्क मिलता। वह मौक़ा पाते ही जेब साफ़ कर देता। कहीं कोई कामिनी आकर प्रतीक्षा करती है अपने प्रिय की। कहीं कोई वायदा लेता है, कोई वायदा देता है। इस पुल पर सस्ती-से-सस्ती चीज़ विकती है। इसी पुल पर दादा लोग विचरते हैं। बम्बई के दादा, वे भूले-भटकों को बहका ले जाते। उनसे अपना उल्लू सीधा करते। यही वह पुल है जिस पर शौक़ीन मिजाज़ पान फुचरते।

दादर पुल आवारा लोगों की एक बस्ती है। जहाँ कोई गाता है, "रुक जा ओ जाने वाली रुक जा" और कोई लैला मजनू को बुलाती है। वह विरह गीत गाती है, "मेरे ग़म के सहारे आजा, सूना-सूना है जहाँ..." यह पुल इतना बड़ा है, इतना भारी कि उसके ऊपर ही नहीं, उसके नीचे एक अच्छी-खासी जमात जुड़ती है। जहाँ एक ओर कन-मैलिये अपनी शेखी बघारते, दूसरी ओर मलाई की बर्फ़ बेचने वाले आपस में तू-तू, मैं-मैं करते। कहीं झल्ली वाला उसी में लेट गहरी नींद लेता।

कहीं छुरोहरी लिए नाई ग्राहक की बाट जोहता। कहीं बीड़ी, सिगरेट बेचने वाला गल्ले की रेजगारी गिनता। कहीं कोई लड़का पकड़ा जाता चोरी करते हुए। कहीं आपस में मार-पीट होने लगती छोटे-छोटे दूकान-दारों में। कहीं पुलिस आ जाती, भीड़ तितर-बितर हो जाती। कहीं फिर समां बँध जाता और पुल की जवानी जोश पर आ जाती।

ऐसा था बम्बई का दादर पुल। एक दिन प्रभा वहाँ पहुँच गई, उसने देखी, उस पुल के नीचे बैठे खड़े लोगों की ग़रीबी। वह देखती रही और सोचती रही कि यह महानगरी है, यहाँ भी निर्धनता का राज्य है। जहाँ अमीर हैं वहाँ गरीब भी रहते, पलते हैं। कोढ़ी, अपाहिज और मँगते, इनका बाहुल्य है हर शहर में। यह दूसरों की दया पर जीते हैं, दूसरों का दिया पाते हैं। यह भी ईश्वर के पूत हैं। धरती इनकी माँ है। ये भी इन्सान हैं, उनके भी दिल और दिमाग़ है। ये भी अपना हक़ रखते हैं। जब इस नगरी में दौलत दोनों हाथ पसार नाचती है तो क्या यह ग़रीबी दूर नहीं हो सकती? हो सकती है, अगर समर्थ असमर्थ को अपनी बाहों में भर ले। अगर राजा रंक को गले से लगा ले। अगर सोना माटी से कह दे कि तू ही मेरी उत्पत्ति है।

प्रभा के विचार ऊँचे उठे। उसमें त्याग की भावना जागी। दान और धर्म की ओर उसका ध्यान गया। वह लौटी अपनी कोठी और धार्मिक प्रवृत्ति को लेकर अन्तर्द्वन्द की नदी में वह चली। उसे नदी के हर घाट पर धर्म का मन्दिर मिला। उसे हर किनारे पर धर्म के कगार और उस नदिया में जो पानी था वह दान का ही नीर था, धर्म का ही जल। वह सोचती रही, रात हो गई, और सोचते-ही-सोचते वह सो गई। सपने में उसने देखा कि वह एक बग्घी पर बैठी है। उसके सामने मिठाई का एक टोकरा है, फलों की भी डलिया रखी है और कपड़ों की एक गठरी। वह दोनों हाथों से दादर पुल के नीचे खड़ी ग़रीबों को दान दे रही है। लोग उसे दुआ दे रहे हैं। वे कह रहे हैं, तुम्हारी इच्छा पूरी करे भगवान्। तुम खूब फलो-फूलो। तुम्हारे सारे दुःख दूर कर दे परवरदिगार। तुम

दयावान् हो और दयावान् को भगवान् सारे सुख देता है।

जब आँखें खुलीं तो प्रभा चौंक गई। उसे ऐसा लगा, कि जैसे स्वप्न-देवता ने उसका मार्ग निर्दिष्ट किया है। मानों धर्म ने उसे आगाही दी है। मानो उसके अन्दर की नारी उसे स्वप्न दे गई है। वह सोचने लगी, तो यह सम्भव है कि मैं यही करूँ जो कुछ सपने में देखा है।

यह सोचते-सोचते प्रभा ने तिजोरी खोली, और सौ रुपये का एक नोट ले बाज़ार चली। उसने दो टोकरे मिठाई खरीदी, और लिए एक झल्ली-भर फल। उसने बनियानें खरीदी, छोटी और बड़ी। सचमुच वह बग्घी पर बैठी। दादर पुल के नीचे आई। उसने दोनों हाथों मँगतों को दान दिया। उसे खूब आशीषें मिलीं। फिर वह गई मुम्बा देवी। मुम्बा देवी शहर के बीचों-बीच में स्थित है और इतनी ऊँचाई पर कि वहाँ से सारा नगर दीख पड़ता है।

मुम्बा देवी में प्रभा ने मानता मानी कि राकेश आ जाय। वह किसी तरह मिल जाय तो मैं सोने का छत्र चढ़ाऊँगी, घी के दिये जलाऊँगी, और दण्डवत् करती हूँ माँ, मैं दादर से यहाँ तक घुटनों के बल आऊँगी। झण्डा चढ़ाऊँगी। बड़ा-सा घण्टा टँगवाऊँगी। माँ, मुम्बे! तुमने जिस तरह मुझे अपार धनराशि दी है, वैसे ही मेरी खाली झोली भर दो।

जब प्रभा दान-पुन्न करके लौटी तो उसके चित्त को थोड़ी-सी शान्ति मिली। वह सोचने लगी कि भजन में बल है, और भक्ति में साधना। धर्म में शांन्ति है और नियम—उपासना। आचरण जिस तरह मनुष्य के शरीर का आभूषण बनता है। धार्मिक प्रवृत्तियाँ वैसे ही लाती हैं उसमें अलौकिक परिवर्तन। तभी तो लोग धर्म की ओर झुकते हैं, उसे मानते हैं। कहते नहीं हैं। पुराने बुज़ुर्ग लोग कि धरती पर जब तक धर्म क़ायम है, वह हिल नहीं सकती, डुल नहीं सकती, प्रलय उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती। धर्म ही वह रूढ़ि है जिस पर परम्परा खड़ी है। धर्म ही वह गीत है जो हर आदमी गाता है, अपने आख़िरी पल में।...और धर्म देश की ही नहीं, समाज की ही नहीं; मर्यादा की रक्षा करता है। सदियों तक हिन्दुस्तान

गुलाम रहा। मुसलमान बादशाहों ने उस पर आघात किया; लेकिन फि
भी ज़िन्दा रहा वह। उसकी कड़ियाँ नहीं टूटीं और गुलामी की जंज़ी
अपने-आप टूट गई। मैं नित्य समुद्र स्नान करूँगी। भला सागर से पवि
और भी कोई जल हो सकता है। उसमें देश-देश की नदियाँ आती हैं,
गिरती हैं उसीके गर्भ में, तो मिलते हैं मोती। समुद्र देवता प्रभा क
पुकार सुन, उसका कल्याण कर। अब मुझमें धन का अहं नहीं।
भटकती हुई एक नारी हूँ।

इस तरह नियम बन गया, और प्रभा समुद्र नहाने जाने लगी। उसक
मन लगता था विसमा रोड के समुद्र में ही। वहाँ अधिक शान्ति रहती
जुहू और चौपाटी पर भीड़-भाड़ रहती। इसी लिए वह नित्य सवेरे निक
जाती। वह खड़ी होती घुटनों तक पानी में, लहरें आतीं, वह सरकत
जाती। फिर पीछे लौटती। वह सूरज का तर्पण करती। देर तक भज
गाती। तब उसकी उँगलियों के बीच सरकती रुद्राक्ष की माला। इस तर
प्रभा तपस्विनी बन गई थी, सन्यासिनी। वह वियोगिनी थी राकेश की
वह लक्ष्मी की बेटी नहीं, अब धर्म-परायणा हो रही थी।

३४

प्रभा ने सुना था कि बम्बई में योगेश्वरी की गुफा है। वहाँ हर दि
मेला-सा लगता है। सवेरे से लेकर साँझ तक भीड़ रहती है। दर्शनार्थी दूर
दूर से आते हैं। वहाँ जो सन्त-महात्मा रहते हैं, वे दिन-रात भजन कर
हैं। उसने सुना था, यह इतिहास भी कि पाण्डवों ने पहाड़ कीलक
यह गुफा बनाई थी। सो एक दिन वह गई। उसने देखा कि गुफा देख
में एक छोटी पहाड़ी-सी है। उसमें एक नहीं अनेक प्रवेश द्वार हैं। जगह
जगह बावड़ी हैं, जिनमें नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनी हैं। उनक

जैसा निर्मल जल पीने में अत्यन्त स्वादिष्ट है। वहाँ कबूतरों को
श्रय मिलता है। वहाँ साधुओं का जमघट लगता है। यात्री आते,
र महादेव के दर्शन करते। उन पर फूल-बताशे चढ़ाते। नारियल
तना बाहुल्य बम्बई में है, शायद भारत के दूसरे नगर में नहीं।
र पूजा, हर तिथि, हर त्योहार में नारियल चलता है। प्रभा ने
रियल चढ़ाया।
रबूज़ जिसे बम्बई में कलिंगड़ कहते हैं, इतना सस्ता मिलता है
सका नाम नहीं। योगेश्वरी की गुफा के सम्मुख ढेर-के-ढेर लगते
भा कभी पचास-सौ नारियल ख़रीद मँगतों में बाँटती। कभी कलिं-
ा करती सौदा। वह ग़रीबों को देती। रास्ते में जब आती तो
ही दीन-दुखियों को दान देती। यह स्थान उसे बहुत रमणीक
और अब उसका विश्वास हो चला था कि पापी से भी पापी
क्यों न हो? अगर वह पुण्य-स्थली पर पहुँच जाता है, तो उसका
अपने आप जाग उठता है। धर्म के नाम पर जो दिखावा करता
एक बार उसकी भी आँखें खुल जाती हैं। क्यों करते हैं, लोग तीर्थ।
ा यही कारण है।
प्रभा के अन्तर की नारी अपने में वाचाल हो उठी थी। उसका
र ही उससे बातें करता। उसके ज्ञान-चक्षु ही उसकी प्रज्ञा को कचो-
। उसकी छोटी-सी भूल ही उसे बार-बार धिक्कारती। प्रायश्चित्
के लिए विवश करती। वह दिन-रात सोचती और सोचती ही चली
ि कि आवेश में आदमी अन्धा हो जाता है। यह उचित नहीं, न्याय-
ा नहीं, जो क्रोध को पीले वही इन्सान है। जो बदले की भावना
मन में न पाले वही सज्ञान है। जो उन्नति होते हुए भी सिर झुका-
चले, वही सज्जन है। जो आखें मूंद कर नहीं, खोलकर चले और
आँखों से अच्छा-ही-अच्छा देखे; वही महात्मा है। गांधीजी के कथना-
र कि बुरा सुनो मत, बुरा करो मत, बुरा देखो मत। मेरे यहाँ भी
रे में एक चित्र टँगा है। उसमें तीन बन्दर बैठे हैं। एक के हाथ दोनों

कानों पर हैं, एक अपनी आँखें मूँदे है और एक मुँह पर हाथ रखे है। इसे ही कहते है अहिंसा और इसी के बल पर गांधीजी ने स्वराज्य हासिल किया था। हिंसा की नीति कभी निर्माण नहीं करती। प्रतिशोध कभी मनुष्यको विजयी नहीं बनाता। विश्वके प्राँगण में जो कुछ है सो शन्ति, सहनशीलता और शिष्टता।

इस तरह प्रभा एकाकिनी हो रही थी। उसे बम्बई का होटल 'ताज-महल' अच्छा नहीं लगता। जहाँ बलराज के साथ एक बार नहीं कई बार गई। उसे भाती थी योगेश्वरी की गुफा। उसे मेरिन-ड्राइव का समुद्री किनारा फूटी आँखों नहीं सुहाता और न दादर की चहल-पहल ही। उसे अच्छा लगता, एकान्त में अकेले में जब वह कमरे की किवाड़ें बन्द कर लेती। विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन जहाँ वह अक्सर जाती थी। अब उधर कभी मुँह भी नहीं करती। वह न जाती बलराज की कोठी, न मिलती रेवती, लीला और शीला से। वह मुम्बा देवी जाती तो पैदल। समुद्र नहाती तो पैदल और योगेश्वरी की गुफा जो शहर से काफ़ी दूर थी, वहाँ भी वह पैदल ही जाती।

प्रभा जितना संयम कर रही थी। जितना नियम से चल रही थी, उतना ही उसके अन्दर जम रहा था सत्य। विश्वास उसका साथी बन रहा था और आन्तरिक्ष उससे बार-बार पुकार कर कह रहा था कि प्रायश्चित करो प्रभा तुम्हारा यही प्रायश्चित है। तुम अपने अमीरी के साँप को कुचल डालो कि वह मरे नहीं, ज़िन्दा रहे; लेकिन केंचुल छोड़ दे। तुम प्रायश्चित की भट्टी में अपने को तपा लो, कुन्दन बना लो। तुम ज़िन्दगी को सरलता से भर लो। सरलता ही तुम्हें शान्ति देगी, सहृदयता ही तुम्हें जीवन और संयम तुम्हें देगा वह उपहार जो दुर्लभ है; जो अप्राप्य और जिसे विरले ही पाते हैं।

ऐसी थी प्रभा, ऐसी थी उसकी मनःस्थिति, और ऐसी थी उसकी गतिविधि। उसमें परिवर्तन आया तो ऐसा कि वह पत्थर से मोम बन गई और मोम जब सच्चाई की आँच में पिघलता है, तो उससे झूठे

ोती नहीं वनते । वे नक़ली नहीं कहे जाते, उनपर आव होती है । इस
रह यह तथ्य निकाला था प्रभा ने, कि जो कुछ है वह सत्य । जो कुछ
वह धर्म और सवसे वड़ा संयम ।

३५

कभी-कभी प्रभा इस विचार को लेकर चौपाटी या जुहू पहुँच जाती कि
ायद राकेश आया है । वहाँ कहीं वैठा हो । यह दोनों ऐसी जगह हैं,
हाँ भूले भटकों को सहज ही ढूंढ़ा जा सकता है । घर का रूठा भी यहाँ
ाता है, ज़िन्दगी से ऊवा भी । जव सूरज डूवने को होता और पश्चिम
क आकाश में लाल-लाल आभा नज़र आती । तव प्रभा खड़ी होती ।
चौपाटी पर, वह क्षितिज को देखती । धरती आकाश से वातें करती
और प्रभा अपने मन से । अनन्त आ जाता वसुधा का आँचल पकड़ने,
दोनों में गठ-वन्धन होता । दोनों एक हो जाते । तभी तो भूल जाते
दुनिया के लोग कि आदि क्या है ? अन्त क्या है ? अवसान क्या है और
इन्सान क्या है ? कोई-कोई यहाँ तक जिज्ञासा से भर जाता है, वह
वावरा हो कहने लगता है कि क्षितिज के उस पार क्या है ! इधर मृत्यु
है उधर ज़िन्दगी । इधर साँसें हैं उधर सरगम । यह सव तभी वोध होता
है, जव मनुष्य क्षितिज की ओर टकटकी लगा कर रह जाता है ।

कभी-कभी प्रभा पहुँच जाती रानीवाग । वहाँ वह वन्द पशुओं
को देखती और उस लम्वे चौड़े वाग में भी राकेश को ढूंढ़ने का प्रयत्न
करती । वह मुर्दा अजायव[illegible] और ज़िन्दा भी । वहाँ पर आने-
जाने वालों की भीड़ ही ल
साँझ को ही लौटती । वह
ुगाती । चीनी डालती, व

गोलियाँ वह तालाब में छोड़ती, जिसे रंग-बिरंगी मछलियाँ खातीं।···और कहाँ तक कहा जाय वह पेड़ पौधों को भी प्यार करती। वह कहती अपने अन्तर-वासी से बिना दुख के सुख का अनुभव नहीं होता। जब तक कलेजे में चोट नहीं लगती तब तक दर्द नहीं होता। जब तक आदमी कुछ खोता नहीं वह पाता नहीं।···और ऐसा ही सीधा-सा दस्तूर कि जब तक कोई रोता नहीं, उसे हँसी नहीं मिलती।

धर्म-परायणता के साथ-ही-साथ प्रभा में जो नई धुन समाई थी, जिसे सनक भी कहा जा सकता है। वह थी राकेश की खोज की सनक। वह उसे नित्य ढूँढती। बन्दरगाह पर भी कभी-कभी उसका चक्कर लगता और जब वह योगेश्वरी जाती तो एक-एक कन्दरा देखती। वह रात में तारों से पूँछती, उनसे बातें करती और फिर कहती, ढलती रात से कि देखो मैं सोई नहीं अभी जाग रही हूँ। सवेरे के साथ-ही-साथ मेरी मुँडेर पर कागा बोले। रूठा हुआ घर लौट आये। मैं सूर्य की अर्चना करूँगी। उसका अर्घ्य चढ़ाऊँगी। वह डूबने से पहले परदेशी को घर भेज दे।

किन्तु नित्य सवेरा होता, साँझ भी उतरती धरती पर और रात भी कहती अपनी कहानी—आज मैं काली हूँ, आज मैं गोरी। दोपहर अपने अस्तित्व का वर्णन करता और हर दिन कहता एक ही बात कि जब लगन लग जाती है तो कुछ भी कठिन नहीं रहता। मीरा की तरह प्रभा तुम्हें एक दिन तुम्हारा भगवान मिलेगा। मगर नहीं होता संतोष। जब तक अन्धे को आँखें नहीं मिलतीं और जब तक दुख का घाव भर नहीं जाता। प्रभा के कलेजे में जो जख्म बन गया था, वह नासूर हो रहा था। उसका उपचार केवल एक था राकेश—प्रभा की दुनिया, प्रभा का जीवन और उसका सर्वस्व।

प्रभा को राकेश की तलाश करने कई महीने हो गये। मगर कुछ भी पता नहीं चला। वह निराश नहीं हुई। निरन्तर प्रयत्नशील रही। धार्मिक रुचि भी उसकी उत्तरोत्तर बढ़ती ही रही, और एक आशा

की झलक उसे रोशनी दिखलाती रही कि कर्तव्य क्या है ? उसी पथ पर चलो। उसी की वेदी पर अपने को उत्सर्ग कर दो। त्याग महान् है। त्यागमयी बनने में सुख है। तपस्या ही आत्मोत्थान का मार्ग है और साधन वह जीवन-रेखा, जिसका रंग गहरा और गहरा होता जाता है जव साधक अपने को भूल जाता है।

कभी-कभी प्रभा सोचती कि कैसा होगा राजेन्द्र ? कहाँ होगा ? मैंने वड़ी भूल की जो उसका जीवन वरवाद कर दिया। उसे घर से दूर कर दिया। उसे वहिष्कार मिला। वह परिवार से निर्वासित हुआ। आखिर गया सवसे ऊव। उसने सवकी ओर से मुख मोड़ लिया। क्या खाता होगा ? कहाँ सोता होगा। क्या वह भागेगा नहीं। क्या उसे अपने भाई की सुधि नहीं आती। क्या इतना निर्मम हो गया वह, जो एक वार वलराज को देखने भी नहीं आया। वहिष्कार [illegible] लेकर उसके मन पर करारी चोट लगी। कभी तो मन [illegible] यह।

को धोखा देने वाले शहरों के स्टेशन पर मिलते हैं। लम्बी-चौड़ी सड़कों के किनारे बैठते। कोई देव स्थान हुआ तो वे वहाँ विराजते। वे हाथ देख कर पिछले जन्म का हाल बताते। कम-से-कम पाँच आने लेते। वे कवच बनाते, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र सब-कुछ करते। जैसा ग्राहक देखते, वैसे ही छुरे से मूँड़ते। वे कहते ला बेटा, रख ज्योतिषी के हाथ पर पाँच रुपये। मैं ऐसा यन्त्र दूँगा कि तेरी मनोकामना पूरी हो जायेगी।

यह तो श्रेणी हुई छोटी किस्म के पाखण्डियों की। जो पेशेवर किराये पर कमरा लेकर बैठते। उस पर बड़ा-सा रंग-बिरंगा साइन बोर्ड लगाते। प्रसिद्ध रमलाचार्य, प्रख्यात ज्योतिषी, हाथ दिखलाने की फ़ीस पाँच रुपये, कुण्डली दिखलाने की फ़ीस ग्यारह रुपये। भूत-भविष्य और वर्तमान, तीनों के वेत्ता। वे ऊँचे पैमाने पर चलते, ऊँचे ही ऊँचे लोग उनके पास पहुँचते। वे ग्राहक को ऐसा मूँड़ते कि फिर दुबारा वह साँस नहीं लेता। वे कहते जब पाँच रुपये ले लेते और हाथ देखते कि तुम पर शनि की दृष्टि है। तुम्हारा केतु भी खराब है। राहु तुम्हें घेर रहा है। ग्यारह रुपये और दो तो मैं केसर तथा कस्तूरी से लिख-कर एक यन्त्र बनाऊँगा। उच्चाटन होगा, परदेशी भागा चला आयगा। इसके बाद भी जब कार्य सिद्ध नहीं होता, ग्राहक फिर भागा आता तो वे कहते। रुपये इक्कीस खर्च होंगे मैं एक राज-यन्त्र बनाऊँगा। उसके लिए मुझे एक मन्त्र का पाँच हजार बार जाप करना पड़ेगा। ग्राहक मोटा हुआ और काम फिर भी पूरा न हुआ तो वे इक्यावन और एक-सौ-एक रुपये तक लेते हैं। इन ठगों के लिए कोई विधान नहीं। ये ठग खूब पूजे जाते हैं। ये हमारे ज्योतिष-शास्त्र के बरसाती मेंढक देश के कलंक। ये अपनी ठग-विद्या के बल पर जीते, दुनिया को चकमा देते और भोले-भाले लोग इन बिना पूँछ और बिना दाँतों के भेड़ियों के शिकार होते। ये रँगे सियार राम-नामी ओढ़ते, ग्राहक को देखकर राम-राम जपते। ऐसे ही एक के चक्कर में पड़ गई प्रभा। इसके पहले उसने कभी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था।

दादर पुल के लिए पहले ही वर्णन हो चुका है कि वह बम्बई का
क करिश्मा है। वहाँ भाँति-भाँति के लोग देखने में आते, ज्योतिषी,
लल, दाँतों और आँखों के डॉक्टर, तानसेन और मीरा, इसी तरह
श्रेणी के हर वर्ग के लोग यहाँ नज़र आते। एक दिन प्रभा जब गिटार
ट रही थी, तो एक ज्योतिषी उसके पास आया। उसने उसका माथा
ा, और फिर कुछ सोचकर बोला—"बड़ी भाग्यवान् हो बेटी, लेकिन
जकल तुम्हारा सितारा गर्दिश में है। सिर्फ़ दान-पुण्य से ही काम नहीं
लेगा। लाओ हाथ देखूँ।"

प्रभा कुछ भी नहीं बोल पाई। सहानुभूति के शिष्टाचार ने जैसे
पना जादू डाल दिया। वह निर्लिप्त-सी हो गई, निर्विकार। उसने चुप-
ाप हाथ आगे बढ़ा दिया और ज्योतिषी जी उसकी हस्त-रेखाओं की
रख करने लगे। वे हाथ देखते रहे और साथ-ही-साथ कहते रहे, कि
ड़े बाप की बेटी हो, भगवान् ने तुम्हें सब-कुछ दिया है। तुम किसी की
लाश में हो। रेखा यही बोलती है। है न यही बात।

"हाँ! बाबा मैं अपने भावी पति की खोज कर रही हूँ। उसका नाम
राकेश है। हम दोनों का व्याह होने वाला था कि अनबन हो गई। वह
लखपती का भाई था और मैं लखपती की बेटी। मैंने उससे बदला लेने
की कोशिश की। वह रूठकर चला गया। न जाने कहाँ गया? आप कुछ
बता सकते हैं कि कहाँ है और कब मिलेगा?"

प्रभा के मुँह से इतनी कहानी सुन, ज्योतिषी जी को बल मिल गया।
वे पुलकित होकर बोले—"सब जानता हूँ, सब बताऊँगा बेटा। रखो
बाबा के हाथ पर पाँच रुपये।"

...और जब प्रभा ने पाँच रुपये का नोट ज्योतिषी जी को थमा दिया,
तो वे बोले—"अपने मन में किसी फूल का नाम लो। हाँ! तुम्हारा नाम
क्या है?"

"प्रभा।"

"अच्छा, प्रभा बेटी तो फूल का नाम लिया।" यह कहने के साथ

ही ज्योतिषी जी एक टूटे हुए स्लेट के टुकड़े पर खड़िया से लिखने लगे, और लिखते-लिखते बोले, कि तुमने गुलाब का नाम लिया है न।"

अब प्रभा को विश्वास जमा। वह तपाक से बोल उठी—"हाँ! बाबा! आप ठीक कहते हैं। जल्दी बताइये कि राकेश कहाँ है? और कब मिलेगा?"

"ओ हो! कोई मुश्किल नहीं। अभी लो, अभी बतलाता हूँ। कुछ गुरु-दक्षिणा दो। ब्राह्मण का भला करो, बेटी तुम्हारा भी भला होगा। रोज फल और मिठाइयाँ बाँटती हो, सैकड़ों खर्च करती हो। बाबा को सिर्फ़ ग्यारह चाहिए, ज़्यादा नहीं।' रख बेटा मेरी पोथी पर। मैं अभी तुझे भविष्य बताता हूँ।"

ज्योतिषी के इस कथन पर प्रभा ने सहज ही ग्यारह रुपये निकाल, उसकी पोथी पर रख दिये। फिर जिज्ञासु हो, उसकी ओर टक-टकी लगा-कर देखने लगी। पंडित ने पोथी खोली, कुछ आँकड़े उँगलियों पर गिने, कुछ स्लेट पर लिखे। फिर उनका गुणा, भाग भी किया और राम-राम वे तो छोटा-सा मुँह बनाकर बोले—"कार्य जल्दी सिद्ध नहीं होगा। इसके लिए तुम्हें जाप कराना पड़ेगा। ज़्यादा नहीं सिर्फ़ पचास हज़ार, कम-से-कम दस दिन लगेंगे, और ग्यारहवें दिन तुम्हारा राकेश तुम्हारे पास आ जायगा। एक दिन के पाँच रुपये हुए। बाबा को इक्यावन चाहिएँ। सोच लो, समझ लो। इच्छा हो अभी दे दो मरजी हो कल दे जाओ और नहीं करवाना है तो कोई बात नहीं। बाबा फिर भी तुम्हें आशीर्वाद देते हैं।"

प्रभा की समझ में एक दम से यह नहीं आया। वह वहाँ से चल दी, किन्तु ज्योतिषी निराश नहीं हुए, वे जानते थे कि मुर्ग़ी मोटी है। चिड़िया फिर फँसेगी। यहाँ तो रोज़ आती ही है। आज ही सोलह दे गई। कहाँ के कम हैं, तीन दिन की मज़दूरी।

...और प्रभा घर पर आ ज्योतिषी के प्रति सोचने लगी, कि अगर यह पण्डित इतना ज्ञानी है तो पुल के नीचे क्यों बैठता है? क्या इक्यावन

रुपये दे दूँ उसे ? मेरे लिए सौ-पचास क्या, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता शायद काम बन जाय। बहुत-से लोग छिपे पड़े रहते हैं, दुनिया उनकी क़द्र नहीं करती। इस देश में गुदड़ी के लालों की कमी नहीं। यहीं कमल खिलता है और वह भी कीचड़ में।

प्रभा ने बहुत सोचा, बहुत विचारा, और दूसरे ही दिन पहुँच गई वह दादर पुल के नीचे। तब ज्योतिषी जी एक [illegible] बाबू को [illegible] बना रहे थे। वे वशीकरण करवाने आये थे, अपनी प्रेमिका के लिए रुपये पाँच दे चुके थे। बाबाजी और माँग रहे थे। प्रभा को देखते-ही बेचारे ग्राहक की जान बची, बाबाजी बोले जाओ, तुम्हारा काम हो जायगा। तब प्रभा उनके पास गई। [illegible] किये। फिर घर आ गिन-गिनकर दिन काटने लगी।

…और ग्यारहवाँ दिन जब बीता तो प्रभा की उलझन बढ़ी। वह [illegible] भागी गई दादर पुल के नीचे। किन्तु ज्योतिषी जी जा चुके थे, [illegible] चुकी थी। सवेरे वह जब उनके पास पहुँची, तो वे बोले, कि बहुत कठिन योग है बेटी। राकेश पूरब की ओर है, वह मरणासन्न है, वहाँ किसी तरह नहीं आ सकता। तुम्हें उसके लिए महामृत्युंजय का जाप कराना होगा वह भी एक लक्ष, समझो कि नहीं—एक लाख। हम तीन दिन में पूरा कर देंगे। रुपये भी ज्यादा नहीं लेंगे, केवल-मात्र एक-सौ-पाँच। चिन्ता न करो बेटी, मैं उसे मौत के मुँह से निकाल लाऊँगा, [illegible] नहीं।

अब प्रभा रोने लगी और रोते-रोते बोली— [illegible] आज से ही जाप शुरू कर दो। एक-सौ-पाँच नहीं [illegible] सौ-पाँच।"

वह कहने के साथ ही प्रभा ने [illegible] दूसरा पाँच का नोट ज्योतिषी जी को दे, वह हाथ जोड़कर बोली— "लीजिये बाबा और काम आरम्भ कर दीजिये।"

"कल्याण हो बेटी, कल्याण हो। [illegible]"

ज्योतिषी जी का यह आशीष ले प्रभा घर आई, और इक्कीसवें दि वह फिर उनके पास पहुँची। तब तो उसे देखते ही बाबाजी ने अपने सिर पर दोनों हाथ दे मारे। वे अफ़सोस करते हुए बोले—"कैसे कहूँ बेटी? कैसे तुम्हें बताऊँ? एक लाख जप पूरा भी नहीं हो पाया और राकेश इसके पहले ही दुनिया से चल बसा।"

प्रभा रोने लगी और रोते-ही-रोते उठकर चली आई। वह दो दिन तक कोठी से बाहर नहीं निकली और सोचने लगी, कि मैं अब नहीं रहूँगी बम्बई में, देहली जाऊँगी, जहाँ जन्मी, जहाँ उपजी। मेरा मन यहाँ से उचट गया। मैं अपनी विजय का हार पहनने आई थी और बदले में मिली मुझे पराजय। मुझे पराजय भी मन्जूर थी, क्यों किनारी युग-युग से झुकती चली आई है—पुरुष के सम्मुख। मुझे नहीं पता था, कि जो नाटक मैं खेलने जा रही हूँ, पूरा होने से पहले-ही यवनिका पतित हो जायगी। ड्राप-सीन हो जायगा। अब···अब तो कुछ भी नहीं रहा, सारा ल ही खत्म हो गया।

इस प्रकार प्रभा ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह देहली चली जायगी, अब बम्बई में नहीं रहेगी।

३७

कोठी में सामान बहुत था, इसलिए प्रभा ने उसे खाली नहीं की। किन्तु उसने बाँध दिया बिस्तर और विक्टोरिया टरमिनस पहुँची। तब दिन का पहला पहर था। बोरीबन्दर स्टेशन जैसे हँस रहा था उसका फ़र्श चमकता, उसमें आईना-जैसा मुँह दिखाई देता। उस पर चहल-पहल थी, बूट बजते, सैण्डिलें रपटतीं। कुलियों के गोल बैठे बीड़ी पीते। कहीं साहब-मेम गिट-पिट, गिट-पिट अंग्रेजी में बातें करते। कहीं कोई फैशने-

विल वाला मानों उस फ़र्श पर अपनी सैण्डिलों से टाइप करती। कहीं विदेशी लोग नज़र आते। इनमें से अधिकांश फ्रांसीसी, ब्रिटिश और अमेरिकन होते। कहीं लाइन क्लियर होता। घन-घनाकर घण्टा बजता। कहीं रेल देती सीटी तो कहीं लाउड-स्पीकर ब्राडकास्ट करता। सतर-अप वाम्बे देहरादून एक्सप्रेस अमुक नम्बर के प्लेटफार्म से अमुक समय रवाना होगी। वाम्बे वड़ौदा सैन्ट्रल इण्डिया रेलवे इतने बजकर इतने मिनट पर इस प्लेटाफ़र्म पर आ रही है। मद्रास एक्सप्रेस तीन घण्टे लेट है।

किन्तु प्रभा का ध्यान किसी ओर नहीं जाता। वह न कुछ देखती न सुनती। वह भूल ही गई थी कि उसे टिकट लेना है देहली जाने के लिए। वह बैठी रही, विगत का इतिहास मन-ही-मन मंथती रही। उस मन्थन में निकला सार-तत्व यह कि तुम्हारी जिन्दगी केवल कोरा दूध है, उसमें मक्खन का लेशमात्र नहीं। तुम जिन्दा अवश्य हो; लेकिन ऐसी जिन्दगी का कोई मूल्य नहीं। चली जाओ प्रभा। जब अपने ही घर में खुद आग लगाकर आदमी तमाशा देखता है तो उसकी यही गति होती है। पहले वह तमाशा देखता है और फिर तमाशा स्वयं बन जाता है। छोटे-छोटे तमाशों का ही यह समूह है दुनिया का मेला। बस, जाओ। तुम्हारे मन में अब मातम के गीत गाये जा रहे हैं। जनाज़े उठ रहे हैं। मेला वही देखता है, जो खुशनसीब होता है।

प्रभा ने आँखें मूंद लीं। जब चेत हुआ तो स्वतः अपने से कहने लगी—चलो, प्रभा उठो, तुमने हवाई जहाज़ का सफ़र किया। तुम रेल में भी प्रथम श्रेणी में ही चढ़ीं। लेकिन आज थर्ड-क्लास में सफ़र करो, और अनुभव करो कि ग़रीबी क्या है, और उसका स्वाद क्या है?"

इस तरह प्रभा उठी। उसने तीसरे दर्जे का देहली का टिकट लिया। फिर कुली पर सामान रखवा, वह वाम्बे देहली एक्सप्रेस पर बैठी। यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्त के वाद देश में रेल-उद्योग ने काफ़ी प्रगति की है, लेकिन फिर भी जनता कभी-कभी चिल्लाती है और कहती है [illegible]

दर्जे के डिब्बों में पंखे लग गये हैं। मूत्रालय और शौचालय भी अधिक सुविधापूर्ण हैं। लेकिन सबसे बड़ी कमी यह है कि जिस ट्रेन में दस-बारह बोगियाँ जुड़ती हैं। उसमें प्रथम और द्वितीय श्रेणी के डिब्बे, लगेज और डाक के डिब्बे, इसके बाद रिज़र्व, फिर लेडीज़, तो बेचारे तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए बचते हैं तीन या चार डिब्बे। जब कि निन्यानवे प्रतिशत भारतीय जनता तृतीय श्रेणी में ही सफ़र करती है। गाड़ियों में डिब्बों की तादाद और बढ़ाई जाय, खास तौर से तीसरे दर्जे के। रेल-विभाग का इस ओर ध्यान देना आवश्यक है।

सो इस तरह उस बोगी में भी थी बड़ी भीड़, जिसमें प्रभा बैठी थी। आदमियों पर आदमी गिर रहा था। डिब्बा खचा-खच भर रहा था। प्रभा बैठी थी न जाने कैसे? एक मोटी मारवाड़िन उसे कुचल रही थी। किसी तरह सीटी बजी, गार्ड ने भी उसका जवाब अपनी सीटी से दिया। फिर हिली हरी झण्डी, मुसाफ़िर जैसे सजग हो गये, सतर्क हो गये। प्लेट-फ़ार्म पर भी हल-चल मच गई। खड़े हुए लोग चढ़ने के लिए दौड़ने लगे।

सिर पर सामान लेकर भागे। खोमचे वाले चिल्लाये, बाबूजी जल्दी, गाड़ी छूट रही है।

...और ट्रेन छूट गई। वह छक-पक, छक-पक करती हुई आगे बढ़ने लगीं। यात्री संयत हुए। मुसाफ़िर अपनी-अपनी जगह बैठ गये। कोई सामान रखने वाली ऊपर की सीट पर बैठा। किसी ने वहीं पैर पसार दिये और किसी को जगह नहीं मिली तो, वह खड़े-का-खड़ा ही रहा। किसी को बर्थ मयस्सर नहीं हुई तो वह फ़र्श पर ही बैठ गया। प्रभा ने भी एक अंग्रेजी की पॉकिट बुक ली थी। वह उसे खोलकर पढ़ने लगी। हर मुसाफ़िर अपनी-अपनी धुन में था। रेल सफ़र तय कर रही थी। जब कोई सिगनल आता, ट्रेन पटरी बदलती तो पटरियाँ खन-खनातीं, खट-खट बजतीं। प्रभा का ध्यान बँट जाता, वह बाहर की ओर देखने लगती।

"उँह! उँह! आह! उँह-आह!"

प्रभा ध्यान से सुनने लगी। अरे ! यह काँख कौन रहा है ? किसी
के कराहने की आवाज़ है। कोई बीमार है क्या ? उसने पुस्तक बन्द कर
दी और इधर-उधर देखने लगी। आवाज़ उत्तरोत्तर वृद्धि की ओर अग्र-
सर होती गई। अन्य यात्री भी चौंके, सभी के कान खड़े हुए। ट्रेन पूरी
रफ़्तार में दौड़ रही थी। वह हवा से बातें करती। कोने में खड़ा एक
भिखारी ढपली बजाकर गा रहा था—"तेरे द्वार खड़ा भगवान् भगत
भर दे रे झोली।"

और दर्दीली आवाज़ अलग ही उठ रही थी—"आह ! उँह !
पानी ! अरे राम ! हे ईश्वर ! आह पानी !"

अब प्रभा का मन नहीं माना। वह उठकर खड़ी हो गई। उसने
पूरी बोगी में निगाह दौड़ाई, उसे कोई दिखाई नहीं दिया। तब झाँकी
बर्थ के नीचे जिस पर बैठी थी। वहाँ सचमुच एक आदमी लेटा था।
जिसकी केवल नाक खुली थी और सारे मुंह पर पट्टियाँ बँधी थी। वह
हाथ पटकता, पैर पीटता और पानी-पानी की रट लगाये था।

"ऐ ! मिस्टर उठकर बैठिये, कहाँ जाना है आपको। आपके साथ
कोई नहीं।"

किन्तु प्रभा की इस बात का उस व्यक्ति ने कुछ भी जवाब नहीं
दिया। उसने ज़ोर से फ़र्श पर हाथ पटका और कराहा—"पानी।"

प्रभा ने बहुत कुछ हिलाया-डुलाया, किन्तु वह आदमी नहीं बोला।
अब लोगों की वहाँ पर भीड़ लग गई। वे पूछने लगे कौन है ? क्या है ?
और तभी आ गया एक छोटा-सा जंकशन। ट्रेन रुकी, प्रभा नीचे उतरी।
वह लोटे में पानी लाई और घायल के मुँह पर की पट्टी तनिक हटा उसके
मुँह में धीरे-धीरे जल डालने लगी। "हुचुर-हुचुर" करता हुआ वह
आदमी क़रीब आधा लोटा पानी पी गया। तब प्रभा ने छुआ उसका
हाथ, वह आग-सा जल रहा था।

"एँ ! इतना तेज बुखार। यह आदमी है कौन और कहाँ जा
रहा है ?" प्रभा ने अस्फुट स्वर में यह कहा। फिर लोगों की सहायता

ने उस आदमी को बर्थ पर लिटाया। उसने एक नहीं अनेक प्रश्न कि
किन्तु बीमार कुछ नहीं बोला।

भीड़ में चख-चख मच गई। लोग अपनी-अपनी कहने लगे औ
प्रभा सकते की हालत में खड़ी रही। उसे याद आने लगी ज्योतिषी
बातें, कि महामृत्युञ्जय का जाप पूरा होने से पहले ही राकेश दुनि
से चल बसा। आह! कितनी पीड़ा मिली होगी उसे। कितना क
हुआ होगा। प्राण सहज ही नहीं निकलते। मरते समय आदमी को ब
तकलीफ़ होती है।

ट्रेन छूट चुकी थी। वह फिर लम्बे-लम्बे डग भर रही थी। ब
बीमार ज्यों-का-त्यों पड़ा था और प्रभा संज्ञा शून्य-सी खड़ी थी
निकट ही बैठी एक भद्र महिला ने उसका हाथ पकड़ा और सहृदयता
साथ बोली कि बैठ जाओ बहन, खड़ी कब तक रहोगी।

३ ट

बीमार बार-बार हाथ पैर पटकता। वह घर-घर अपनी देह ऐंठ
और उसकी जीभ निकल आती बाहर। वह जैसे लकड़ी हो रही थी
उसका रंग स्याह पड़ रहा था। प्रभा उसकी दयनीय स्थिति देख अप
आँखों में आँसू भर लाई। वह मन-ही-मन सोचने लगी कि इस आद
को अवश्य बहुत कष्ट है। शायद यह बोल नहीं पाता। पहले तो पान
पानी की रट लगाये था और अब ख़मोश है। क्या करूँ? इसे रेल
के डॉक्टर को दिखलाऊँ! कर्त्तव्य तो यही कहता है कि जहाँ तक ब
सके नेकी करना चाहिए। नेकी नेक राह और अब मैं करूँगी भी क्या
मेरा धन मेरे लिए व्यर्थ है। जब उसका खर्च करने वाला ही दुनि
में नहीं रहा, तो मैं भी कर दूँगी उसका दान। धर्मशाला बनवा दूँगी

और कन्याओं के व्याह में दहेज दूंगी। विद्यार्थियों को आर्थिक सहा
दूंगी। विधवा-मण्डल खोलूंगी। जिसमें अनाथ विधवाएँ आश्रय पाएँ
जब तक जिऊँगी, राकेश के नाम पर नित्य प्रति दान करूँगी। एक
ट्रेन, मैं डॉक्टर को बुलवाती हूँ। खर्च कर दूंगी पचास-सौ रुपये।
लिए तो लाख-पचास हज़ार भी तो कुछ नहीं।

रोगी की हालत क्षण-पर-क्षण बिगड़ती जा रही थी। अब उ
वाणी मूक हो चली थी। उसकी ज़बान लड़खड़ाती, उसके हाथ
काँपते। उसके मुँह से आता सफ़ेद-सफ़ेद झाग जो इस बात का
चायक था कि अन्त निकट है। बीमार जा रहा है और-तो-और अब
रोने लगी। किसी तरह डेढ़ घण्टे बाद अगले जंकशन पर गाड़ी रु
प्रभा दौड़ी-दौड़ी गई, वह रेलवे के डॉक्टर को लाई। डाक्टर ने
ही अपनी फ़ीस ली और परिक्षण करके बतलाया कि इस आदमी
ज़हरवाद हो गया है। यह चन्द घण्टों में ही मर जायेगा। आप फ़
उतर जाइये, अगले जंकशन भोपाल में। इसे अस्पताल में भ
करवाइये। इसके जख्म गहरे हैं, इसीलिए टिटनस हो गया।

अब प्रभा सोचने लगी कि मेरा देहली जाना उचित नहीं। मैं भो
मैं ही उतर जाऊँ। इस आदमी को हिल्ले से लगाऊँ। उसकी मौ
हो। इसकी ज़िन्दगी वापस मिल जाय। बड़ा पुण्य होगा अगर इ
जान बच गई।

ट्रेन फिर चलने लगी चालीस मील फ़ी घण्टे की रफ़्तार में,
सर कर पेड़ उसके सामने से गुज़र जाते। तार के जो खम्भे गड़े थे
एक-एक करके जैसे दौड़ते-सरकते जाते। उन पर बैठे थे नीलकंठ प
कहीं पीली चोंच वाली मैनिया और कहीं पिड़कुली पी-पी कर रही
कहीं बोल रहा था, कौआ काँव-काँव और ट्रेन भागी चली जा
थी। छोटे-छोटे स्टेशन आते। सिगनल झुका मिलता और प्लेट
पर खड़ा हुआ पैंट-मैन वह हरी झण्डी हिलाता और गाड़ी पूरी र
में भागती चली जाती।

किसी तरह भोपाल जंक्शन आया। गाड़ी रुकी और प्रभा उतर गई। वह स्टेशन मास्टर से मिली, स्ट्रेचर आया और बीमार नीचे उतारा गया। उसने बम्बई से लेकर भोपाल तक का उसका किराया चुकाया। फिर वह गवर्नमेण्ट हॉस्पिटल गई। उस रोगी को भरती करवाया। वहाँ डाक्टरों ने कहा कि इसे सेप्टिक (ज़हरवाद)हो गया है। अस्पताल के स्टोर में इस समय टिटनेस के इन्जेक्शन नहीं। आप बाज़ार से लाइये। ये तीन इन्जेक्शन क़रीब छै-सौ रुपये के आएँगे।

ये थी सरकारी अस्पतालों की व्यवस्था। जहाँ आये दिन ड्यूटी फ़्री का माल आता है। कोई दिन खाली नहीं जाता, जिस दिन दवाइयाँ न आएँ। कभी यहाँ से कभी वहाँ से। महीने में चैक कटते है, जनता का पैसा जाता है, और उसको मिलता है मिक्सचर के नाम पर पानी। मलहम के नाम पर वैसलीन पीली या सफ़ेद और पुड़ियों के नाम पर सोडा-बाई-कार्ब या मिल्क सुगर। दवाइयाँ आतीं स्टोर में रखी जातीं और भीतर-ही-भीतर ग़ायब हो जातीं। कोई ध्यान नहीं देता। कोई नहीं देखता। यह जनता का राज्य है, कोई अकेली हुकूमत नहीं। यह प्रजा-तन्त्र है, डिक्टेटर-शिप नहीं। यहाँ तक देखा गया है कि बच्चा छत से गिरा, उसकी बाँह टूट गई है। माँ-बाप लेकर अस्पताल दौड़े। वहाँ पट्टी ही नहीं, प्लास्टर भी नहीं, डॉक्टर भी नहीं। मालूम हुआ डॉक्टर की ड्यूटी ख़त्म हो चुकी है, और अस्पताल के स्टाक में न प्लास्टर है न पट्टियाँ, कम्पाउंडर ने बतलाया। माँ-बाप पट्टियाँ ख़रीद लाये। अब डॉक्टर उसकी छुट्टी थी, उसे चाहिए दस रुपये, तब आकर वह प्लास्टर बाँधे। हर शहर में हर कस्बे में जितने सरकारी अस्पताल हैं, सबमें यही छीछा-लेदर है।

प्रभा के पास अधिक रुपये नहीं थे। उसने सर्राफ़े बाज़ार में जा एक हीरा बेचा। फिर इन्जेक्शन ला डॉक्टरों के सुपुर्द किया। बीमार के सुई लगी। उसे कुछ आराम मिला। तब डॉक्टर ने यह बतलाया कि इस आदमी के चेहरे पर गहरे-गहरे घाव हैं। इसका ऑपरेशन होगा।

समय बहुत लगेगा। पट्टी कहीं जाकर खुलेगी एक महीने बाद, लेकि[न]
सबसे पहले तो यह जरूरी है, कि मौत के खतरे से बाहर हो।

दिन में दो इन्जेक्शन लगे। रात में भी दो लगाये गये। प्रभा बर[ाबर]
बर जागती रही। उसने अपना सामान रख दिया था होटल के [एक]
कमरे में। उसने कुछ खाया-पिया नहीं। ऐसा उसमें सेवा-भाव जागा।
सवेरा हुआ, सूरज की पहली किरण फूटी। बीमार की स्थिति कुछ-कु[छ]
नियन्त्रण में आ चुकी थी। प्रभा चाहती थी कि इसके मुँह पर की पट्टिय[ाँ]
खुले। मैं इसे देखूं कि यह कौन है? अब मैं सेवा ही करूँगी यह [मेरी]
भूल की भी। जीवन-भर यही वृत्ति अपनाये रहूँगी। यह बोले तो इस[से]
पूछें कि तुम कौन हो? कहाँ रहते हो? इसके घर वालों को सूचन[ा]
देदूं। बेचारा गरीब कहाँ से कहाँ आकर मुसीबत में पड़ गया।

तीन दिन बीत गये और बीमार मौत के खतरे से बाहर हो गया।
उसने डॉक्टरों से पूछा कि किसने मुझपर इतनी दया की, वह रहम दि[ल]
कौन है? इस पर प्रभा पेश हुई। बीमार ने उससे सारे का सारा परि[च]
चय प्राप्त किया, और अपने लिए बोला कि वह एक बदनसीब है। संसार
में अकेला। उसे जिन्दा नहीं रहना चाहिए; मर जाता तो अच्छा था।

इस पर प्रभा ने उसे बहुत समझाया। वह बोली—"जिनका को[ई]
नहीं होता है-धरती उनकी माँ होती है। जिनके सहारे की डोर टूट जाती
है, उन्हें भगवान् का सहारा मिलता है। जो बदनसीब होते हैं, वे ही
तो ईश्वर के प्यारे होते हैं। संयोग की बात उस आग वाले ने मुझे
भेज दिया और तुम्हारी जान बच गई। ऐसे ही समझ लो कि जब तक
समय नहीं आता, कोई काम नहीं होता है। मौत माँगने से नहीं मिलती
और न कोई अपनी इच्छानुसार मर ही सकता, [illegible]
मेरे पास काफी दौलत है। मैं तुम्हारा [illegible]
यह मेरा धर्म ही नहीं, मेरा कर्तव्य है। मैं [illegible]

प्रभा की सहानुभूति भरी बातों ने बीमार को विश्वास [illegible]
किया। वह बोला—"हूँ। आप ठीक कहती हैं। आप [illegible]

किसी तरह भोपाल जंक्शन आया। गाड़ी रुकी और प्रभा उतर गई। वह स्टेशन मास्टर से मिली, स्ट्रेचर आया और बीमार नीचे उतारा गया। उसने बम्बई से लेकर भोपाल तक का उसका किराया चुकाया। फिर वह गवर्नमेण्ट हॉस्पिटल गई। उस रोगी को भरती करवाया। वहाँ डाक्टरों ने कहा कि इसे सेप्टिक (जहरबाद)हो गया है। अस्पताल के स्टोर में इस समय टिटनेस के इन्जेक्शन नहीं। आप बाज़ार से लाइये। ये तीन इन्जेक्शन क़रीब छै-सौ रुपये के आएँगे।

ये थी सरकारी अस्पतालों की व्यवस्था। जहाँ आये दिन ड्यूटी फ़्री का माल आता है। कोई दिन ख़ाली नहीं जाता, जिस दिन दवाइयाँ न आएँ। कभी यहाँ से कभी वहाँ से। महीने में चैक कटते है, जनता का पैसा जाता है, और उसको मिलता है मिक्सचर के नाम पर पानी। मलहम के नाम पर वैसलीन पीली या सफ़ेद और पुड़ियों के नाम पर सोडा-बाई-कार्ब या मिल्क सुगर। दवाइयाँ आतीं स्टोर में रखी जातीं और भीतर-ही-भीतर ग़ायब हो जातीं। कोई ध्यान नहीं देता। कोई नहीं देखता। यह जनता का राज्य है, कोई अकेली हुकूमत नहीं। यह प्रजा-तन्त्र है, डिक्टेटर-शिप नहीं। यहाँ तक देखा गया है कि बच्चा छत से गिरा, उसकी बाँह टूट गई है। माँ-बाप लेकर अस्पताल दौड़े। वहाँ पट्टी ही नहीं, प्लास्टर भी नहीं, डॉक्टर भी नहीं। मालूम हुआ डॉक्टर की ड्यूटी ख़तम हो चुकी है, और अस्पताल के स्टाक में न प्लास्टर है न पट्टियाँ, कम्पाउंडर ने बतलाया। माँ-बाप पट्टियाँ ख़रीद लाये। अब डॉक्टर उसकी छुट्टी थी, उसे चाहिए दस रुपये, तब आकर वह प्लास्टर बाँधे। हर शहर में हर कस्बे में जितने सरकारी अस्पताल हैं, सबमें यही छीछा-लेदर है।

प्रभा के पास अधिक रुपये नहीं थे। उसने सर्राफ़े बाज़ार में जा एक हीरा बेचा। फिर इन्जेक्शन ला डॉक्टरों के सुपुर्द किया। बीमार के सुई लगी। उसे कुछ आराम मिला। तब डॉक्टर ने यह बतलाया कि इस आदमी के चेहरे पर गहरे-गहरे घाव हैं। इसका ऑपरेशन होगा।

समय बहुत लगेगा। पट्टी कहीं जाकर खुलेगी एक महीने बाद, लेकिन सबसे पहले तो यह ज़रूरी है, कि मौत के ख़तरे से बाहर हो।

दिन में दो इन्जेक्शन लगे। रात में भी दो लगाये गये। प्रभा बराबर जागती रही। उसने अपना सामान रख दिया था होटल के एक कमरे में। उसने कुछ खाया-पिया नहीं। ऐसा उसमें सेवा-भाव जागा। सवेरा हुआ, सूरज की पहली किरण फूटी। बीमार की स्थिति कुछ-कुछ नियन्त्रण में आ चुकी थी। प्रभा चाहती थी कि उसके मुँह पर की पट्टियाँ खुले। मैं इसे देखूँ कि यह कौन है? अब मैं सेवा ही करूंगी राह की धूल की भी। जीवन-भर यही वृत्ति अपनाये रहूँगी। यह बोले तो इससे पूछें कि तुम कौन हो? कहाँ रहते हो? इसके घर वालों को सूचना देदूं। बेचारा ग़रीब कहाँ से कहाँ आकर मुसीबत में पड़ गया।

तीन दिन बीत गये और बीमार मौत के ख़तरे से बाहर हो गया। उसने डॉक्टरों से पूछा कि किसने मुझपर इतनी दया की, वह रहम दिल कौन है? इस पर प्रभा पेश हुई। बीमार ने उससे सारे का सारा परिचय प्राप्त किया, और अपने लिए बोला कि वह एक बदनसीब है। संसार में अकेला। उसे जिन्दा नहीं रहना चाहिए; मर जाता तो अच्छा था।

इस पर प्रभा ने उसे बहुत समझाया। वह बोली—"जिनका कोई नहीं होता है-धरती उनकी माँ होती है। जिनके सहारे की डोर टूट जाती है, उन्हें भगवान् का सहारा मिलता है। जो बदनसीब होते हैं, वे ही तो ईश्वर के प्यारे होते हैं। संयोग की बात उस ऊपर वाले ने मुझे भेज दिया और तुम्हारी जान बच गई। ऐसे ही समझ लो कि जब तक समय नहीं आता, कोई काम नहीं होता है। मौत माँगने से नहीं मिलती और न कोई अपनी इच्छानुसार मर ही सकता, मन छोटा न करो। मेरे पास काफ़ी दौलत है। मैं तुम्हारा अच्छे-से-अच्छा इलाज करूंगी, यह मेरा धर्म ही नहीं, मेरा कर्त्तव्य है। मैं उसे पालन करूंगी।"

प्रभा की सहानुभूति भरी बातों ने बीमार को विशेष प्रभावित नहीं किया। वह बोला—"हूँ। आप ठीक कहती है। आप दया की देवी

हैं। जिन्हें ज़िन्दगी में सुख मयस्सर नहीं होता है, वे ही तो दरिया-दिल बनते हैं। बहुत-बहुत धन्यवाद। लेकिन खोटा भाग्य किसी की दया से नहीं बदलता और न रुपया पैसा ही उसमें परिवर्तन ला सकता है।"

इस तथ्य से प्रभा ने यह समझा कि यह आदमी एहसान नहीं मानता। शायद इसीलिए इसकी यह गति हुई। खैर मुझे क्या करना है? नेकी कर कुएँ में डाल। हातिमताई का यह सिद्धान्त मेरा उसूल बन चुका है। मैं यही करूँगी, और यहाँ तक नर्म होकर चलूँगी, कि अगर मेरे गाल पर कोई थप्पड़ मारता तो मैं विरोध न कर दूसरा गाल भी उसके सामने कर दूँगी। अच्छा हो जाय यह आदमी अपने घर जाय। मुझे कुछ नहीं पूछना है कि कौन है और कहाँ रहता है?

इस तरह प्रभा उस बीमार से बहुत कम बोलती। हाँ, उस पर वह रुपया पानी की तरह खर्च ज़रूर कर रही थी। बीमार ज़हरबाद से मुक्त हो चुका था। अब उसके ऑपरेशन की तैयारी थी। जिसके लिए प्रभा ने अपनी सहमति डॉक्टरों को देदी थी। वह सोच रही थी कि ईश्वर ने उसे सेवा का यह अच्छा अवसर दिया है। लोग मौक़ा ढूंढते हैं। अवसर की ताक में रहते हैं, और यहाँ तो मुंह-माँगी मुराद मिली। ईश्वर इसे जल्दी स्वस्थ कर दे।

बीमार का उपचार चल रहा था। प्रभा उसके लिए निरन्तर प्रयत्न-शील थी। वह होटल में रह रही थी। उसका खर्च अलग था। धीरे-धीरे एक सप्ताह हो गया। तीन दिन बाद ऑपरेशन की तारीख़ थी।

३९

अपरचित बीमार के ऑपरेशन का सारा खर्च प्रभा ने अपने सिर पर ओटा। किसी तरह वह दिन आया, जब शल्य-चिकित्सा के लिए उसे

ऑपरेशन-थियेटर में ले जाया गया। प्रभा बाहर बैठी। तीन घण्टे लग गये। कमरे के किवाड़ नहीं खुले। चार डॉक्टर, कई कम्पाउण्डर, सबके-सब अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद थे। मरीज़ को क्लोरोफ़ार्म सुंघाया गया।

इधर ऑपरेशन-रूम में शल्य-क्रिया का कार्यक्रम चल रहा था, और उधर बाहर बेन्च पर बैठी प्रभा सोच रही थी कि देखो विधि का विधान और होनहार। इस आदमी के चोट और कहीं नहीं लगी, सिर्फ़ चेहरा ही बिगड़ गया। मुँह पर गहरे-गहरे घाव आखिर यह कैसे लगे? कहीं गिर पड़ा, या अचानक कोई चोट लग गई! यह गाड़ी में कैसे आया? इसे वहाँ कौन लिटा गया? स्वभाव का रूखा है, तभी शायद सहयोग से वञ्चित रहा। जिनकी ज़बान में रस नहीं होता। जो अच्छा और मीठा बोल नहीं पाते, वे कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते, दुनिया उनकी उपेक्षा ही करती है। अरे, कहाँ बहक गई मैं; मुझे इन बातों से क्या मतलब? मुझे अपना कर्त्तव्य देखना है।

प्रभा जब सजग हुई तो उसकी दृष्टि फिर ऑपरेशन-रूम के किवाड़ों की ओर गई। वे अब भी बन्द थे और अन्दर औज़ार खटक रहे थे। सन्नाटा ऐसा था, जैसे मौत ने अपनी मसान डाल दी हो। कोई नहीं बोलता; किसी के मुँह से आवाज नहीं आती। प्रभा फिर विचार में पड़ गई। वह मनन-मन्थन करने लगी कि बड़ी देर लग गई ऑपरेशन में। मरीज़ की दोनों आँखें तो ठीक हैं। कहीं ऐसा न हो कि पट्टियाँ बँधे-बँधे उनमें कोई खराबी आ जाय। उनकी रोशनी चली जाय। उसका चेहरा कैसा लगता होगा? मैं यह देख नहीं सकती, ऑपरेशन कोई भी हो, वह तो बन्द कमरे में ही होता है। घर वाले हितैषी और व्यवहारी बाहर ही बैठे रहते हैं और अन्दर शल्य-क्रिया होती है। ईश्वर तू बड़ा नेक है। तू एक बार मनुष्य की इच्छा पूरी अवश्य करता है। मैं खो जाना चाहती थी, सेवा की दुनिया में। तूने वह अवसर दिया। मैं त्याग की ओर बढ़ना चाहती थी। तूने वह पथ दिखला दिया। लगता है कि अब मंज़िल दूर नहीं, मैं अपना प्रायश्चित सहज ही पूरा कर सकूँगी। आह! राकेश तुमने

हैं। जिन्हें जिन्दगी में सुख मयत्सर नहीं होता है, वे ही तो दरिया-दिल बनते हैं। बहुत-बहुत धन्यवाद। लेकिन खोटा भाग्य किसी की दया से नहीं बदलता और न रुपया पैसा ही उसमें परिवर्तन ला सकता है।"

इस तथ्य से प्रभा ने यह समझा कि यह आदमी एहसान नहीं मानता। शायद इसीलिए इसकी यह गति हुई। ख़ैर मुझे क्या करना है? नेकी कर कुएँ में डाल। हातिमताई का यह सिद्धान्त मेरा उसूल बन चुका है। मैं यही करूँगी, और यहाँ तक नर्म होकर चलूँगी, कि अगर मेरे गाल पर कोई थप्पड़ मारता तो मैं विरोध न कर दूसरा गाल भी उसके सामने कर दूंगी। अच्छा हो जाय यह आदमी अपने घर जाय। मुझे कुछ नहीं पूछना है कि कौन है और कहाँ रहता है?

इस तरह प्रभा उस बीमार से बहुत कम बोलती। हाँ, उस पर वह रुपया पानी की तरह खर्च ज़रूर कर रही थी। बीमार ज़हरवाद से मुक्त हो चुका था। अब उसके ऑपरेशन की तैयारी थी। जिसके लिए प्रभा ने अपनी सहमति डॉक्टरों को देदी थी। वह सोच रही थी कि ईश्वर ने उसे सेवा का यह अच्छा अवसर दिया है। लोग मौक़ा ढूंढते हैं। अवसर की ताक में रहते हैं, और यहाँ तो मुंह-माँगी मुराद मिली। ईश्वर इसे जल्दी स्वस्थ कर दे।

बीमार का उपचार चल रहा था। प्रभा उसके लिए निरन्तर प्रयत्न-शील थी। वह होटल में रह रही थी। उसका खर्च अलग था। धीरे-धीरे एक सप्ताह हो गया। तीन दिन बाद ऑपरेशन की तारीख़ थी।

३९

अपरचित बीमार के ऑपरेशन का सारा खर्च प्रभा ने अपने सिर पर ओटा। किसी तरह वह दिन आया, जब शल्य-चिकित्सा के लिए उसे

ऑपरेशन-थियेटर में ले जाया गया। प्रभा बाहर बैठी। तीन घण्टे लग गये। कमरे के किवाड़ नहीं खुले। चार डॉक्टर, कई कम्पाउण्डर, सबके-सब अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद थे। मरीज़ को क्लोरोफ़ार्म सुंघाया गया।

इधर ऑपरेशन-रूम में शल्य-क्रिया का कार्यक्रम चल रहा था, और उधर बाहर बेन्च पर बैठी प्रभा सोच रही थी कि देखो विधि का विधान और होनहार। इस आदमी के चोट और कहीं नहीं लगी, सिर्फ़ चेहरा ही बिगड़ गया। मुँह पर गहरे-गहरे घाव आखिर यह कैसे लगे? कहीं गिर पड़ा, या अचानक कोई चोट लग गई! यह गाड़ी में कैसे आया? इसे वहाँ कौन लिटा गया? स्वभाव का रूखा है, तभी शायद सहयोग से वञ्चित रहा। जिनकी ज़बान में रस नहीं होता। जो अच्छा और मीठा बोल नहीं पाते, वे कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते, दुनिया उनकी उपेक्षा ही करती है। अरे, कहाँ बहक गई मैं; मुझे इन बातों से क्या मतलब? मुझे अपना कर्त्तव्य देखना है।

प्रभा जब सजग हुई तो उसकी दृष्टि फिर ऑपरेशन-रूम के किवाड़ों की ओर गई। वे अब भी बन्द थे और अन्दर औज़ार खटक रहे थे। सन्नाटा ऐसा था, जैसे मौत ने अपनी मसान डाल दी हो। कोई नहीं बोलता; किसी के मुँह से आवाज नहीं आती। प्रभा फिर विचार में पड़ गई। वह मनन-मन्थन करने लगी कि बड़ी देर लग गई ऑपरेशन में। मरीज़ की दोनों आँखें तो ठीक हैं। कहीं ऐसा न हो कि पट्टियाँ बंधे-बंधे उनमें कोई खराबी आ जाय। उनकी रोशनी चली जाय। उसका चेहरा कैसा लगता होगा? मैं यह देख नहीं सकती, ऑपरेशन कोई भी हो, वह तो बन्द कमरे में ही होता है। घर वाले हितैषी और व्यवहारी बाहर ही बैठे रहते हैं और अन्दर शल्य-क्रिया होती है। ईश्वर तू बड़ा नेक है। तू एक बार मनुष्य की इच्छा पूरी अवश्य करता है। मैं खो जाना चाहती थी, सेवा की दुनिया में। तूने वह अवसर दिया। मैं त्याग की ओर बढ़ना चाहती थी। तूने वह पथ दिखला दिया। लगता है कि अब मंज़िल दूर नहीं, मैं अपना प्रायश्चित्त सहज ही पूरा कर सकूँगी। आह! राकेश तुमने

हैं। जिन्हें ज़िन्दगी में सुख मयस्सर नहीं होता है, वे ही तो दरिया-f
वनते हैं। वहुत-वहुत धन्यवाद। लेकिन खोटा भाग्य किसी की दया
नहीं वदलता और न रुपया पैसा ही उसमें परिवर्तन ला सकता है।"

इस तथ्य से प्रभा ने यह समझा कि यह आदमी एहसान न
मानता। शायद इसीलिए इसकी यह गति हुई। ख़ैर मुझे क्या कर
है? नेकी कर कुएँ में डाल। हातिमताई का यह सिद्धान्त मेरा उसू
वन चुका है। मैं यही करूँगी, और यहाँ तक नर्म होकर चलूँगी, f
अगर मेरे गाल पर कोई थप्पड़ मारता तो मैं विरोध न कर दूसरा गा
भी उसके सामने कर दूँगी। अच्छा हो जाय यह आदमी अपने घर जाय
मुझे कुछ नहीं पूछना है कि कौन है और कहाँ रहता है?

इस तरह प्रभा उस वीमार से वहुत कम वोलती। हाँ, उस प
वह रुपया पानी की तरह खर्च जरूर कर रही थी। वीमार ज़हरवाद
मुक्त हो चुका था। अव उसके ऑपरेशन की तैयारी थी। जिसके लि
प्रभा ने अपनी सहमति डॉक्टरों को देदी थी। वह सोच रही थी वि
ईश्वर ने उसे सेवा का यह अच्छा अवसर दिया है। लोग मौक़ा ढूंढते
हैं। अवसर की ताक में रहते हैं, और यहाँ तो मुंह-माँगी मुराद मिली
ईश्वर इसे जल्दी स्वस्थ कर दे।

वीमार का उपचार चल रहा था। प्रभा उसके लिए निरन्तर प्रयत्न-
शील थी। वह होटल में रह रही थी। उसका खर्च अलग था। धीरे-
धीरे एक सप्ताह हो गया। तीन दिन वाद ऑपरेशन की तारीख़ थी।

३९

अपरिचित वीमार के ऑपरेशन का सारा खर्च प्रभा ने अपने सिर पर
ओटा। किसी तरह वह दिन आया, जव शल्य-चिकित्सा के लिए उसे

ऑपरेशन-थियेटर में ले जाया गया। प्रभा बाहर बैठी। तीन घण्टे लग गये। कमरे के किवाड़ नहीं खुले। चार डॉक्टर, कई कम्पाउण्डर, सबके-सब अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद थे। मरीज़ को क्लोरोफ़ार्म सुंघाया गया।

इधर ऑपरेशन-रूम में शल्य-क्रिया का कार्यक्रम चल रहा था, और उधर बाहर बेन्च पर बैठी प्रभा सोच रही थी कि देखो विधि का विधान और होनहार। इस आदमी के चोट और कहीं नहीं लगी, सिर्फ़ चेहरा ही बिगड़ गया। मुँह पर गहरे-गहरे घाव आखिर यह कैसे लगे? कहीं गिर पड़ा, या अचानक कोई चोट लग गई! यह गाड़ी में कैसे आया? इसे वहाँ कौन लिटा गया? स्वभाव का रूखा है, तभी शायद सहयोग से वञ्चित रहा। जिनकी ज़बान में रस नहीं होता। जो अच्छा और मीठा बोल नहीं पाते, वे कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते, दुनिया उनकी उपेक्षा ही करती है। अरे, कहाँ बहक गई मैं; मुझे इन बातों से क्या मतलब? मुझे अपना कर्त्तव्य देखना है।

प्रभा जब सजग हुई तो उसकी दृष्टि फिर ऑपरेशन-रूम के किवाड़ों की ओर गई। वे अब भी बन्द थे और अन्दर औज़ार खटक रहे थे। सन्नाटा ऐसा था, जैसे मौत ने अपनी मसान डाल दी हो। कोई नहीं बोलता; किसी के मुँह से आवाज नहीं आती। प्रभा फिर विचार में पड़ गई। वह मनन-मन्थन करने लगी कि बड़ी देर लग गई ऑपरेशन में। मरीज़ की दोनों आँखें तो ठीक हैं। कहीं ऐसा न हो कि पट्टियाँ बंधे-बंधे उनमें कोई खराबी आ जाय। उनकी रोशनी चली जाय। उसका चेहरा कैसा लगता होगा? मैं यह देख नहीं सकती, ऑपरेशन कोई भी हो, वह तो बन्द कमरे में ही होता है। घर वाले हितैषी और व्यवहारी बाहर ही बैठे रहते हैं और अन्दर शल्य-क्रिया होती है। ईश्वर तू बड़ा नेक है। तू एक बार मनुष्य की इच्छा पूरी अवश्य करता है। मैं खो जाना चाहती थी, सेवा की दुनिया में। तूने वह अवसर दिया। मैं त्याग की ओर बढ़ना चाहती थी। तूने वह पथ दिखला दिया। लगता है कि अब मंज़िल दूर नहीं; मैं अपना प्रायश्चित्त सहज ही पूरा कर सकूँगी। आह! राकेश तुमने

हैं। जिन्हें ज़िन्दगी में सुख मयस्सर नहीं होता है, वे ही तो दरिया-दिल बनते हैं। बहुत-बहुत धन्यवाद। लेकिन खोटा भाग्य किसी की दया से नहीं बदलता और न रुपया पैसा ही उसमें परिवर्तन ला सकता है।"

इस तथ्य से प्रभा ने यह समझा कि यह आदमी एहसान नहीं मानता। शायद इसीलिए इसकी यह गति हुई। ख़ैर मुझे क्या करना है? नेकी कर कुएँ में डाल। हातिमताई का यह सिद्धान्त मेरा उसूल बन चुका है। मैं यही करूँगी, और यहाँ तक नर्म होकर चलूँगी, कि अगर मेरे गाल पर कोई थप्पड़ मारता तो मैं विरोध न कर दूसरा गाल भी उसके सामने कर दूँगी। अच्छा हो जाय यह आदमी अपने घर जाय। मुझे कुछ नहीं पूछना है कि कौन है और कहाँ रहता है?

इस तरह प्रभा उस बीमार से बहुत कम बोलती। हाँ, उस पर वह रुपया पानी की तरह खर्च ज़रूर कर रही थी। बीमार ज़हरबाद से मुक्त हो चुका था। अब उसके ऑपरेशन की तैयारी थी। जिसके लिए प्रभा ने अपनी सहमति डॉक्टरों को देदी थी। वह सोच रही थी ईश्वर ने उसे सेवा का यह अच्छा अवसर दिया है। लोग मौक़ा ढूँढ़ते हैं। अवसर की ताक में रहते हैं, और यहाँ तो मुँह-माँगी मुराद मिली। ईश्वर इसे जल्दी स्वस्थ कर दे।

बीमार का उपचार चल रहा था। प्रभा उसके लिए निरन्तर प्रयत्नशील थी। वह होटल में रह रही थी। उसका खर्च अलग था। धीरे-धीरे एक सप्ताह हो गया। तीन दिन बाद ऑपरेशन की तारीख़ थी।

३

अपरिचित बीमार के ऑपरेशन का सारा खर्च प्रभा ने अपने सिर ओटा। किसी तरह वह दिन आया, जब शल्य-चिकित्सा के लिए

ऑपरेशन-थियेटर में ले जाया गया। प्रभा बाहर बैठी। तीन घण्टे लग गये। कमरे के किवाड़ नहीं खुले। चार डॉक्टर, कई कम्पाउण्डर, सबके सब अपनी ड्यूटी पर मुस्तैद थे। मरीज को क्लोरोफ़ार्म सुंघाया गया।

इधर ऑपरेशन-रूम में शल्य-क्रिया का कार्यक्रम चल रहा था, और उधर बाहर बेन्च पर बैठी प्रभा सोच रही थी कि देखो विधि का विधान और होनहार। इस आदमी के चोट और कहीं नहीं लगी, सिर्फ चेहरा ही बिगड़ गया। मुंह पर गहरे-गहरे घाव आखिर यह कैसे लगे? कहीं गिर पड़ा, या अचानक कोई चोट लग गई! यह गाड़ी में कैसे आया? इसे वहाँ कौन लिटा गया? स्वभाव का रूखा है, तभी शायद सहयोग से वञ्चित रहा। जिनकी जबान में रस नहीं होता। जो अच्छे और मीठा बोल नहीं पाते, वे कभी अच्छी दृष्टि से नहीं देखे जाते, दुनिया उनकी उपेक्षा ही करती है। अरे, कहाँ बहक गई मैं; मुझे इन बातों से क्या मतलब? मुझे अपना कर्त्तव्य देखना है।

प्रभा जब सजग हुई तो उसकी दृष्टि फिर ऑपरेशन-रूम के किवाड़ों की ओर गई। वे अब भी बन्द थे और अन्दर औजार खटक रहे थे। सन्नाटा ऐसा था, जैसे मौत ने अपनी मसान डाल दी हो। कोई नहीं बोलता; किसी के मुंह से आवाज नहीं आती। प्रभा फिर विचार में पड़ गई। वह मनन-मन्थन करने लगी कि बड़ी देर लग गई ऑपरेशन में। मरीज की दोनों आँखें तो ठीक हैं। कहीं ऐसा न हो कि पट्टियाँ बंधे-बंधे उनमें कोई खराबी आ जाय। उनकी रोशनी चली जाय। उसका चेहरा कैसा लगता होगा? मैं यह देख नहीं सकती, ऑपरेशन कोई भी हो, वह तो बन्द कमरे में ही होता है। घर वाले हितैषी और व्यवहारी बाहर ही बैठे रहते हैं और अन्दर शल्य-क्रिया होती है। ईश्वर तू बड़ा नेक है। तू एक बार मनुष्य की इच्छा पूरी अवश्य करता है। मैं खो जाना चाहती थी, सेवा की दुनिया में। तूने वह अवसर दिया। मैं त्याग की ओर बढ़ना चाहती थी। तूने वह पथ दिखला दिया। लगता है कि अब मंज़िल दूर नहीं. मैं अपना प्रायश्चित सहज ही पूरा कर सकूंगी। आह! राकेश तुमने

दुनिया छोड़ दी। तुम्हारे अभाव ने ही मुझमें त्याग की भावना भरी। अगर मैंने ज़िन्दगी में कोई भी पुण्य किया हो तो यह बीमार उठ खड़ा हो। उसका ऑपरेशन सफ़ल हो। ओह! बड़ी देर हो गई, अभी तक कमरे के किवाड़ नहीं खुले।

अभी प्रभा ऐसा सोच ही रही थी, कि तब तक किवाड़ खुल गये, एक नर्स हाथ में ट्रे लिए बाहर निकली। प्रभा उठकर खड़ी हो गई। वह उससे कुछ पूछना ही चाहती थी, कि तब तक नर्स स्वयं ही बोल उठी—

"काग्रेचुलेशन्स मैडम, ऑपरेशन कामयाब रहा।"

प्रभा के होठों पर मन्द स्मिति अपने आप ही बिखर गई। चिन्ता के बादल दूर देश चले गये। स्ट्रेचर पर बीमार को उठा, उसके पलंग पर पहुंचाया गया। उसे अभी होश नहीं आया था। उसके चेहरे पर पहले की ही तरह पट्टियाँ बंधी थीं। उस दिन प्रभा अस्पताल से बाहर नहीं गई। वह बीमार के पास ही रही।

धीरे-धीरे दो सप्ताह और बीते। अब पट्टी खुलने में केवल पन्द्रह दिन शेष रह गये थे। इस बीच प्रभा भोपाल से एक दिन के लिए भी कहीं नहीं गई। इन्जेक्शन लगते रहे। दवाइयाँ भी चालू रहीं। प्रभा रुपया खर्च करती रही और यह सोचती रही, कि वह बीमार के लिए नहीं, अपने परमार्थ के लिए कर रही है। वह अपना लोक-परलोक बना रही है। दुनिया में जो व्यक्ति दूसरों के काम नहीं आते, वे ही अधम कहे जाते हैं और वह जिन्दगी भी क्या? जो अपने लिए ही जिया जाय। ऐसे ही उस मौत का भी कोई महत्व नहीं, जो अपनी अवधि पर हो जाय। मौत वह होती है जिसे दुनिया देखती है और उसकी आँखों में दया उमड़ती है। कितनी बुरी मृत्यु हुई राकेश की, कोई स्वजन-परिजन साथ नहीं। जैसे शरतचन्द्र के उपन्यास का 'देवदास' जिसकी लाश डोम ले गये, और जो विषम परिस्थितियों में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

एक सप्ताह और बीता। प्रभा उस दिन की प्रतीक्षा बड़ी बे-सबरी से कर रही थी, जिस दिन अपरचित की पट्टी खुलने को थी। और वह

दिन भी आता जा रहा था, निकट और निकट। आखिर समय पूरा हो गया और डॉक्टरों ने कहा, कि आज पट्टी खोली जायगी।

अपरिचित को ऑपरेशन रूम में ले जाया गया। पहले की तरह ही आज भी किवाड़ बन्द हो गये। प्रभा आज बैठी नहीं। वह कमर पर हाथ बाँधे बरामदे में टहलती रही। जिज्ञासा उसे बार-बार भकझोरती, कि आज तू उस अपरिचित का चेहरा देखेगी, जो तेरे लिए अभी तक बिलकुल अनबूझ है। आज ही तो तुम्हारी सेवा के पेड़ में फल लगेगा आज तुम बहुत खुश होगी और होता भी ऐसा ही है।

कमरे के अन्दर परीक्षण करने के बाद डॉक्टर पट्टियाँ खोल रहे थे। बाहर प्रभा की समाई का बाँध टूट रहा था। एक-एक क्षण उसे एक-एक युग लग रहा था। वह चाहती थी कि जादू हो जाय और खिड़कियों से ही वह जो कुछ देखना चाहती है सामने आ जाय।

करती थीं न। अब ख़ूब जी भरकर करो। जिस तरह तुमने मेरे प्यार को ठुकरा दिया। मुझसे बदले पर बदला लिया। वैसे ही मैंने भी कर लिया था तय कि तुम एक नहीं, चाहे जितने खेल खेलो, मैं तुम्हारे सामने झुकूँगा नहीं, तुम्हें पत्नी-स्वरूप कभी स्वीकार नहीं करूँगा। तुमने मुझे गिरफ़्तार करवाया। तुम्हारी ही यह चाल थी कि बसन्ती बनकर मैं बलराज से व्याह कर लूं और फिर राकेश को कान पकड़कर निकाल दूं। इसके बाद भी तेरे कलेजे की आग ठण्डी नहीं हुई। मैं जेल से छूटकर आया। तुमने मुझे फिर पुलिस की हिरासत में दे दिया। अरी दुष्टा, तेरी नीचता कहाँ तक वर्णन करूँ। तूने मेरा बहिष्कार करवाया। मैंने भी दिया सबका मोह छोड़ और दुनिया से विरक्त हो गया।"

यह कहकर राकेश ने तनिक साँस ली। प्रभा अब भी काठ बनी खड़ी थी। वह बार-बार देख रही थी उस बीभत्स चेहरे को—जिसे देखकर भय लगता था।"'और राकेश अब फिर कह रहा था—"जब मैंने देखा कि मेरी जिन्दगी में अब कुछ भी नहीं रहा। तुम मेरी दुश्मन हो रही हो, तो मैं निराश हो गया। उसी दिन मैं समुद्र में डूबने गया; लेकिन ़न मछेरिन बाधक बन गई, उसने मुझे बचा लिया। फिर मैं लौटा, शहर ़र मुम्बा देवी आया। सोचा कि ऊँचाई से कूद आत्महत्या कर लूं। किन्तु वह भी नहीं हो सका। वहाँ पर दिन-रात भीड़ रहती है। जब सम्भव नहीं हुआ, तो मैं आया सूने वीराने में और बैठकर सोचने लगा, कि जिन्दगी में मैंने बहुत से पाप किये हैं। क्यों न उन पापों का प्रायश्चित करके ही मरूँ। अपनी दोनों आँखें फोड़ लूं, और अन्धा बनकर गली-गली भटकूं। तुमने मेरा बहिष्कार करवाया। यह सब क्यों? मैं जानता हूँ कि जब मेरे पास कोई साधन नहीं रहेगा, तो मैं तुम्हारे सामने आकर गिड़गिड़ाऊँगा। खुशामद करूँगा, फिर तुमसे व्याह करूँगा; लेकिन यह सब सम्भव नहीं था प्रभा। इसीलिए तो मैं चला गया। तुम मुझ पर रीझीं, तुम्हीं पहले आकर्षित हुईं। मुझमें फ़रेब समाया, तुमको मेरी चाल का पता लग गया। तुम हो गई आगाह और प्यार दुश्मनी में बदल

गया। जब रस्सी एक बार टूट जाती है प्रभा, तो वह फिर जुड़ती नहीं, उसमें गाँठ पड़ जाती है। खूब बदला लिया तुमने। मैं समझता था कि यह सब मुझे पाने के लिए हो रहा है।"

अब राकेश तनिक रुका। प्रभा अब भी जड़ बनी खड़ी थी। कमरे में सन्नाटे का सन्देश भर रहा था। वह साँय-साँय कर रहा था। फ़र्श पर बैठती मक्खियाँ डेटाल की ख़ुशबू पा उड़ जातीं। छत पर दौड़ रहा था, छिपकलियों का एक जोड़ा। दोनों शायद रूठ गए थे, एक-दूसरे को मना रहे थे।

राकेश ने एक घृणापूर्ण दृष्टि डाल प्रभा से फिर कहना प्रारम्भ किया—"क्या अब भी तुम मुझे प्यार करोगी? देखो मेरा चेहरा कैसा लगता है? लाओ शीशा, है तुम्हारे पास! मैं जानता हूँ कि मेरा चेहरा बहुत ही भयानक हो गया है। मैं कई महीने बम्बई में भटकता रहा। मैंने दादर पुल के नीचे देखा कि तुम मिठाइयाँ, फल और कपड़े बाँट रही हो। मैंने लोगों के मुँह से सुना कि राकेश है कोई, वह रूठकर चला गया है। यह सब उसी के लिए दान-पुण्य हो रहा है। मैंने योगेश्वरी की गुफ़ा में भी तुम्हें देखा और देखा, समुद्र तट पर नारियल चढ़ाते हुए। तब तो मैं प्रसन्न हुआ कि मेरी जीत हुई और तुम्हारी हार। बस प्रभा समझ लो कि मेरा प्रायश्चित पूरा हो गया। मुझे यह भी पता चल गया कि तुम अमुक दिन बम्बई छोड़ रही हो। बस उसी रात मैंने सोचा कि किसी शीशे की वस्तु पर अपना सिर दे मारूँ और अपने आकर्षक व्यक्तित्व को भद्दा कर लूँ। इसके बाद एक बार तुमसे मिल लूँ और पूछूँ कि क्या तुम अब भी मुझसे प्यार करोगी? फिर दूर चला जाऊँ और इतनी दूर, जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं। इसीलिए भायखला के पोस्ट-आफ़िस गया। शीशे की एक खिड़की पर अपना मुँह दे मारा और भागा, दादर के लिए, रास्ते में चक्कर आ गया, बेहोश हो गया और गिर पड़ा। किसी रहमदिल ने मुझे अस्पताल पहुँचाया। मेरे चेहरे पर पट्टियाँ बाँधी गईं। लेकिन मैं रहा अस्पताल में भी नहीं। होश आते ही वहाँ से चल दिया। फिर

मैं कहीं नहीं गया, सीधे विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन पहुँचा। किसी तरह एक आँख खोली और वाम्बे देहली एक्सप्रेस में आकर लेट रहा। जब तक तुम डिब्बे में आ नहीं गई, मुझे उलझन रही। दैवयोग की बात, तुम भी उसी बोगी में सवार हुई, जिसमें मैं लेटा था। ज्वर मुझे रात से ही था, सवेरा होते ही तबियत और बिगड़ गई। उसके बाद का पता नहीं कि क्या हुआ? होश आने पर मालूम हुआ कि मैं भोपाल के अस्पताल में हूँ। बस अब मुझे कुछ नहीं कहना है। तुमसे सिर्फ़ पूछना है कि क्या अब भी तुम मुझे प्यार करोगी, मुझसे व्याह करोगी? बोलो प्रभा, चुप क्यों हो? जब आदमी क़सूरवार होता है, तभी ऐसा करता है।"

प्रभा कुछ नहीं बोली, वह खड़ी रही। तब राकेश उठा। उसने उसका हाथ पकड़ा और ज़ोर से झिटककर बोला—"तू नहीं बोलेगी बे-वफा। औरत बड़ी कठोर होती है। अच्छा ले मैं जाता हूँ। मैं तेरी सूरत भी नहीं देखना चाहता।"

यह कहने के साथ ही राकेश कमरे से बाहर निकल गया। प्रभा कई क्षण तक तो कर्तव्य-विमूढ़-सी खड़ी रही, फिर वह ज़ोर से चीखी—"राकेश। लौट आओ राकेश। मैं तुम्हें प्यार करूँगी, तुमसे व्याह करूँगी।"

किन्तु राकेश ने पीछे मुड़कर देखा भी नहीं, वह चलता गया। तब प्रभा उसके पीछे रोकर भागी। वह ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगी—"राकेश। ओ! राकेश।"

···और राकेश आगे बढ़ता गया।

४१

अभी राकेश अस्पताल की चहार-दीवारी से से बाहर नहीं निकल पाया था कि प्रभा उसके पास पहुँच गई। उसने उसका दामन पकड़ा

और रो-रोकर कहने लगी—"आज ही पट्टी खुली है, तुम्हें अस्पताल से वाहर नहीं जाना चाहिए। मेरे लिए नहीं, अपने लिये भी नहीं, ईश्वर के लिए एक-दो दिन और ठहर जाओ। फिर चले जाना। आओ अपने कमरे में चलो।

मैं···"

"क्यों ठहर जाऊँ। मैं जीना चाहता ही नहीं। मुझे जिन्दगी प्यारी ही नहीं। हठ जाओ मेरे रास्ते से , मुझे तुमसे कोई मतलव नहीं।"

यह कह राकेश अपनी कमीज़ छुड़ाने लगा। तव प्रभा की सिसकियाँ तेज़ हो गईं। वह दुखिया-सी होकर वोली—"अच्छा कोई वात नहीं। तुम मुझे स्वीकार मत करो। मुझे मेरे हाल पर छोड़ दो, लेकिन दो दिन ठहर जाओ, राकेश। तुम्हें भगवान् की सौगन्ध। इतना सव हुआ तो अव सुधरा हुआ स्वास्थ फिर खतरे में मत डालो। मान जाओ, लौटो।"

इस पर राकेश सोचने लगा। वह कुछ जवाव नहीं दे पाया। उसको मौन देख प्रभा ने समझा कि साँसें सधीं। तूफ़ान रुक गया है। शायद इसके वाद शीतल पवन भी डोले।

लेकिन नहीं। राकेश जव वोला तो उसने प्रभा के कान खड़े कर दिये। उसने कहा—"ठीक है, मैं कमरे में वापस जाता हूँ, लेकिन एक शर्त है।"

"क्या ? मैं तुम्हारी हर वात मानने को तैयार हूँ।"

"···और मैं चाहता भी यही हूँ।" राकेश ने प्रभा की वात का फ़ौरन ही उत्तर दिया। फिर वह तनिक सख्त हुआ और कठोर स्वर मेंवो ला—"तुम मेरे साथ नहीं आओगी, अभी और इसी समय यहाँ से चली जाओगी। अव तक जो खर्च किया, वह तुम्हारी इच्छा थी। लेकिन अव मैं नहीं चाहता कि तुम मुझ पर एक पाई भी व्यय करो। चली जाओ प्रभा, दोनों रास्ते खुले हैं एक वम्वई जाता है और दूसरा देहली। मेरे लिए प्रभा मर चुकी और तुम्हारे लिए राकेश।"

"इतना परहेज़, इतना दुराव मुझसे ! ओह ! मैं मर क्यों नहीं

जाती ? अच्छा कोई बात नहीं, जो कहोगे वही करूंगी। मैं......।"

अभी प्रभा इतना ही कह पाई थी कि राकेश बीच में ही बोल उठा—"ऐसा ही होता है प्रभा। जब इन्सान का इन्सान से दिल हट जाता है। जाओ देर न करो। मैं तुम्हें फूटी आँखों नहीं देखना चाहता।"

"तो जाऊँ ?"

"अब भी पूछने की ज़रूरत है। फ़ौरन जाओ और अब मैं तुम्हारी किसी भी बात का जवाब नहीं दूंगा।"

यह कहकर राकेश वार्ड की ओर मुड़ा और प्रभा खड़ी देखती रही, जब तक वह दृष्टि से ओझल नहीं हो गया।

प्रभा खड़ी-की-खड़ी रही, लगभग आधा पहर बीत गया। वह सोचती रही। उसने खूब विचार किया। अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँची कि मुझे यहाँ से चले ही जाना चाहिए। वह जब फाटक के बाहर आई तो उसके पैर भारी हो रहे थे। उसके हृदय की धड़कन हो गई थी तीव्र और मानस-ताप जैसे उसमें बहुत कुछ बढ़ गया था। वह चलती ही गई अनिश्चित पथ पर। उसका न कोई केन्द्र बिन्दु था और न कोई निश्चय। वह इस समय भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों की परिभाषा भूल गई थी।

अनायास ही जब आकस्मिक घटना आकर मनुष्य से नाता जोड़ लेती है तो विवेकी भी भूल जाता है, विवेक का मन्त्र और वेद पारंगत अस्त-व्यस्त हो जाता है। समय का उसे बोध नहीं रहता। परिस्थितियों का ज्ञान लुप्त हो जाता है। वह भूल जाता है मानव-रहस्य और मनुष्य की मर्यादा। पराकाष्ठा की भी प्रतिक्रिया उस पर नहीं होती और परम्परा भी नहीं पाती उसे पकड़। यही मानवीय दुर्बलता है। यही है मनुष्य का वह मार्ग, तभी वह मोक्ष पाते-पाते रह जाता है। अगर ये अभाव आदमी में न हो तो उसे क्रोध न आये; तो उसमें परिशोध की भावना न जागे। वह ऊँच-नीच का भेद-भाव न समझे और अपने-पराये की भी संज्ञा में सार्थक न बने।

प्रभा ग्रेजुएट थी और थी प्रगतिशील नारी। वह अपने में पूर
थी। लेकिन इस समय हो रही थी बावरी। मार्ग सीधा जा रहा था
आगे सन्नाटा उससे संगम कर रहा था। जहाँ-तहाँ एक दो पथ-यात्री
नज़र आते, वे भी थके से। प्रभा को पता ही नहीं चला कि भोपाल
शहर उससे कब पीछे छूट गया। वह चलती गई, निरन्तर लपकती गई
आखिर लग गई ठोकर एक पत्थर की और वह औंधे मुंह गिर पड़ी।

सवेरे जब प्रभा की आँखें खुलीं तो उसने अपने को महिला अस्प
ताल में पाया। यह भी भोपाल का ही अस्पताल था। उसके सिर प
पट्टियाँ बँध रही थीं। उसका माथा फूट गया। वह तनिक देर वहाँ रुकी
फिर सीधी आई होटल और अपना सामान बाँधने लगी।

४२

क्रोध में आदमी जब खूब बक लेता है, तो थोड़ी देर बाद उसे ज्ञा
उत्पन्न होता है कि मैंने बहुत कह डाला, मुझे ऐसा नहीं कहना चाहि
था। क्या प्रतिक्रिया हुई होगी दूसरे पर। जब आदमी डाँटा, फटकार
जाता है, तो उसे क्षोभ और ग्लानि तो होती ही है। ऐसे में आदमी अन
कर लेता है। वह डूब जाता है। घर छोड़ देता है, दुनिया से चल
जाता है।

ठीक यही स्थिति थी राकेश की। अस्पताल में पड़े-पड़े वह सो
रहा था कि मैंने प्रभा को बहुत ज़लील किया। मुझे शिकायत कर
चाहिए थी। क्रोध से उबलना तो एक कमज़ोरी ही कही जायगी। क
गई होगी प्रभा। उसमें कितना परिवर्तन हो गया। वह मुझे कित
चाहती है। उसके अन्दर की अहंवादी नारी मर चुकी है। उसमें प्रायश्चि
ने लाज और संकोच का पानी भरा है। मुझे ऐसी स्थिति में उ

निराश नहीं करना चाहिए था। क्या करूँ, आवेश में मैं आँधी और तूफ़ान बन गया। आँधी से कभी भला नहीं होता और तूफ़ान हानि का द्योतक है। क्रोध वह नशा है, जो मनुष्य की मर्यादा पर आघात करता है।

सोचता रहा राकेश। वह दिन बीता और रात हो आई। सवेरे भी जब उसकी आँखें खुलीं तो उसे लगा कि प्रभा आ रही है। वह कह रही है कि मैं तुमसे प्यार करूँगी ब्याह करूँगी। मैं तुमसे घृणा नहीं, प्रीत करती हूँ। पहला पहर बीता दोपहर को सूरज जवान हुआ और तीसरे पहर दिन ढला। साँझ को जब राकेश की उलझन अधिक बढ़ी तो वह बिस्तर से उठ कमरे में टहलने लगा। ठीक उसी समय एक नर्स आई, वह उसके हाथ में काग़ज़ का छोटा सा एक पुलिन्दा देकर चली गई। और जाते-जाते कहती गई कि ये कोई दे गया है। वह आपसे मिलना नहीं चाहता।

राकेश चक्कर में पड़ गया कि कौन है, वह आदमी जो मुझसे मिलना नहीं चाहता? उसने ये कागज़ क्यों दिये हैं? देखूं, इनमें क्या है? अजीब तमाशा है, यहाँ मुझे कौन जानता है? यह सोच उसने पुलिन्दा खोला, वे कागज़ात थे रजिस्ट्री के। प्रभा ने अपनी सारी वसीयत राकेश के नाम कर दी थी।...और उसके साथ ही एक लिफ़ाफ़ा था, जिसके अन्दर रखे पत्र में लिखा था—"जिस समय तुम्हें यह पत्र मिलेगा। मैं भोपाल से बहुत दूर हो जाऊँगी। अब अपना मुंह तुम्हें कभी नहीं दिखलाऊँगी। मैं जा रही हूं, मेरी ज़िन्दगी का कोई ठीक नहीं। मेरी तलाश न करना तुम्हें मेरी शपथ। ज़िन्दगी में जो सुख बदा नहीं होता। वह लाख कोशिशें करने पर भी नहीं मिलता। बस विदा राकेश, अन्तिम विदा। प्रभा से तुम्हें नफ़रत थी ना। इसीलिए तो वह तुमसे ही नहीं, दुनिया से दूर हो गई।"

पत्र के नीचे लिखा था—"अभागिन प्रभा।"

पत्र राकेश के हाथ से छूट पड़ा और उसके मुँह से निकला—"तुमने यह क्या किया प्रभा? सचमुच तुम्हें बहुत दुखः हुआ। मैं ऐसा नहीं जानता था।

अब राकेश बैठा नहीं रह सका। उसने कागजात जल्दी से बाँधे,
ïर चुपचाप अस्पताल से बाहर निकल गया। साँझ की सड़कें जवान
रही थीं। बिजली की बत्तियाँ जल रही थीं और फुटपाथ पर दोनों
रफ़ थी भीड़। कोई आरहा था, कोई जारहा था और राकेश सन-
नाता चला जा रहा था। जब दूर जाकर सड़क की रौनक़ का अन्त
आ, तब तो वह पागलों की तरह ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगा—"प्रभा।
ो प्रभा।"

राकेश चला गया, वह रुका नहीं। उसे लग रहा था कि प्रभा ये
ागज़ देने अस्पताल स्वयं आई होगी। हो सकता है, वह स्टेशन गई हो।
हली या बम्बई के लिए रवाना हो चुकी हो। चलूं, देखूं, पता करूं कि
ौन गाड़ी किस समय कहाँ जाती है?

"'और जब राकेश स्टेशन पहुँचा। उसने समय सारिणी देखी तो
ात हुआ कि बम्बई जाने वाली ट्रेन अभी-अभी छूटी है।

रह गया राकेश कलेजा थामकर। उसके हाथों के जैसे तोते उड़
ाये। वह किं-कर्तव्य विमूढ़-सा देर तक वहीं खड़ा रहा और खड़े-खड़े
ोचता रहा कि इतनी जल्दी यह सब हो जायगा, मुझे पता नहीं था।
मैंने प्रभा को माटी का बुत ही समझा, इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं।
मैंने बड़ी भूल की, जो सुघरी हुई नारी को खो दिया। ऐसे ही पछताता
है मनुष्य, जब मौक़ा चूक जाता है। अब कहाँ ढूंढूं उसे? कहाँ मिलेगी
वह? जो लोग इस तरह जाते हैं, उनका पता एक तो चलता ही नहीं
और अगर चलता है तो वे हाथ आते-आते फिर बे-हाथ हो जाते हैं।

एक एक्सप्रेस ट्रेन उस प्लेट-फ़ार्म पर आकर खड़ी हो गई थी।
चहल-पहल का बाज़ार गर्म हो गया। यात्री चढ़ने-उतरने लगे। किन्तु
राकेश तब भी खड़ा रहा वैसे ही। उसे तब जाकर परिस्थिति का बोध
हुआ जब सफ़ेद-वर्दी-धारी प्लेट-फ़ार्म के टिकट चेकर ने उसे टोका—
"आपका टिकिट।"

राकेश चौंक गया, किन्तु तत्क्षण ही अपने को सँम्हाल, वह बोला—

"टिकिट नहीं, मैं तो एक गुम-शुदा की तलाश में आया था। मैं गवर्न-मेण्ट अस्पताल में भर्ती हूं यहीं और यह रहा उस जाने वाले का पत्र। शायद अब आपको संदेह नहीं रहेगा।"

टिकिट चेकर ने पत्र नहीं देखा। वह बोला—"जाइये"

...और राकेश प्लेट-फ़ार्म से बाहर चला आया।

४३

राकेश प्लेटफ़ार्म से बाहर आ ज़रूर गया; लेकिन वह सोचता ही रहा कि प्रभा अवश्य बम्बई गई होगी, क्योंकि यह तो तय है कि अस्पताल वह गई और वहाँ से इतनी जल्दी कहाँ जा सकती है? देहली की गाड़ी दोपहर को छूटी थी। वह ज़रूर बम्बई ही गई। मिल जायगी अपनी कोठी में, मुझे बम्बई जाना चाहिए।

सोचता रहा राकेश, देर तक। उसने खूब सोचा और फिर आ गया प्लेटफ़ार्म के अन्दर, लो वही टिकट-चैकर मिला। उसने जब दुबारा उसे प्रवेश करते देखा तो फिर टोक दिया—"आपका टिकिट। आप तो अस्पताल गये थे न। अब कहाँ जाना है?"

"वहीं, जहाँ जाने वाला गया है। तरस खाइये, इतनी मेहरबानी कीजिये। मुझे किसी तरह बम्बई पहुँचा दीजिये। मेरे पास पैसा नहीं, मैं बहुत मजबूर हूँ। आप देख लीजिये, यह वसीयत प्रभा ने मेरे नाम की है। जवानी में हम दोनों में प्यार हुआ, उसके बाद ब्याह नहीं हो सका। अनबन चली और खूब रही। न उसने ब्याह किया और न मैंने। मैं चला गया। मैं रूठ गया। मैंने अपनी सूरत अपने हाथों बिगाड़ ली, आप मेरा चेहरा देखते हैं। फिर जब हम दोनों मिले तो मैंने क्रोध से काम लिया। नतीजा सामने है। कृपा करके आप यह प्रभा का पत्र पढ़ लीजिये।"

यह सब कहकर राकेश ने टिकिट-चैकर को चक्कर में डाल दिया। उसने पत्र पढ़ा। रजिस्ट्री के काग़ज़ देखे। दोनों बैठ गये, एक बैंच पर। दोनों में बातें होती रहीं। राकेश कहता रहा, टिकिट-चैकर सुनता रहा। वह आदमी था सहज स्वभाव का। उसमें दया उमड़ आई। आखिर में उसने कहा—"अच्छा दोस्त, निराश न हो, मैं तुम्हें बम्बई पहुँचाऊँगा। चोरी, बेईमानी से नहीं। टिकिट खरीदकर। जब ब्याह हो जाय, प्रभा तुम्हें मिल जाय, तो भाई मिलन के लड्डू भेजना मत भूलना। जो हृदय का सौदा करते हैं, दिल की बाज़ी लगाते हैं, मुझे उनसे बड़ी हम-दर्दी है।"

यही नहीं इसके बाद टिकिट-चैकर राकेश को अपने घर ले गया। वहाँ उसे भोजन कराया, क्योंकि बम्बई की गाड़ी अब रात को बारह बजे के बाद जाने को थी। टिकिट-चैकर की ड्यूटी समाप्त हो चुकी थी। जब राकेश चला तो वह उसके साथ स्टेशन आया। उसने स्वयं खरीदा बम्बई का एक तीसरे दर्जे का टिकिट। ट्रेन आई, प्लेटफ़ार्म में रुकी। राकेश एक बोगी में चढ़ा और जब गाड़ी सीटी देकर चलने को हुई तो डाल दिया उस दरिया दिल ने राकेश की जेब में एक दस रुपये का नोट और हँसते-हँसते बोला—"ब्याज सहित वसूल करूँगा। भूल मत जाना। जब तुम्हारे मुन्ना होगा।"

ट्रेन चल पड़ी। राकेश भी मुस्कराया। उसने विदाई का हाथ हिलाया और प्लेटफ़ार्म पर से हिला टिकिट-चैकर का रूमाल, जो सह-योग का प्रतीक था, शान्ति का दूत और कह रहा था दावे के साथ कि आदमी ही आदमी के काम आता है।

बोरीबन्दर स्टेशन पर उतर राकेश बम्बई की जन-कोलाहल पूर्ण चौड़ी सड़कों को नापने लगा। उसने देखी भायखला के पोस्ट-ऑफ़िस की वह खिड़की, जिस पर अपना मुँह पटका था। उसका जीर्णोद्धार हो

चुका था, उस पर नया शीशा लग गया था। खिड़की फिर ज्यों-की-त्यों हो गई और मैं जैसा-का-तैसा ही रहा। चेहरा बदसूरत हो गया। प्रभा को भी खो दिया और अब भटक रहा हूँ एक अजनबी की तरह, जैसे बम्बई मेरे लिए नई हो। काश! प्रभा मिल जाती। मैं उसे अंगीकार कर लेता। एक बार ज़िन्दगी का कलुष धुल जाता। यह भी कोई जीवन है, जिसमें राग नहीं, रंग नहीं। उस मनुष्य का क्या ध्येय जो न किसी का बन सके और न किसी को अपना कह सके। कहाँ ढूंढूं प्रभा तुम्हें। दादर आ रहा है, मेरा मन तो कहता है कि तुम उस कोठी में नहीं।

...और सचमुच प्रभा दादर की कोठी में नहीं थी, वहाँ पता चला कि वह यहाँ आई ही नहीं। राकेश मैरीन ड्राइव भी गया; लेकिन उसने बलराज की कोठी की तरफ़ निगाह उठा करके भी नहीं देखा। उसके मन में एक चक्र घूम गया—बहिष्कार—मेरा बहिष्कार। निर्वासित को कोई हक़ नहीं कि वह पुराने पाठ दुहराये, पुरानी सीढ़ियाँ चढ़े।

एक, दो और तीन दिन उसी तरह भटकता रहा राकेश। किन्तु प्रभा का पता कुछ भी नहीं चला। एक साँझ को वह जुहू तट पर खड़ा था, समुद्र की लहरें देख रहा था। नावों पर बैठे माँझी गीत गा रहे थे, और मछेरिनों की बज रही थीं चूड़ियाँ। राकेश एक ओर मुर्दा-सा खड़ा था। तभी सहसा प्लाईमाउथ कार आई, वही लीला वाली और लीला ही ड्राइव कर रही थी। गाड़ी रुकी, उस पर से बलराज उतरे, उनके पीछे रेवती और शीला। फिर रेशमी रूमाल से मुंह पोंछती हुई लीला भी उतरकर खड़ी हो गई। वह बड़ी मगन थी और शीला से चुहल कर रही थी।

राकेश खड़ा-खड़ा देखता रहा। पहले उसने चाहा कि मुंह मोड़ ले। लेकिन फिर उसमें अपनत्व की भावना ने ज़ोर मारा। वह गया और झुक गया, बलराज के चरणों पर। बलराज चक्कर में पड़ गये कि यह कौन है, जो उनके चरण छू रहा है? लीला, रेवती और शीला ने मन-ही-मन अनुमान लगाया कि कोई मंगता होगा।

बलराज अभी असमंजस में ही थे कि तब तक राकेश बोल उठा—"नहीं पहचाना भैया ! मैं बहिष्कृत राकेश हूँ और इस हद को पहुँच गया हूँ। मैंने आपको देखा, पैर छू लिए। शिष्टाचार के इस अधिकार को कोई भी नहीं छीन सकता···।"

इसके बाद राकेश ने अविलम्ब अपनी तीनों भाभियों के भी चरण-स्पर्श किये। फिर रो-रोकर कहने लगा—"मैं आप लोगों के अन्तिम-दर्शन करने आया हूँ। मैं जा रहा हूँ, वहाँ जहाँ प्रभा गई है। लो भैया, यह वसीयत प्रभा ने मेरे नाम की है, मुझे इसकी ज़रूरत नहीं, इसको रखो। यह है उसकी चिट्ठी और मेरी कहानी बहुत लम्बी है, उसे मैं सुनाना नहीं चाहता हूँ।"

बलराज ने राकेश को वक्ष से लगा लिया। वे स्वयं रोने लगे और आँसू भर आये रेवती के भी। लीला और शीला पर भी प्रभाव पड़ा उनके नेत्र आर्द्र हो गये और विवश किया बलराज ने तो राकेश ने धीरे-धीरे आप बीती सुनाई।

अब बलराज ही नहीं, उनकी तीनों पत्नियाँ भी एक साथ ही बोल उठीं—"हम लोग प्रभा को खो नहीं सकते। वही तो हमारे घर की मणि है। हमारी रोशनी। हम सब मिलकर उसकी तलाश करेंगे। ईश्वर उसका अनिष्ठ न हो। वह ज़रूर यहीं कहीं होगी। ओह ! कितनी बदल गई प्रभा। वह फ़ौलाद से मोम हो गई।"

···और आँसू बहाते-बहाते बलराज बोले—"जब मनुष्य चला जाता है तभी उसका मूल्य मालूम होता है। मैंने भी प्रभा को खूब फटकारा उसे बहुत ज़लील किया। उसे जब कोई सहारा नहीं रहा, तभी उसने यह मार्ग अपनाया।"

साँझ रात में बदल रही थी। जुहू की जवानी श्रृङ्गार कर रही थी खोमचे वाले आवाज़ लगाते, चिक्की वाला है। लाई-गुड़ वाला है तार-गुड़ा, दो-दो पैसे और ऐसे ही बर्फ़ वाले बोलियाँ लगाते। चुस्की वाले भी इधर-उधर डोलते। बच्चे दौड़ते। जवान अठखेलियाँ करते।

किन्तु बलराज, राकेश और तीनों पत्नियाँ सब लोग ऐसे खड़े थे, मानों वे किसी को मरघट पर छोड़कर आए हों और मातम मना रहे हों।

४४

खड़े-खड़े बलराज वहीं पर बैठ गये। वे सोचने लगे कि काश, कितना अच्छा हो अगर प्रभा मिल जाय तो एक बार बिगड़ी बन सकती है। मेरे मन की हो सकती है। मैं उस गुड़िया से अपने गुड्डे का व्याह करूँ और फिर प्लास्टिक सर्जरी के लिए राकेश को अमेरिका भेजूँ। विज्ञान की उन्नति के स्पष्ट प्रभाव हमारे सामने हैं। साँस लेने की नली प्लास्टिक की लगती है। हृदय भी बदला जाता है। वह प्लास्टिक का होता है, और बिगड़ी हुई शक्ल तो उस इलाज से बहुत जल्दी ठीक हो जाती है। परिवर्तन के रंग देखो, उसने क्या-क्या कर दिखाया। राकेश ने अपना विनाश अपने हाथों कर लिया। प्रभा ने जिन्दगी का मोह छोड़ दिया। यह क्या किया दोनों ने? यह सुख मुझे नहीं देखना है। मैं तो अपने पौधों को फलता-फूलता देखना चाहता हूँ। ईश्वर मेरी मदद कर।

बलराज मौन थे। राकेश चुप-चाप बैठा था और लीला वह अन्तर्द्वन्द्व की वेगवती नदी में बह रही थी। उसकी विचारधारा उससे सामञ्जस्य कर रही थी और अन्तरिक्ष की लीला भीतर-ही-भीतर बोल रही थी कि क्षमा करदो लीला, राकेश तुम्हारा देवर है और प्रभा को कभी न भूलो, उसने ही तुम्हारा उद्धार किया। उसने ही तुम्हें जीवन-मार्ग दिखलाया। वही लाई तुम्हें बम्बई। उसी ने तुम्हारा अधिकार तुम्हें दिलवाया।

सोचती रही लीला। उसमें सहानुभूति न जाने कहाँ से उमड़ती चली आ रही थी। परिवर्तन उसमें भी समा रहा था और ऐसे ही शीला। वह

भी उधेड़-बुन में लगी थी कि यदि प्रभा न होती तो मेरा व्याह बलर
से नहीं हो सकता था। जिसने सारा खेल खेला, जो रंगमंच की नायि
बनी, उसी का अन्त हो गया। वही प्रभा चली गई। नहीं, कभी न
मैं उसे ढूँढकर रहूँगी। मैं उसे जाने नहीं दूँगी। मैं राकेश को क्षमा
दूंगी। आखिर मेरा देवर ही है। अपना-अपना ही होता है। ताल
में पानी भरा होता है। उसमें जोर से लाठी मारो और कहो कि पा
के दो हिस्से हो गये; लेकिन नहीं, लाठी मारने से पानी दो-दो नहीं
जाता। अपना-अपना ही रहता है।

···और रेवती उसमें तो जैसे क्षमा का भण्डार भरा था। वह
मनन के लोक में थी। वह राकेश पर तरस खा रही थी। प्रभा के प्र
असीम दुख से भर रही थी और पलट रही थी भविष्य के पन्ने, जो क
थे जिन पर कुछ भी नहीं लिखा था। वह उन पर वर्णमाला का पह
अक्षर लेकर श्रीगणेश करना चाहती थी और फिर स्वर्णाक्षरों से
उस भविष्य पुस्तिका पर यह लिख देना चाहती थी कि हमारा घर
जाय स्वर्ग से न्यारा। प्रभा के नूपुर बजें। वह दुलहिन बने और आँ
में उसके पायल की झनकार हो। उसकी गोदी में लाल खेलें। छोटे
ग़लतियाँ करते ही हैं। क्या बड़े उन्हें माफ़ नहीं करते। माना कि रा
ने वह कुछ किया, जो ज़िन्दगी भर उसके लिए कलंक-कालिमा बन गय
मगर नहीं। बच्चा अगर जाँघ पर विष्ठा कर देता है, तो जाँघ
नहीं डाली जाती। आखिर मैं उसकी भाभी हूँ और वह मेरा देवर।

इस तरह धीरे-धीरे रात का पहला पहर बीतने पर आ गय
पाँचों व्यक्ति बैठे थे। परिवर्तन उन पर ऐसा छा रहा था, मानो
पुराने से नये हों चले हो। उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या वहाँ पर स्प
हो रही थी। मानव-विज्ञान अपनी अनुभूतियों के चक्षु खोल रहा
कि मनुष्य बदलता है, दुनिया भी बदलती है और संसार में बदलता
नहीं? सभी कुछ परिवर्तनशील है। यदि परिवर्तन न हो तो प
वर्द्धन और संशोधन दोनों का आस्तित्व ही मिट जाय। बलराज

हृदय मौन हो रहा था। उससे पिघल-पिघलकर अपनत्व बह रहा था। आखिर वे बरबस ही बोल उठे और सबसे कहने लगे—"घर में जब एक के मन में पाप समाता है, तो घर इसी तरह उजड़ जाता है, और उजड़ा हुआ बसेरा फिर नहीं बसता। पंछी परदेस चला जाता है। दुनिया समझती यही है; लेकिन ज़िन्दगी से हारे हुए लोगों का परदेस भगवान् का घर होता है। तुम कहीं मत जाओ राकेश। मैं स्वयं प्रभा को खोजूंगा। उसके मिलते ही उससे तुम्हारा ब्याह रचूंगा।"

लीला रेवती और शीला तीनों के मौन ने जैसे पति का समर्थन किया। तभी चली ठण्डी-ठण्डी हवा और एक छोटा-सा झोंका आया। उस झौंके ने गाया एक विरह का गीत—"पंछी और परदेसी दोनों नहीं किसी के मीत, जैसे नयन से निकला आँसू, फिर ना नयन समाये। वैसे ही परदेसी साजन जाकर लौट न आये। विरहिणी रो-रोकर गाये ारी उमरिया बीत। पंछी और परदेसी···।"

राकेश नीले शून्य को देख रहा था, जिसमें ज्योति-पिण्ड चमक रहे े और जिसके बीचों-बीच में खिच रही थी दूधिया रेखा, जिसे 'आकाश ंगा' कहते हैं। वह स्वर्ग की गंगा है, धरती की नहीं। उसमें सुर-मुनि हाते हैं, इन्सान नहीं। क्या प्रभा देव-लोक तो नहीं चली गई। कहीं ह अन्त को तो नहीं प्राप्त हो गई? सभी कुछ अंधकार में है। सभी ुछ अनिश्चित। सभी रास्ते हैं, लम्बी चौड़ी दुनिया पड़ी है। मगर है ड़ी बेरहम। यह किसी की नहीं। लोग दावा करते हैं, दम भरते हैं; लेकिन व व्यर्थ। जब ज़िन्दगी ही अपनी नहीं होती तो फिर दुनिया किसकी। निया उसकी जो अपने लिए पैदा नहीं हुआ। दुनिया उसकी जो दुनिया रहकर भी दुनिया का नहीं हुआ।

हृदय मौन हो रहा था। उससे पिघल-पिघलकर अपनत्व वह रहा था। आखिर वे वरवस ही बोल उठे और सबसे कहने लगे—"घर में जब एक के मन में पाप समाता है, तो घर इसी तरह उजड़ जाता है, और उजड़ा हुआ बसेरा फिर नहीं बसता। पंछी परदेस चला जाता है। दुनिया समझती यही है; लेकिन जिन्दगी से हारे हुए लोगों का परदेस भगवान् का घर होता है। तुम कहीं मत जाओ राकेश। मैं स्वयं प्रभा को खोजूंगा। उसके मिलते ही उससे तुम्हारा व्याह रचूंगा।"

लीला रेवती और शीला तीनों के मौन ने जैसे पति का समर्थन किया। तभी चली ठण्डी-ठण्डी हवा और एक छोटा-सा झौंका आया। उस झौंके ने गाया एक विरह का गीत—"पंछी और परदेसी दोनों नहीं किसी के मीत, जैसे नयन से निकला आँसू, फिर ना नयन समाये। वैसे ही परदेसी साजन जाकर लौट न आये। विरहिणी रो-रोकर गाये सारी उमरिया बीत। पंछी और परदेसी···।"

राकेश नीले शून्य को देख रहा था, जिसमें ज्योति-पिण्ड चमक रहे थे और जिसके बीचों-बीच में खिंच रही थी दूधिया रेखा, जिसे 'आकाश गंगा' कहते हैं। वह स्वर्ग की गंगा है, धरती की नहीं। उसमें सुर-मुनि नहाते हैं, इन्सान नहीं। क्या प्रभा देव-लोक तो नहीं चली गई। कहीं वह अन्त को तो नहीं प्राप्त हो गई? सभी कुछ अंधकार में है। सभी कुछ अनिश्चित। सभी रास्ते हैं, लम्बी चौड़ी दुनिया पड़ी है। मगर है बड़ी बेरहम। यह किसी की नहीं। लोग दावा करते हैं, दम भरते हैं; लेकिन सब व्यर्थ। जब जिन्दगी ही अपनी नहीं होती तो फिर दुनिया किसकी। दुनिया उसकी जो अपने लिए पैदा नहीं हुआ। दुनिया उसकी जो दुनिया में रहकर भी दुनिया का नहीं हुआ।

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो वलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से वोले—"चलो रेवती। हम सव लोग कोठी चलें। अब इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह वहुत दुखी है। हम सव भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में वोली—"चलो, लाला। अब इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सब चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा ज़रूर मिलेगी।"

अब लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से वोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सव लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अब तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला वेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी वलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, वेटे चल।"

"...और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर बढ़े। वलराज और राकेश आगे की सीट पर वैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे वैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अब प्रभा और मिल जाय, वस फिर समझ लो हम सव लोगों का वेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। वलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था। वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो बलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से बोले—"चलो रेवती। हम सब लोग कोठी चलें। अब इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह बहुत दुखी है। हम सब भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में बोली—"चलो, लाला। अब इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सब चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा जरूर मिलेगी।"

अब लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से बोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अब तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला बेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी बलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, बेटे चल।"

…और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर बढ़े। बलराज और राकेश आगे की सीट पर बैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे बैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अब प्रभा और मिल जाय, बस फिर समझ लो हम सब लोगों का बेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। बलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था। वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

सवेरा, नया दिन। जल्दी-से-जल्दी सब लोग स्नान आदि से निवृत हो, जलपान कर, उसी फ्लाईमाउथ में आकर बैठे, जिसे रूप की रानी लीला देहली से लाई थी। कार चली समुद्र के किनारे-किनारे मैरीन-ड्राइव होती हुई वह चौपाटी और जुहू पहुँची। समुद्री किनारे पर ही चलती रही मोटर कार। उसमें गति नहीं थी, वह चींटी-चींटी-सी रेंगती। सब लोग इधर-उधर ध्यानपूर्वक दृष्टि दौड़ाते कि शायद कहीं प्रभा बैठी हो, यहीं-कहीं खड़ी हो। सूरज पूरब से चला। उसकी यात्रा निरन्तर अविराम गति से तय हो रही थी, जैसे घड़ी चलती है बिना रोक-टोक, वह एक क्षण के लिए भी साँस नहीं लेती है। मगर फ्लाईमाउथ बीच-बीच रुकती। लोग नीचे उतरते। वे प्रभा को खोजते। मन-ही-मन समुद्र की लहरों से पूछते कि हे सागर देवता, प्रभा कहाँ है? उसका कोई चिन्ह है तुम्हारे पास।

इसी तरह दोपहर हो गई। सब लोग तनिक सुस्ताये। फ्लाईमाउथ फिर चली और तीसरे पहर तक वह चलती ही रही। इसी तरह साँझ हो गई; लेकिन नहीं मिली प्रभा, नहीं मिली। वह अदृश्य हो गई थी, ऐसी, जैसे अमावस की रात में चन्द्रिका। वह चली गई थी उस लोक में जिसे अनजान कहते हैं और जहाँ तक मनुष्य की आशाएँ पहुँच नहीं पातीं। उसकी कोशिशों की बाँहें छोटी पड़ जाती हैं।

४६

दूसरे दिन सवेरे फिर वही अभियान हुआ। लीला ने हैण्डिल पकड़ा। बलराज उसके पास बैठे। वे बोले—"चलो, लीला आज सीधी विस्मा-रोड चलो। वहाँ आगे बस्ती नहीं दूर तक सन्नाटा है। शायद हो प्रभा उधर। मेरा मन कहता है कि वह मरी नहीं, वह जिन्दा है और जरूर मिलेगी।" "मन तो मेरा भी यही गवाही देता है। हो सकता है प्रभा

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो बलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से बोले—"चलो रेवती। हम सब लोग कोठी चलें। अब इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह बहुत दुखी है। हम सब भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में बोली—"चलो, लाला। अब इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सब चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा जरूर मिलेगी।"

अब लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से बोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अब तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला बेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी बलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, बेटे चल।"

...और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर बढ़े। बलराज और राकेश आगे की सीट पर बैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे बैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अब प्रभा और मिल जाय, बस फिर समझ लो हम सब लोगों का बेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। बलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था। वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो बलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से बोले—"चलो रेवती। हम सब लोग कोठी चलें। अब इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह बहुत दुखी है। हम सब भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में बोली—"चलो, लाला। अब इस समय कहाँ भटकोगे ? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सब चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा जरूर मिलेगी।"

अब लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से बोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अब तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला बेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी बलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, बेटे चल।"

"'और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर बढ़े। बलराज और राकेश आगे की सीट पर बैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे बैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अब प्रभा और मिल जाय, बस फिर समझ लो हम सब लोगों का बेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। बलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था। वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो वलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से वोले—"चलो रेवती। हम सव लोग कोठी चलें। अव इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह वहुत दुखी है। हम सव भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में वोली—"चलो, लाला। अव इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सव चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा ज़रूर मिलेगी।"

अव लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से वोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सव लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अव तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला वेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी वलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, वेटे चल।"

...और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर वढ़े। वलराज और राकेश आगे की सीट पर वैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे वैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अव प्रभा और मिल जाय, वस फिर समझ लो हम सव लोगों का वेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। वलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था। वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो बलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से बोले—"चलो रेवती। हम सब लोग कोठी चलें। अब इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह बहुत दुखी है। हम सब भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में बोली—"चलो, लाला। अब इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सब चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा ज़रूर मिलेगी।"

अब लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से बोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अब तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला बेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी बलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, बेटे चल।"

"'और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर बढ़े। बलराज और राकेश आगे की सीट पर बैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे बैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अब प्रभा और मिल जाय, बस फिर समझ लो हम सब लोगों का बेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। बलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था। वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो वलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से वोले—"चलो रेवती। हम सव लोग कोठी चलें। अव इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह वहुत दुखी है। हम सव भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में वोली—"चलो, लाला। अव इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सव चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा ज़रूर मिलेगी।"

अव लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से वोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सव लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अव तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला वेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी वलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, वेटे चल।"

"'और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर वढ़े। वलराज और राकेश आगे की सीट पर वैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग व्हील पर थे। पीछे वैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अव प्रभा और मिल जाय, वस फिर समझ लो हम सव लोगों का वेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। वलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था। वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो बलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से बोले—"चलो रेवती। हम सब लोग कोठी चलें। अब इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह बहुत दुखी है। हम सब भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में बोली—"चलो, लाला। अब इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सब चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा ज़रूर मिलेगी।"

अब लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से बोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अब तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला बेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी बलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, बेटे चल।"

···और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर बढ़े। बलराज और राकेश आगे की सीट पर बैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे बैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अब प्रभा और मिल जाय, बस फिर समझ लो हम सब लोगों का बेड़ा पार है।

आज प्रभातहो न हीं हुआ था। बलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था ५ वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

आये हुए लोग अपने-अपने घर वापस जाने लगे तो बलराज भी उठकर खड़े हुये। वे रेवती से बोले—"चलो रेवती। हम सब लोग कोठी चलें। अब इतनी रात को कहाँ जायँगे। कल सवेरे चलकर प्रभा की तलाश करेंगे। ले चलो राकेश को। वह बहुत दुखी है। हम सब भी उसके दुख के साझेदार हैं।"

इस पर रेवती राकेश के निकट आ गई और उसके सिर पर हाथ फेर, स्नेह-भरे स्वर में बोली—"चलो, लाला। अब इस समय कहाँ भटकोगे? कोठी चलो। सवेरा होने दो, हम सब चलेंगे। भगवान् पर भरोसा रखो, प्रभा ज़रूर मिलेगी।"

अब लीला भी पास आ गई। वह रेवती का समर्थन कर राकेश से बोली—"हाँ, राकेश निराश नहीं होते। आदमी अन्त तक आशा रखता है। कोई कारण नहीं कि प्रभा न मिले। वह अवश्य मिलेगी। हम सब लोग तुम्हारे साथ हैं। मन छोटा न करो, अब तुम अपने घर आ गये हो।"

शीला बेचारी अधिक सम्पर्क में नहीं आई थी राकेश के। इसीलिये वह दूर खड़ी रही। तभी बलराज के मुँह से अतीव स्नेह भरा मृदु स्वर निकला—'चल, बेटे चल।"

…और यह कहने के साथ वे भाई का हाथ पकड़ कार की ओर बढ़े। बलराज और राकेश आगे की सीट पर बैठे थे। लीला के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर थे। पीछे बैठी थी रेवती और शीला। वे दोनों एक-दूसरे से कह रही थीं कि इसे ही कहते हैं संयोग। कितना अच्छा हुआ राकेश घर आ गया। अब प्रभा और मिल जाय, बस फिर समझ लो हम सब लोगों का बेड़ा पार है।

आज प्रभातही न हीं हुआ था। बलराज की कोठी पर से जो सवेरे का सूरज दिखलाई दे रहा था५ वह कह रहा था—नव प्रभात, नया

यहीं हो। वीराने में पड़ी हो। समुद्र के किनारे भला आदमी भूखा रह सकता है। कितने नारियल पड़ते हैं, जिन्हें लहरें उठाकर वाहर फेंक देती है। सन्यासिनी की तरह हो सकता है प्रभा यहीं पड़ी हो।"

यह जवाव लीला का था, जिसे सुनकर पीछे वैठी रेवती वोल उठी—"अरे! सव छोड़ो मेरी सुनो, जव लक्षण अच्छे होते हैं तो काम वनकर रहता है। जव हम लोग कोठी से चले थे तो विजली के तार पर वैठा था नीलकण्ठ और रास्ते में भी एक मछेरिन मिली थी, वह दूध पिला रही थी अपने वच्चे को। इससे अच्छा शकुन और क्या होगा?"

जव सभी अपनी-अपनी कह रहे थे तो शीला भला क्यों चुप रहती? उसने भी कह दी अपने मन की वात। वह वोली—प्रभा आत्म-हत्या नहीं करेगी, यह मुझे विश्वास है। पढ़े-लिखे मूर्ख वे दूसरे ही होते हैं, जो अपनी जान पर खेल जाते हैं। प्रभा का काम है दूसरा को राह दिखाना, उन्हें किनारे लगाना। वह ऐसी भूल नहीं करेगी। वह मिलेगी और तव मैं सवा सौ नारियल लेकर समुद्र की पूजा करूंगी।"

इस पर सव लोग हँस पड़े और मुस्कराया राकेश भी। कार समुद्र किनारे-किनारे धीरे-धीरे चल रही थी। राकेश कभी समुद्र देखता तो कभी धरती। उसे गगन प्यारा लग रहा था। वह उस ओर देखता तो एकटक देखता ही रह जाता। मानों वह नीली छतरी वाले भगवान् से कह रहा हो कि हे करुणामय ईश्वर! मेरी प्रभा मुझे दे दो।

सवेरे का पहला पहर दिन के विकास की कहानी कह रहा था। सूरज की इन्द्र-धनुषी किरणें खेल रहीं थी, आलिंगन कर रही थीं धरती से और हवा उतार रही थी समुद्र की आरती। मानों वह कह रही थी कि शान्ति-शान्ति-शान्ति। गरजना मत प्यारे, शोर मत करना। तुममें ज्वार-भाटा आता ही क्यों? क्या तुम्हें भगवान् ने श्राप दिया था? जितनी सम्पत्ति धरती पर है उससे कहीं अधिक तुम्हारे गर्भ में। तुम गौरव के प्रतीक हो। शान्त रहना भाई; क्योंकि दूसरा पहर वीतते-वीतते तुम्हारी लहरें आसमान से वातें करने लगेंगी।

अपने जोश पर था। मानो वह कह रहा था कि यही है प्रलय की न, यही है आतंक की कहानी। जब प्रलय आती है, तो सारी धरती मग्न हो जाती है।

४७

मुद्र की लहरें आकाश छूने के लिए ऊँची-ऊँची उठ रही थीं। वे तने वेग से ऊपर जातीं, उतनी ही शीघ्र नीचे आतीं। वे मारतीं थप्पड़ क दूसरे के। हवा का शोर मच जाता, जैसे सौ-सौ तूफ़ान एक साथ चल रहे हों। जिस टीले पर खड़ा था बलराज का परिवार, लहरें उसे ी नहलाने लगीं। तब लीला डरी, वह ज़ोर से चिल्लाई—"चलो, यहाँ ो चल दो। लहरें अभी हमारी खबर लेती हैं। वह देखो सामने ज्वार-भाटे से बचने के लिए बिल्डिंग है। चलो वरना...।"

"अब हम लोग कहीं नहीं जा सकते लीला। लहरें हमारे पाँव जकड़ रही हैं। चुप-चाप खड़ी रहो; ज्वार-भाटा अभी शान्त हुआ जाता है।"

लीला की बात काट बलराज ने यह कहा। तभी राकेश ने देखा, और निगाह पड़ी सबकी, कि दूर सामने से एक श्वेत धोती पहने युवती भागती चली आ रही है। उसका आँचल हवा में उड़ रहा है। वह तेज़ी से और नीचे दौड़ रही है। सभी देखते रह गये। सभी सन्नाटे में आ गये। युवती लहरों में समा गई। वह नीचे उतरती गई। बलराज ने कहा—"यह औरत आत्म-हत्या करने आई है। इसीलिए ज्वार भाटे का समय अपने लिए नियत रखा। कौन बचाये उसे? उसको बचाना अपने को खतरे में डालना है। अभी ज्वार भाटा खत्म होने के बाद इसकी लाश किनारे पर पड़ी मिलेगी।"

"मैं बचाऊँगा इसे। जब तक अपनी जान जोखिम में डाली नहीं जाती,

दूसरे का भला नहीं होता।'''और अब मैं बहुत बदल गया हूँ भैया। अ
सामने किसी का अहित होते नहीं देख सकता। मेरा मन कहता है ।
अगर मैंने इसकी जान बचाली, तो मेरी प्रभा जरूर मिल जायगी।'' व
कहने के साथ ही राकेश ने बलराज के उत्तर की प्रतीक्षा नहीं की। ली
रेवती और शीला हाय-हा यही करती रह गईं।'''और राकेश उतरने ल
नीचे। लहरें उसे जल-मग्न कर देतीं। वह फिर दिखलाई देता अ
फिर अदृश्य हो जाता।

डूबने वाली युवती अधिक आगे नहीं बढ़ पाई। वह निश्चल प्रति
सी खड़ी थी। लहरें उसके ऊपर नीचे जा रही थीं। राकेश भी धीरे-ध
पहुँच गया वहाँ। उसे कुछ नहीं मिला, उसने युवती के बाल पकड़े,
बिखरे हुए थे। वह गिरने-गिरने को हो रही थी, लहरों ने उसे बेदम व
दिया था। बाल पकड़ते ही वह गिर पड़ी। अब और भी मुश्किल हु
समुद्र में गिर जाना और वह भी ज्वार-भाटे के समय सीधे मौत
रास्ता होता है, जो आदमी खड़ा रहता है; वह बच जाता है। च
और बैठ जाने वाले लोग भी अपनी जान हथेली पर रख लेते हैं।''

समुद्र में ज्वार इतना ऊँचा उठ रहा था, कि एक नहीं दो-दो हा
ऊपर-नीचे खड़े होकर डूब जायँ। इतना शोर मचा था, हा-हाकार हो र
था; ऐसा लगता कि हज़ारों बिजलियाँ गरज रही हों। आँधियों का स
आ गया हो, जो ज्वार बनकर मचल रहा है। पानी खौल रहा था,
जैसे कढ़ाई में तेल। राकेश ने किसी तरह उस युवती को उठाया, उ
उसे पीठ पर लादा। हवा उसे पीछे ढकेलती, लहरें पैरों में बेड़ियाँ डालतीं
वह जब गिरने को होता, तो झुक जाता। लहर ऊपर से निकल जाती
बस समझदारी थी यही कि लहरों की चोट बचाना।

टीले पर खड़े बलराज, लीला, रेवती आदि भी जल से नहा रहे थे
लहरें उनके ऊपर से गुज़र रही थीं। लीला चिल्लाती, रेवती छा
पीटती और शीला बार-बार हिलाती दोनों हाथ, किसी को एक-दूसरे क
बात सुनाई नहीं पड़ रही थी। क्योंकि विकराल रूप हो रहा था, ज्वा

ाटे का। समुद्र उग्र हो चला था। तभी तो लग रहा था जैसे प्रलय फूत्कार र रही हो।

किसी तरह अपने को सँभालता, लहरों से टक्कर लेता, युवती को ीठ पर लादे राकेश ऊपर चढ़ने का प्रयत्न कर रहा था। बलराज तो बड़े-बड़े आँसुओं से रो रहे थे वे मत्थे पर बार-बार हाथ पटकते, सभी देख रहे थे यह कि राकेश ने डूबने वाली को बचा लिया था; लेकिन अब उसकी जान खतरे में। यदि गिरा तो गया।

जिस तरह सोया हुआ शिशु माँ को गरुआ लगता है, अपेक्षाकृत जागते हुए बालक के। वैसे ही बेहोश इन्सान भी एक ज़िन्दा लाश ही कही जाती है। युवती की देह दूनी भारी लग रही थी, राकेश बोझ से दब रहा था। वह काँखता; लेकिन मुँह नहीं खोलता। वह हिम्मत करता; उसकी शक्ति जैसे उसे जवाब दे रही थी। वह चाहता तो यही था कि मैं किसी तरह ऊपर पहुँच जाऊँ। परन्तु साहस को थकते देख, उसने जैसे अपनी क्षमता के हथियार डाल दिये और यह सोच लिया कि समुद्र मुझे निगल ही तो जायेगा न। मरने के बाद शव घर वालों को मिल जायगा। मैं मर जाऊँ, इसकी मुझे चिन्ता नहीं, मगर इस औरत को बचाना है। ज्वार-भाटा पूरे जोश पर है। लहरें तूफ़ान बन रही हैं। क्या करूँ? हिम्मत दे भगवान् या फिर इस ज्वार को शान्त कर दे। अब थक गया हूँ, अब गिरा तब गिरा। तनिक ताक़त और थोड़ी-सी फुरती पैरों में भर दे ईश्वर। मुझे ऊपर पहुँच जाने दे। यहाँ की लहरें बहुत बलवान् हो रही हैं।

o

४८

उदधि ने खूब खुलकर जिन्दगी का फाग खेला। उस फाग में जो रंग ', वह ज्वार बन गया और अबीर भाटा। वह खूब उबला, खूब हह-

राया। उसने रोर-पर-रोर किया। उसने शोर को जैसे खरीद लिया। उ
मचा दिया तहलका क्योंकि सर्व-शक्तिमान पानी है। वह प्रलय का पूत
दुनिया में तीन हिस्सा पानी है, एक हिस्सा पृथ्वी। पानी ही वह जी
दायिनी शक्ति है, जिससे मनुष्य को जीने की प्रेरणा मिलती है। प्रे
ही परिचायक है पराकष्ठा की और मर्यादा तभी साथ देती है,
इन्सान परिधि के अन्दर घूमता है। दिन आता है तो लोग हँसते
रात को उन्हें उदासी घेरती है। ऐसे ही दुख के आगमन पर मनुष्
देता है। फिर उसके आँसू आकर पोंछता है सुख। जो आता है सो जाता
क्षण-भंगुर संसार में किसी का भी स्थायित्व नहीं। नदी में जब बाढ़ आ
है तो त्राहि-त्राहि मच जाती है। गाँव-के-गाँव डूब जाते हैं। फसलें
हो जाती हैं; लेकिन कुछ दिन बाद वही उर्वरा शृंगार करती है। उ
आँचल का दूध हरी बनिस्पति बनता और उसका तथ्य बनता फल-फूल
गाँव बस जाते हैं खेत हँसते हैं और जिन्दगी मुस्कराती है इस तरह जं
दीवाली की रात।

प्रकृति का एक नियम है, परम्परा की एक राह, इन्सान के
सिद्धान्त हैं। सच्चाई के भी कई रूप। ज्वार-भाटा धीरे-धीरे शान्त हो
लगा। राकेश को जैसे जान-सी मिली। लहरें छोटी हुईं और छोटी
गर्जन का शोर कम हुआ और कम। समुद्र जैसे हार गया, प्रकृति जीत
गई। तूफ़ान को नज़र-बन्द कर लिया शान्ति ने, तभी तो ज्वार-भाटा
समाप्ति पर आ गया।

राया। उसने रोर-पर-रोर किया। उसने शोर को जैसे ख़रीद लिया। उसने मचा दिया तहलका क्योंकि सर्व-शक्तिमान पानी है। वह प्रलय का पूत है। दुनिया में तीन हिस्सा पानी है, एक हिस्सा पृथ्वी। पानी ही वह जीवन-दायिनी शक्ति है, जिससे मनुष्य को जीने की प्रेरणा मिलती है। प्रेरणा ही परिचायक है पराकष्ठा की और मर्यादा तभी साथ देती है, जब इन्सान परिधि के अन्दर घूमता है। दिन आता है तो लोग हँसते हैं। रात को उन्हें उदासी घेरती है। ऐसे ही दुख के आगमन पर मनुष्य रो देता है। फिर उसके आँसू आकर पोंछता है सुख। जो आता है सो जाता है। क्षण-भंगुर संसार में किसी का भी स्थायित्व नहीं। नदी में जब बाढ़ आती है तो त्राहि-त्राहि मच जाती है। गाँव-के-गाँव डूब जाते हैं। फसलें नष्ट हो जाती हैं; लेकिन कुछ दिन बाद वही उर्वरा शृंगार करती है। उनके आँचल का दूध हरी वनिस्पति बनता और उसका तथ्य बनता फल-फूल। गाँव बस जाते हैं खेत हँसते हैं और ज़िन्दगी मुस्कराती है इस तरह जैसे दीवाली की रात।

प्रकृति का एक नियम है, परम्परा की एक राह, इन्सान के भी सिद्धान्त हैं। सच्चाई के भी कई रूप। ज्वार-भाटा धीरे-धीरे शान्त होने लगा। राकेश को जैसे जान-सी मिली। लहरें छोटी हुई और छोटी। गर्जन का शोर कम हुआ और कम। समुद्र जैसे हार गया, प्रकृति जीत गई। तूफ़ान को नज़र-बन्द कर लिया शान्ति ने, तभी तो ज्वार-भाटा समाप्ति पर आ गया।

अब राकेश टीले पर चढ़ा। युवती को पीठ पर लादे, वह अधमरा-सा हो गया था। युवती बेहोश थी, वह ज़मीन पर लेटाई गई। सबसे पहले लीला ने उसे देखा और पहिचाना। वह अपना-आपा खोकर चिल्ला पड़ी—"How lucky we are. Wonderful! Chariow Prabha! Chariow Prabha! (हम लोग कितने खुश-नसीब हैं। खूब बहुत खूब। जिओ प्रभा—जिओ प्रभा—जीओ प्रभा)।"

बलराज लीला के पास लपक आये। रेवती उससे सटकर बैठ गई

रही थी—"लौट प्रभा ! लौट पगली, तुझे मेरे सिर की क़सम। पागल हो गई है क्या ? देख शीला तुझे बुला रही है।"

सबसे पीछे रह गई थी रेवती। वह अपनी स्थूलावस्था से विवश थी। वह धाड़-मारकर रो रही थी और रो-रोकर कह रही थी—"लौट दुश्मन। लौट पागल। तू चली गई, तो मैं भी ज़िन्दा नहीं रहूँगी। इसी समुद्र में कूद पड़ूंगी। तुझे राकेश की कसम। तुझे अपने जेठ की सौगन्ध। लौट दुश्मन, लौट।"

...और प्रभा जैसे हो गई थी महाकाली। वह दौड़ती जा रही थी। उसके बाल हवा में उड़ रहे थे। उसकी सफ़ेद धोती गई थी सूख। जिसका पल्लू हवा से थेपेड़े ले रहा था। वह भी चीख रही थी बुरी तरह और ऊँट-पटाँग बक रही थी। वह कह रही थी—"यह हमदर्दी झूठी है। यह सब धोखा है' मुझे मरने दो। मौत ही मेरी मंज़िल है। मैंने खूब समझ लिया, खूब अन्दाज़ लिया कि दौलत ही इन्सान की दुश्मन है। तुम सब दुनियावी कीड़े हो। तुममें गन्ध है, सुगन्ध नहीं और जहाँ खुशबू नहीं, वहाँ ज़िन्दगी नहीं। जहाँ प्यार नहीं वहाँ रोशनी नहीं।"

राक़ेश प्रभा से कुछ ही फ़ासले पर था। एक बार उसने उसका लपककर हाथ पकड़ा तो प्रभा ने दिया झटक। वह दहाड़कर बोली—"जो प्यार मर चुका है, उसकी पूजा करने आये हो। जो मूर्ति खण्डित हो गई, उसे ज़िन्दा करने आये हो। जाओ, चले जाओ। पहले आग लगाई और अब उस आग में घी डालने आए हो। तुम मेरे कोई नहीं। मैं तुम्हें नहीं जानती। मेरा राकेश मर चुका है।"

राकेश फ़िर पीछे छूट गया। प्रभा सिर पर पैर रखकर भाग रही थी, और बलराज रो रहे थे, बलर-बलर। वे हिलकी भर-भरकर कह रहे थे—प्रभा बेटी ! तू लौटेगी नहीं। तू ही तो मेरी ज़िन्दगी का सुख है, मेरे घर का चिराग़। अभी तक दिये तमाम जले; लेकिन उनसे फूल नहीं झड़े। लौट रानी ! मेरे राकेश की दुनिया। मेरी ज़िन्दगी।"

लीला के माथे पर पसीना आ गया वह भी खूब [illegible]

अधूरे रहे। प्रभा को विश्वास नहीं चाहिए। वह सहानुभूति की भी भूखी नहीं। उसे तो मौत चाहिए। दुश्मनो मरने दो, छोड़ दो मुझे।''

यह कह प्रभा ने अपने दोनों हाथ छुड़ाये। उसने बलराज को धकेल दिया। वे गिर पड़े और फिर ऐसी भागी जैसे चोर। वैसे ही पीछे से लीला ने आकर पकड़ लिए उसके बाल, वह बोली आक्रोश-पूर्ण मुद्रा में—''Non-sence fellow. Come here. Stop please. I...'
(मूर्ख बेवकूफ़। इधर आ। रुक। नहीं तो, मैं......)''

यह कह लीला ने प्रभा के बाल पकड़ अपनी ओर खूब तेजी से खींचे। तभी शीला आ गई। क़रीब, वह प्रभा के सामने खड़ी हो गई और पकड़ लिए उसके दोनों कन्धे। फिर उन्हें हिला अपनी बहादुरी की शान बघारती हुई बोली—क्यों बन्तो भागो ना, देखो कैसा मजा चखाती हूँ मैं। आज़माओ ताक़त। देखूँ तुमने कितना दूध पिया है? कितना घी खाया है?''

जब प्रभा विवश हो गई तब तक आ गई वहाँ रेवती भी। उसने आते ही उसके मुंह पर एक चपत जड़ी और जोर से हाँफते-हाँफते बोली—''मैं मर गई, दौड़-दौड़कर मेरा दम फूल गया और तू नालायक़ भागे ही जा रही है। चल पीछे लौट। तनिक भी लिहाज नहीं। जेठ को बुरा-भला कहती है।''

अब प्रभा हो गई मजबूर। उसकी दृष्टि नीचे झुक गई और आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

५०

प्रभा की आँखों से टप-टप आँसू चू रहे थे। शीला चुप खड़ी थी। लीला उसे देख रही थी और रेवती कह रही थी कि अब मूर्खा की आँखें

खुलीं। उसे दुनिया का ज्ञान हुआ और प्रभा कोई चारा न पा लग गई जाकर बलराज के वक्ष से। वह बोली—"दादा! मुझे बचाओ। मैं बड़ी पापिन हूँ।"

तब बलराज भी रोने लगे और वे कहने लगे—"कैसी बातें करती है पगली। तू मेरी अनुजा है, बेटी तुल्य। मैं तुझे क्षमा करूँ या तेरी माँगें पूरी करूँ। कुछ भी तो समझ में नहीं आता प्रभा। तुम क्या-से-क्या हो गईं। बस मुझे यही दुख है।"

"दुख नहीं दादा। यह जिन्दगी की एक छोटी-सी पहिचान है। यहीं पर तो ज्ञान होता है कि कौन अपना है और कौन पराया। मुझे क्षमा कर दो। मैंने तुम्हारे साथ भी वे चालें खेलीं जो दुनिया के नाम पर कलंक है। एक अपवाद। अपवाद जिन्दगी का कभी साथी नहीं बनता। वह उसे नेस्त-नाबूद कर देता है। वैसे ही मिट जाती है दुनिया, जब उसके पेट में पानी के बुलबुले उठते हैं।"

बलराज ने सुना, वे रोने और सिसकने लगे। वे रोते-रोते, राकेश से बोले—"राकेश यही माटी लो इसी से प्रभा की माँग भरो। यह तुम्हारी अर्द्धांगिनी है तुम उसके पति। जो रिश्ते पुराने होते हैं वे कभी टूटते नहीं। जिन नातों में प्रेम की डोर बंध जाती है, वे ही अमर कहे जाते हैं। अमरत्व क्या है? एक विश्वास। विनाश क्या है? एक पहेली। मनुष्य क्या है? एक माटी का गुड्डा।...और नारी क्या है एक माटी की गुड़िया। माटी का ही इन्सान, केवल उसमें प्राण बोलते हैं जो ईश्वरीय शक्ति है। शक्ति न हो तो समर्थ आदमी कभी नहीं हो सकता। शान्ति न हो तो वह दूसरे की बात नहीं सुन सकता। उसमें सन्तोष न हो तो उसकी समृद्धि का दरिया कभी नहीं बह सकता। आदमी, आदमी है। इन्सान तेली के कोल्हू का बैल। वह जिन्दगी-भर पिसता है, मिटता है और मरता है फिर भी वह मनुष्य ही कहलाता है। देवताओं की श्रेणी में नहीं जाता।"

बलराज की ये बातें सुन राकेश ने चुटकी में माटी ली। उसने

कहार। जारी-जारी दुलहनियाँ जा। बाजे शहनाई हमारे अँगना।"

...तो दूसरी ओर फ़िल्मी नया तराना अपना ही गीत गुन-गुना रहा —"छोड़ बाबुल का घर आज पी के नगर मोहि जाना पड़ा।"

...और बज रहा था एक नई रोमाण्टिक फ़िल्म का तरंगी संगीत— ौ साल पहले हमें तुमसे प्यार था आज भी है और कल भी रहेगा।'

बारात जा रही थी धूम-धाम से। दूल्हा राकेश अपने में मगन था र दादर की कोठी ऐसी सज रही थी जैसे नई दुलहिन। वहाँ भी उड स्पीकर बज रहा था—"राजा की आयेगी बारात, रंगीली होगी त, मगन में नाचूँगी।"

बारात आई। गोले छूटे, आतिशबाजी भी दगी। भाँवरें पड़ीं, भा राकेश की हो गई और तभी बाहर लाउड स्पीकर पर छिड़ गया राना 'शहनाई' फिल्म का गीत—"बाजे-बाजे शहनाई हमारे अँगना- के डोलिया कहार साजन आए हैं द्वार। जारी-जारी दुलहनियाँ जा।

अब प्रभा के मुँह पर घूँघट था और राकेश के चेहरे पर फूलों का हरा। फूल मुस्करा रहे थे। ज़िन्दगी शरमा रही थी। दुलहिन मन- ो-मन संकोच से गड़ रही थी और गा रहा था दूर ऊपर गगन में पर- स जाता हुआ पंछी—"ओ लौटके आ, ओ परदेसिया, ओ निर्मोहिया।"

प्रभा हँस रही थी। राकेश उसकी चिबुक पकड़े था, और दूर कहीं ज रहा था संगीत। जो प्रणय का प्रतीक था—"आओ मन में तुम ीत लिए, जीवन का सुख संगीत लिए, आज मिलन की रात सजनिया आज मिलन की रात।"

—※—